अतीत के स्वप्न

[[illegible]]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अतीत के स्वप्न

[मुंशी जी का नवीन ऐतिहासिक उपन्यास]

लेखक

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

अनुवादक

श्री मुकुन्दलाल गुप्त बी. ए.

श्रीनाथ ब्रदर्स पुस्तक प्रकाशक व विक्रेता बनारस

प्रकाशक—
श्रीनाथ ब्रदर्स
वाराणसी-१

द्वितीय संस्करण
मूल्य

मुद्रक—
काशी विद्यापीठ मुद्रणालय,
वाराणसी-२

यह क्या है !

मुंशीजी का यह सफल ऐतिहासिक रोमांच है। इसकी पृष्ठभूमि गुजरात है। वहाँ की राज्य-व्यवस्था में जैनों का सदैव से ही प्रमुख हाथ रहा है। लेखक ने इस उपन्यास का कलेवर भी उसी कल्पना के आधार पर खड़ा किया है। यह एक सरस जीवन-कथा है। इसमें स्त्री-पुरुष का प्रेम भी मिलेगा, पर आजकल के बाजारू उपन्यास की तरह नहीं! इस पुस्तक की कथायें एक दूसरे से दूध-पानी की तरह इतनी मिली हुई हैं, इतनी रोचक हैं कि आपको पढ़ते समय न कहीं खटकेगा, न विषय को सम्बद्ध करने के लिए कुछ सोचना ही पड़ेगा।

मुंशीजी यथार्थवादी हैं। उन्हें अपने पात्र को समाज के लिए आदर्श बनाना अभीष्ट नहीं। इस पुस्तक के किसी भी पात्र का चित्रण ऐसा नहीं है जो युग के लिये असम्भव-सा लगे। एक श्रेष्ठ उपन्यासकार की भाँति मुंशीजी ने केवल पात्रों को जीवनदान भर दे दिया है; वे बाद में स्वयं अपना मार्ग बनाते हैं। वे सजीव हैं, उन्हें बाहर से निर्देशन की आवश्यकता नहीं। लेखक केवल द्रष्टा के रूप में दूर खड़ा देखा करता है।

मुंजाल इस पुस्तक का प्राण है। अथ से इति तक आप यही सोचेंगे कि उसके बिना पाटन का राज्य चलना कठिन था। मुंजाल से

घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी महारानी मीनलदेवी से उसकी सत्ता न देखी गई। उसने आनन्दसूरि के बहकावे में आकर उस गौरव को स्वयं लेना चाहा। वह असफल ही नहीं, स्वयं अपने अस्तित्व को भी खो बैठी। अंत में मुंजाल की ही पटुता और कुशलता से वह पुनः महारानी बन सकी।

मीनलदेवी या प्रसन्न का प्रेम मनुष्योचित है। समाज में आये दिन आपको वैसे उदाहरण मिलेंगे। सम्भव है आप मीनलदेवी और मुंजाल के प्रेम को उचित न समझें; पर यदि आप गुजरात या राजपुताने का इतिहास देखें तो लेखक की कल्पना असम्भव न लगेगी। मुंशीजी का प्रेम ऐसा नहीं जो रूढ़िगत हो, जिसका गला जकड़ दिया गया हो। प्रसन्न और त्रिभुवन इसके साक्षी हैं। प्रसन्न अपनी बूआ मीनलदेवी से स्पष्ट कहने में नहीं हिचकती कि 'मैं तो त्रिभुवन से शादी करूँगी ही, या यों कहिये कि कर चुकी।' मुंशीजी तो उस प्रेम के पोषक हैं जिसने संपूर्ण दिखावटी दुनिया को अपने पैरों से कुचला; जिसने पवित्रता का ढोंग करने वाले समाज के रंगे उपदेशकों की कभी परवाह न की; जिसने उनके विरोध में अपने आँसू और खून से निर्मित पद-चिह्न छोड़ते हुए अपना पथ-प्रदर्शन स्वयं किया है।

जहाँ तक कथानक का प्रश्न है; राजनीतिज्ञ मुंशी से कलाकार मुंशी कहीं बढ़चढ़ कर हैं। उनकी कलम में ताकत है, आँखों में देखने की क्षमता है और दिमाग में शक्ति है; जिससे अपनी कल्पना द्वारा सजीव चित्र प्रस्तुत कर सके हैं। यह ऐतिहासिक उपन्यास है, इतिहास नहीं। लेखक ने इतिहास की आत्मा ली है, पर कलेवर उसका अपना है। यदि कोई ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास की बारीकियों को ढूँढे तो यह उसकी भूल होगी।

यशस्वी लेखक ने जहाँ एक ओर युग की विशेषताओं के साथ मानवता का अत्याचार, वासना, राजनैतिक दाँव-पेंच, स्वार्थ साधकों की हिंसात्मकता तथा विलासी जीवन का दुष्परिणाम चित्रित किया है वहाँ भारत के प्राचीन गौरव की भी रक्षा की है। यह उपन्यास धर्म, इतिहास, प्रेम और कर्त्तव्य को साथ लेकर चलता है। मुंशीजी की लेखनी का प्रभाव तो उस समय ज्ञात होता है जब पाठक पात्रों के साथ ही वह चलता है। उसी में लीन होकर कभी हँसता है, कभी रोता है और कभी हृदय थाम कर, साँस रोककर अधीरतापूर्वक परिणाम के लिए विकल हो उठता है।

उपन्यास की यही सबसे बड़ी विशेषता है।

—अनुवादक

कारण श्रावक अत्यंत धनवान और स्वतंत्र हो गये थे। राजपूत जहाँ-तहाँ लूटपाट कर अपनी सत्ता बढ़ाने में कृतार्थता समझते जिससे देश में कहीं शांति न थी। इतने में गज़नी के बादशाह की आकांक्षा का ज्वालामुखी फट पड़ा। उसकी सेनाने पाटन को रौंद डाला, सोमनाथ को ध्वंस कर दिया; गुजरात की स्वतंत्रता पर कुठाराघात हो गया। भीमदेव जान लेकर कंथकोट (कच्छ) भागे।

पर वे वहाँ शान्त नहीं बैठे। उनमें शौर्य और साहस अथाह था। मुहम्मद गज़नी के पीठ फेरते ही बचे हुए योद्धाओं को एकत्र कर, उनमें स्वदेश-प्रेम उत्पन्न करना उनके बायें हाथ का खेल था। श्रावकों को अपने राजाओं के रक्षण में निर्भयतापूर्वक व्यापार करने की सुविधा प्राप्त थी। वे यवनों के अत्याचार से घबड़ा उठे थे, अतः उन्होंने भी सहायता की और बहादुर भीमने पाटन पर पुनः प्रभुत्व स्थापित कर लिया एवं यवनों द्वारा बैठाये हुए नामके राजाओं को देश से निकाल बाहर किया। पाटन पुनः स्वतंत्र हो गया।

भीमदेव योद्धा था, राजनीतिज्ञ नहीं। धनसंपन्न, सत्ताधारी व्यापारियों को वशमें रखने की कुछ भी बुद्धि उसमें न थी। लूटमार एवं बहाना ढूँढ़कर उत्पात करनेवाले विचारहीन राजपूतों को वशीभूत करने में वह असमर्थ था। पाटन के नगरसेठ एवं दण्डनायक विमल मंत्री ने धन के मद में पाटन त्याग चंद्रावती बसाया। अनेक धनी व्यापारी वहाँ जाकर बस गये और अपना राज्य-कार्य महाजनों द्वारा करने लगे। पाटन की सत्ता वहाँ नाम मात्र की थी। विमल के साथ भीमने मैत्री बनाये रखा और उसकी सहायता से आस पास के राज्यों से लड़ा एवं मालवराज की महत्त्वाकांक्षा को सीमित रखा। पाटन का राजा पराक्रमी और शूरवीर प्रसिद्ध था, पर पाटन के बाहर उसकी सत्ता उतनी अधिक न थी। मूलराज के समय में जागीर प्राप्त कर छोटे-छोटे राजा बनने वाले राजपूत योद्धा पाटन के राजा को नाम मात्र का चक्रवर्ती

मानते थे, शक्तिमान मंडलेश्वर भिन्न-भिन्न मण्डलों में निवास करते हुए अपनी स्वतंत्र सत्ता चलाते, और सबकी सहायता से पाटन पुनः प्राप्त करने के कारण भीमदेव उनसे कुछ बोल भी नहीं सकते थे।

जैनों और राजपूतों में झगड़ा चला करता और कभी-कभी युद्ध भी हो जाया करते। श्रावक सेठ भी शक्ति या शौर्य में उनसे कम नहीं थे जिससे राजा बड़ी कठिनता से दोनों पक्षों को शान्त रखने का प्रयत्न किया करता था। भीमने वानप्रस्थाश्रम लिया। उसकी प्रथम पत्नी वणिक-कन्या बकुलादेवी का पुत्र क्षेमराज बुद्धिशाली था पर उसे विश्वास था कि राजपूत सामंत उसकी सत्ता स्वीकार नहीं करेंगे जिससे बुद्धिमत्ता से उसने भी वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया एवं देहस्थली का मंडल अपने पुत्र के लिए माँग लिया। राजपूत स्त्री उदयामति का पुत्र कर्णदेव गद्दी पर बैठा। वह वीर था पर साथ ही अत्यन्त विलासी भी जिससे युद्ध की अपेक्षा कर्णावती की स्थापना कर उसमें भव्य महल बनवाने की ओर उसकी दृष्टि अधिक थी।

क्षेमराज का पुत्र देवप्रसाद अशांति की मूर्ति था। भीमदेव का पराक्रम, भोलापन, शौर्य और तेज उसे प्राप्त होने पर भी बुद्धि एवं राजनीतिज्ञता में वह वैसा ही कच्चा था। आस-पास के छोटे-छोटे स्वतंत्र नगरों को जीतकर राजपूत सामंतों का सरदार बन बैठा। उसे भीम के स्वतंत्र उत्पातपूर्ण दिन स्मरण आये। वह सोचता—'क्या ही अच्छा हो कि कर्णदेव के पश्चात् देवप्रसाद गद्दी पर बैठ जाय तो सोने का सूर्य उदय हो।'

इस समय पाटन के श्रावकों का बल बढ़ा। चंद्रावती गये हुए कितने ही जैनों को पाटन के लिए प्रेम था। वे लौट आये और कर्ण की शांत राजनीति के कारण वे सफल भी हुए। बहुत दिनों से मंत्री पद तो उन्हीं लोगों के हाथ में था, अतः यदि राजा अशक्त और उनके

कथनानुसार चलता रहा तो उसे नाम मात्र का मान अर्पित करने में क्या हानि थी ?

इसी समय चंद्रपुर की राजकुमारी मीनल का विवाह कर्णदेव के साथ हुआ पर राजाने कुछ आपस के मनोमालिन्य के कारण उसे त्याग दिया। नगरसेठ मुंजाल राजा का मित्र था, उसके प्रयास से पति-पत्नी के बीच समाधान हो गया। मीनलदेवी का आदर होने लगा, और उनसे कुमार जयदेव उत्पन्न हुआ। देवी जैन थी, उसका मुख्य सचिव और बुद्धिशाली मंत्री मुंजाल भी जैन था, जिससे राजपूतों की स्थिति कुछ गंभीर होने लगी। देवप्रसाद का प्रभाव कम होने लगा।

देवप्रसाद पहले तो चिड़चिड़ाया, पश्चात् लाचार हो देहस्थली में जा बैठा और वहाँ अपना मंडल बढ़ाने का प्रयत्न करने लगा। देहस्थली का मंडल एक छोटा-सा राज्य बन गया। पाटन को निर्बल देख देवप्रसाद का हृदय फट जाता; पर करे क्या ?

मुंजाल मंत्री ने धीरे-धीरे छोटे सामंतों को पाटन के वश में कर लिया पर मंडलेश्वरों को और विशेषकर मंडलेश्वर देवप्रसाद को वश में करना सरल नहीं था। साथ ही राजा भी कोई कड़ाई करने के विरुद्ध था जिससे वह कुछ करने में असमर्थ था।

कर्णदेव का अंतिम समय निकट था। क्या होगा, इस प्रश्न से वातावरण गंभीर बन गया।

२

संवत् ११५० के ग्रीष्म की रमणीय संध्या अंधकार में लय हो रही थी। सप्तमी-अष्टमी का अर्द्धचंद्र क्रमशः कान्तिमय होता जा रहा था। पाटन जानेका मार्ग इस समय शून्य और भयंकर लग रहा था; आस-

पास के वृक्षों के समूह के बीच से होकर बहने वाला पवन और दूर सियारों की भयंकर हुआँ-हुआँ कभी-कभी इस भयानक शान्ति में विघ्न डाल देता। ऐसे निर्जन मार्ग पर लुटेरे एवं डाकुओं की परवाह किये बिना दो घुड़सवार तेजी से पाटन की ओर चले जा रहे थे।

आगे दौड़ने वाले घोड़े का सवार प्रचंड और तेजस्वी लग रहा था; उसके बड़े-बड़े तेजपूर्ण नेत्र अंधकार में न दिखाई पड़ने वाले पाटन के कोट पर गड़े हुए थे और इतनी तेज चाल से संतुष्ट न हो वह बराबर अपने स्वाभिमानी घोड़े को एँड़ लगाकर और अधिक तेजी से दौड़ने के लिए प्रोत्साहित कर रहा था। उनका पहरावा उस समय के सामान्य वीरों जैसा था; उसकी छोटी और भ्रमर के समान काली दाढ़ी का कोना कान में लपेटा हुआ था।

दूसरा सवार सत्रह वर्ष का स्वरूपवान और चंचल युवक लग रहा था। उसके सुंदर नेत्र घोड़े के इतनी तेज दौड़ते रहने पर भी आस-पासके सौंदर्य का रसपान करने में चूकते न थे।

वातावरण में रमणीय अस्पष्टता, मोहक शान्ति एवं दुःखी हृदय में भी सुख प्रेरित करने की शक्ति थी; तथापि आगे चलने वाले सवार का चित्त अशान्त और भृकुटी चढ़ी हुई थी।

थोड़ा आगे बढ़ने पर आगेवाला सवार घोड़ा रोक और जीन पर पीछे घूमकर पीछे आनेवाले सवार से बोला—त्रिभुवन! इस मार्ग से तो दूरी कम पड़ेगी न?

त्रिभुवन मृदुता से हँसकर बोला—मुझे ठीक-ठीक स्मरण नहीं किंतु यह तो किसी का खेत लग रहा है।

पहला सवार—इसमें क्या? पास ही श्रावकों का अपासरा है, उसीके बगल से रास्ता है।

मार्ग बड़ा ही सकरा था। ऊपर घने वृक्षों के बीचमें कहीं-कहीं चंद्र-बिम्ब दिखाई पड़ जाता पर घोड़े चतुर एवं विश्वासी थे। सवार उनपर

श्रद्धा रखकर आगे बढ़े। थोड़ा आगे बढ़ने पर मार्ग चौड़ा हो गया और वृक्षों की पंक्ति से बना हुआ एक प्राकृतिक चौक मिला। कौमुदी वहाँ पर फैली हुई थी, सभी वस्तुएँ रुपहले रंग से रंगी हुई थीं। घुड़सवार अपने विचारों में लीन मार्गकी ओर विशेष ध्यान दिये बिना घोड़ा दौड़ाते हुए आगे बढ़ते गये।

इतने में अगले सवार का घोड़ा लड़खड़ाया और तेजी से दौड़ने से वह गिर पड़ा; साथही सवार भी नीचे गिरा; गिरते-गिरते उसकी दृष्टि सामने के चबूतरे पर पड़ी; गिरने की पीड़ा भूलकर वह उसी ओर देखने लगा।

रजतोपम चंद्रिका के साथ संध्याकालीन प्रकाश के मिश्रण से उत्पन्न अद्भुत स्वप्न समान संध्या के प्रकाश में उसने चबूतरे पर एक स्त्री देखी। उसका वस्त्र सफेद और सादा, मुखारविंद सुंदर पर निस्तेज, नेत्र बड़े पर म्लान मालूम पड़े। गिरते समय पलभर में ही सवार ने यह सब देख लिया। हृदय ने उसका गंभीर रेखा-चित्र उतारा और पहचान भी लिया। तल से एक दीर्घ निःश्वास निकला! स्वयं कहाँ है, क्या कर रहा है, इसका तो उसे ध्यान ही न रहा।

सवार तुरंत उठकर इधर-उधर दृष्टि डाले बिना पत्थर के चबूतरे की ओर दौड़ा—'कौन? ऐं!' पत्थर पर कोई था ही नहीं; सवार की आँखें निकल आईं, उसके अंग प्रत्यंग काँप उठे। उसने चारों ओर देखा, पर वहाँ कोई नहीं! स्वप्न समझ उसने आँखों मलीं। पागल के समान विह्वलता से वह चारों ओर देखने लगा।

'कैसी भ्रमणा? हे भगवान्।' राजकुमार ऐसी दीनता से बड़बड़ाया कि कलेजा फट कर निकला पड़ता हो। सिर में होनेवाली वेदना को रोकने के लिए उसने अपनी कनपटी दबाई, मुख पर आया हुआ पसीना पोंछा, आह भरी। वह अज्ञात भयसे काँप उठा।

इतने में दूसरा सवार आ पहुँचा। उसने कहा—पिताजी क्या देख रहे हैं ? घोड़े से गिर पड़े क्या ?

किसी प्रकार मन को काबू में करते हुए बोला—नहीं बेटा ! घोड़ा जरा लड़खड़ा गया।

पुत्र—आप गिर पड़े ! क्या था ? यह तो आपके लिए आज नई बात हुई।

यह कह वह हँसा पर पास जाकर पिता की भयंकर आकृति देख ठक-सा रह गया। पिता के स्वभाव से परिचित होने से ऐसे अवसरों पर चुप रहना ही वह श्रेयस्कर समझता था। चुपचाप दाँत पर दाँत बैठाए हुये अपने घोड़े के पास आकर पिताने धीरे से उसे सहलाया। व्यथा और उदासी से घोड़े की लगाम पीठ पर डाल और सिर नीचे झुकाकर वह विचार में लीन हो गया। क्षण भर में ही उसके चेहरे पर बुढ़ापे की झलक दिखलाई पड़ने लगी।

पीछे चंचल पुत्र ने पिता की व्यथा देखी; बीच में बोलकर उनकी व्यथा बढ़ाने की अपेक्षा मौन धारण कर वह भी घोड़ा धीरे-धीरे चलाने लगा। आगे का घोड़ा भी धीरे-धीरे चला जा रहा था।

पंद्रह मिनट तक इस प्रकार चलने के पश्चात् किसी के चिल्लाने से आगे के सवार की तंद्रा भंग हुई, 'अरे ! सामने तार बंधा हुआ है, इधर घोड़ा ले जाने से काँटों में फँस जाओगे।'

चित्त ठिकाने लाकर सवार ने पूछा—क्यों ? यह रास्ता बंद है क्या ?

आवाज—हाँ ! बापू इस ओर घूम जाइये तो रास्ता मिलेगा।

पिता—यह कौन स्थान है ?

पुत्र बोल उठा—पहचानते नहीं हैं क्या ? विमल मंत्री का स्थानक है।

पिता—ऐं ?

पुत्रने पूछा—पाटन का फाटक कितनी दूर है ?

'थोड़ी ही दूर है, इधर से जाइये।' कह कर एक ग्रामीण ने मार्ग दिखा दिया।

पिता और पुत्र साथ-साथ चले।

पिता—देर होने से पाटन का फाटक बंद हो जायगा तो बड़ी कठिनता होगी।

पुत्र—उस यति ने रास्ते में देर लगा दी! वह तो मुझे कोई पहुँचा हुआ मालूम पड़ता है।

पिता—बेटा! आजकल चन्द्रावती के जैनों के अभिमान का ठिकाना नहीं है। वे पाटन भी जैनों का बनाना चाहते हैं। क्या करूँ मेरा कुछ बस नहीं चलता।

पुत्र—पिताजी! इतनी जोर से बोल रहे हैं, कोई सुन लेगा।

पिता—हाँ, भूल गया। यह कोट आ गया, पर त्रिभुवन! वह यति तो हमारे पहले चला था, वह तो पहुँच गया होगा।

त्रिभुवन—जी हाँ, हम लोग थकावट मिटाने के लिये सो गये और वह चला गया।

इतने में फाटक आ गया, वह बन्द होनेवाला ही था। पिता-पुत्र चुप-चाप फाटक पार कर गये।

थोड़ी दूर जाने पर प्रथम सवार ने घोड़ा रोक कर कहा—बेटा! मैं राजगढ़ जाता हूं। तू अपने यहाँ जा।

कुछ देर तक पिता को देख कर पुत्र बोला—पिताजी! इस प्रकार अकेले जा रहे हैं, कुछ हुआ तो?

पिता—पागल! मुझे क्या होनेवाला है? किसका साहस—

पुत्र—कुसमय है। आप जो कदम उठा रहे हैं वह बड़ा ही भयावह है।

पिता—भयावह क्यों? जीवन में न जाने कितनी बार ऐसे अवसर आये और गये।

पुत्र—पर मामा कठोर हैं।

पिता—जा, जा, चुपचाप जाकर सो रह। ऐसे-ऐसे मंत्रियों को बहुत देखा है।

पुत्र—अच्छी बात है। कल प्रातःकाल सूचना दीजियेगा।

पिता—कुछ भी चिंता मत करो।

कह कर वे एक ओर चले गये। पुत्र, पिता के अदृष्ट होने तक खड़ा रहा और कुछ देर बाद वह भी उसी ओर चल पड़ा।

३

राजपूत सवार राजगढ़ के नौकरों के जाने-आने वाले पिछले फाटक पर गया और उसे धीरे से थपथपाया। थोड़ी देर में एक स्त्री ने द्वार खोलकर पूछा—कौन, भीमो ?

सवार ने ज़रा हँस कर कहा—नहीं, ज़रा समरसेन चोबदार को बुला दीजियेगा ?

स्त्री लजा गई और सिर नीचाकर चली गई।

सवार कुछ देर तक प्रतीक्षा करता रहा, अंतमें थककर पास ही घोड़ा बांध, द्वार लांघ कर भीतर गया। राजमहल के कोने कोने से वह परिचित लगता था, वह नौकरों के निवास स्थल की ओर गया और एक कोठरी का द्वार खटखटाया।

'इस समय कौन है!' कह कर एक वृद्ध मनुष्य ने दरवाजा खोला। सवार को देखते ही आश्चर्य चकित हो बोल उठा—कौन ?

सवार—मैं, चुप रह! भीतर आने दे।

भीतर जाकर सवार ने संभाल कर दरवाजा बंद कर दिया। चोबदार सामने हाथ जोड़ खड़ा रहा।

चोबदार—प्रभु ! आप इस समय और यहाँ !

सवार—समर ! इस समय ही मेरा यहाँ काम है. अभी न आने से जीवन भर देहस्थली के गढ़ में पड़े-पड़े सड़ना पड़ता ।

चोबदार—प्रभु ! मुंजाल मंत्री या मीनलदेवी को मालूम हो जाय ।

सवार—तब क्या ? तीन-चार दिन इस प्रकार बीत जांय तो पीछे मुझे कोई चिन्ता नहीं है ।

समर—जैसी प्रभु की आज्ञा । अब—

सवार—अब क्या ? जो कुछ तेरे पास खाने के लिए हो, ले आ, तब लोला वैद्य को बुला ।

समर—बापू ! यह तो नहीं हो सकता । वह तो दिन-रात महाराजा की सेवा में रहते हैं ।

सवार—उसका जामाता वाचस्पति क्या करता है ?

समर—हाँ ! वह खाली है, पर उससे क्या कहूँ ?

सवार—कहना कि जिसके कारण आप उपाध्याय हुए वे बुला रहे हैं ।

चोबदार ने कुछ खाने के लिए ला दिया । राजपूत ने जब तक भोजन किया उतनी देर में समर लौट आया ।

समर—बापू ! वाचस्पति आ रहे हैं ।

राजपूत—अच्छा, तुम जाओ ।

'जैसी प्रभु की आज्ञा' कह कर चोबदार चला गया ।

राजपूत इधर-उधर घूमने लगा । वह बड़बड़ाया—आप इस समय कहाँ से ? उसकी भवें चढ़ी हुई थीं, आँखों में खिन्नता स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी । विशाल स्कंधपर पिंड निकल आया था । थोड़ी देर में एक दुबला पर देखने में बुद्धिमान-सा व्यक्ति आया । बड़ी से बड़ी भीड़ में कोई भी उसे ब्राह्मण पंडित कह सकता था । वाचस्पति गजानन

पंडित ने काशी में विद्याध्ययन किया था; इस समय वह पाटन की पाठशाला का प्रधान उपाध्याय था; राजवैद्य लीलानंद का वह जामाता एवं विद्वान तथा विश्वासपात्र होने के कारण राजगढ़ में माननीय था। आकर उसने पुकारा—समरसेन ?

राजपूत—समर नहीं है। मैं हूँ, मैंने ही तुम्हें बुलाया है।

आवाज सुनकर वाचस्पति किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया, उसका कलेजा काँप उठा, उसका होश-हवास उड़ गया, वह बोला—कौन ? मंडले—

राजपूत—धीरे-धीरे पंडित ! यह भी क्या चिल्लाने का स्थान है ?

वाचस्पति—आप यहाँ ? आपका साहस भी अपरिमित है।

राजपूत—मेरे साहस को छोड़ो ! मैं कुछ काम से आया हूँ।

वाचस्पति—क्या ?

राजपूत—चाचाजी से मुझे मिलना है।

वाचस्पति—यह असंभव है। दिनरात मीनलदेवी, उदयमाता अथवा मुंजाल मेहता उनके पास रहते हैं।

राजपूत—अपने चाचा से मैं मिल भी नहीं सकता ?

वाचस्पति—आपके अन्य सब तो शत्रु हैं।

राजपूत—वाचस्पति ! तुझसे क्या इतना भी न हो सकेगा ? आज उपाध्याय तू किसके कारण हुआ है ! यह भी समय है कि भीमदेव का पौत्र याचना करे और तू अस्वीकार कर दे, एँ ?

वाचस्पति—समय बड़ा बलवान है, नहीं-नहीं पुरुष बलवान····!

राजपूत—अपनी विद्वत्ता रहने दे; कुछ रास्ता निकाल।

वाचस्पति—मार्ग-दर्शन कठिन है। गुजरात का राजतंत्र इस समय बिगड़ा हुआ है। सुधारनेवाला श्रीहरि····!

राजपूत क्रोध से बोला—श्रीहरि को छोड़ ! सीधे से कुछ करेगा या नहीं ? चाहे जैसे तुझे यह काम करना ही होगा।

सिर खुजलाते हुए पंडित विचार करने लगा—प्रभु ! एक काम कीजियेगा ?

राजपूत—क्या ?

वाचस्पति—बनिया जैसा फेंटा बाँध कर यह मेरी शाल ओढ़ लीजिये, पर स्थिति विपज्जनक है, जीवन की बाजी है। मेरे साथ चलिये, आपको छिपा दूँगा और अवसर पानेपर वैद्यराज से कहूँगा !

राजपूत ने फेंटा बाँधते हुए कहा—हाँ, स्वीकार है।

वाचस्पति—बापू ! यदि कुछ हुआ तो उसकी जिम्मेदारी मुझपर न होगी।

राजपूत—घबड़ाता क्यों है ? ले, मैं तैयार हो गया। पर, पर वाचस्पति ! एक प्रश्न पूछूँ ?

वाचस्पति—पूछिये मेरी विद्वत्ता आपके ही लिए है।

दुःखित आवाज से राजपूत ने पूछा—मृत मनुष्य भूत कब होता है ?

वाचस्पति—महाराज ! विषय गूढ़ है, शास्त्रीय है। श्राद्धविधि के अनादर से, अत्यन्त वासना के विकार से, प्रेतलोक में आत्मा रह जाय तो प्रसंगवशात् वह पृथ्वी पर वापस आती है।

राजपूत—किसलिये ?

वाच०—स्नेही जन से मिलने अथवा सचेत करने के लिए।

"अच्छा !" खिन्नता से हँसते हुए राजपूत बोला। उसके चेहरे पर पुनः निराशा के चिह्न छा गये। आगे आगे वाचस्पति, पीछे राजपूत कोठरी से निकल कर धीरे-धीरे उस कमरे की ओर गए जिसमें कर्णदेव मृत्युशय्या पर पड़े हुए थे।

राजमहल सूनसान था। राजा की रुग्णता एवं भविष्य में क्या होगा इसकी चिंता से सभी का मन चंचल था। महल में मद्धिम दीप जल रहे थे, सेवकगण धीरे-धीरे चलते थे, सभी के चेहरे गंभीर एवं चिंताग्रस्त थे। एक अंधेरे कमरे से वाचस्पति राजपूत को ऊपर ले

गया और राजा कर्णदेव जिस कमरे में पड़े हुए थे उसके बगल के कमरे तक वे लोग निर्विघ्न पहुँच गये। इतने में कड़ों की खनखनाहट सुन पड़ी। वाचस्पति राजपूत का हाथ पकड़ कर बोला—मरे !

राजपूत ने धीरे से पूछा—क्यों ?

वाचस्पति—मालूम पड़ता है देवी आ रही हैं। इस छत पर जाइये, अवसर देखकर बुलाऊँगा।

राजपूत—अरे !

वाचस्पति—अरे न वरे ! कह कर आगे खुले हुए द्वार में राजपूत को ढकेल कर दरवाजा उसने बंद कर दिया।

ऊपर जाते-जाते उसने सुना, पास में आते हुए पदचाप एवं स्थिर सत्तावाही आवाज में किसी को पूछते हुए 'कौन ?'

'कोई नहीं, यह तो मैं हूँ माताजी' वाचस्पति को उत्तर देते हुए भी राजपूत ने सुना।

अधीरता से राजपूत का हृदय व्याकुल हो उठा। इधर उधर चहल-कदमी करते हुए वह बोला—क्या करूँ ? कुछ मार्ग नहीं दिखाई पड़ रहा है।

अँधेरे में से एक आवाज आई—आओ भाई ! मैं दिखा दूँ।

राजपूत चौंक पड़ा, उसका हाथ तुरंत तलवार पर गया, उसने पूछा—कौन ?

अस्त होने वाले चंद्र के प्रकाश में कोई आता हुआ दीख पड़ा। नवागंतुक ने कटाक्षमय आवाज में पूछा—राजपूतराज ! इतना शीघ्र भूल गये ?

राजपूत—कौन ? यति, जो रास्ते में मिला था वही ? इस समय यहाँ कहाँ से ?

यति—जहाँ से आप आये। हमारे भाग्य में मित्र ही होना लिखा होगा।

राजपूत—पर आप आये कहाँ से ?

यति—जिस प्रकार आपको कोई छिपाने वाला मिल गया, वैसे ही मुझे भी कोई मिल गया।

दाँत पीसकर राजपूत बोला—यति जी ! एक दूसरे का भेद जानने से कोई लाभ नहीं, किंतु जो आप कह रहे हैं वह ठीक लगता है। हम मित्र बनेंगे ऐसा जान पड़ता है। नहीं तो फिर कट्टर शत्रु !

यति—अभी तो इस भूमि में शत्रुता की ही ध्वनि सुनाई पड़ रही है।

राजपूत—वह श्रावकों के प्रताप से !

यति—या राजपूतों के ?

राजपूत—यह तो कर्णदेव की मृत्यु के पश्चात् पता चलेगा।

यति—इस समय यह बात जाने दीजिये।

राजपूत ने मूँछ पर हाथ फेरते हुए कहा—तब मित्रता की बात कीजिये, आपका नाम क्या है ?

यति—आनन्दसूरि, आपका ?

जरा विचार कर राजपूत बोला—मुझे लोग देवीसिंह कहते हैं।

थोड़ा हँसकर यति ने उत्तर दिया—आज ही पता चला कि मंडलेश्वर भी झूठ बोलते हैं।

देवीसिंह चौंक पड़ा। उसका हाथ अनजाने में पुनः तलवार पर गया—तू कौन है ?

शांतिपूर्वक यति बोला—तलवार निकालने की आवश्यकता नहीं है मंडलेश्वर ? शोरगुल होने से आपके ही लिए हानिकर होगा।

अपनी स्थितिका ज्ञान होते ही राजपूत ने दीर्घ निःश्वास लिया और तलवार पर से हाथ हटाकर पूछा—आनंदसूरि ! आप कौन हैं ? क्या मेरा रहस्य लोगों पर प्रकट कर देंगे ?

आनंद०—नहीं राजन् ! आपको दुःख देना मेरा काम नहीं। पर आप पर इस समय तो दैवी कष्ट है।

राजपूत—यति ! इस प्रकार दैव तो अनेकों बार रुष्ट और प्रसन्न हुआ। मुझे इसकी चिंता नहीं है।

आनंद०—मंडलेश्वर ! राजा रावण का भी अभिमान नहीं रहा। आपके दिन नजदीक आ रहे हैं। इस समय शत्रु रूप से नहीं बल्कि मित्र रूप से समझाता हूँ। जो दिन शेष हैं उनका सदुपयोग कीजिये।

राजपूत—जितना हो सकेगा उतना सदुपयोग तो श्रावकों को पद-दलित करने में करूँगा ही। इन पापियों ने मेरा सर्वनाश किया है। मुझे अधिक कष्ट भोगने की परवाह नहीं।

आनंद०—श्रावक आप द्वारा अब और अधिक पददलित होनेवाले नहीं।

राजपूत—क्यों ?

आनंद०—गुरुदेव का वचन है—

राजपूत—क्या ?

आनंद०—मेरे हाथ से जिन भगवान के शत्रुओं का नाश होगा।

मंडलेश्वर काँप उठे; वे मौन खड़े रहे।

आनंद—राजा ! आज वर्षों से आप जिन महाप्रभु के दीन सेवकों को कष्ट दे रहे हैं, आपको क्षमा करना असंभव है; तथापि आप वीर नर हैं, गुजरात के अलंकार रूप हैं।

तिरस्कार से हँसकर राजपूत ने कहा—तुम्हारी क्षमा की परवाह ही किसे है ?

यति—ठीक है, राजा की मृत्यु के पश्चात् अत्यधिक उत्पात मचेगा। कभी कुछ काम पड़े तो—!

घमंड से हँसकर मंडलेश्वर ने कहा—काम क्या पड़ेगा····

यति—राजा ! आप विज्ञ हैं, शूरवीर हैं। धर्म-विरोध न होता तो आपका उत्थान देख मैं संतुष्ट होता, तथापि आज की भेंट की स्मृति

में वचन देता हूँ उसे स्मरण रखियेगा; कभी कोई काम पड़ जाय जो आनंदसूरि से कहियेगा, वह कर देगा।

राजपूत—यति ! मंडलेश्वर याचना नहीं करता और कभी करेगा भी नहीं। जैसे धन के घमंड में श्रावक चूर हैं वैसे ही अपने बाहुबल के पराक्रम में हम भी मस्त हैं।

यति—जैसी आपकी इच्छा ! लेकिन स्मरण रखियेगा।

राजपूत—मंडलेश्वर डरता नहीं।

यति—तथापि मृत्यु से भय लगेगा।

राजपूत—यति ! मृत्यु तो मेरे लिये एक खेल है।

यति—जैसी इच्छा, मैं तो जाता हूँ, मैं उस ओर से आया हूँ और उसी ओर जाऊँगा। यह कह कर यति चला गया।

मंडलेश्वर विचार मग्न हो मूँछ पर हाथ फेरने लगे, उनके मस्तिष्क को संध्या समय का भूत एवं यति की सूचना उद्वेलित कर रही थी। कितने ही वर्षों में उसने अकेले हाथ अपने मंडल को एक छोटे से राज्य में परिणत कर दिया था। उसके नाम का डंका संपूर्ण गुजरात में बज रहा था पर देहस्थली के अपने मंडल में पड़े रहना उसे अच्छा न लगता था। पाटन उसके लिए सृष्टि-मुकुट रूप था। उसमें महामणि के समान सुशोभित होने की उसकी इच्छा थी। इधर पाटन के राज्य-कर्त्तागण उसे निर्बल बनाने के लिए घोर परिश्रम कर रहे थे। यद्यपि यह परिश्रम अबतक अधिकांशतः निष्फल हुआ तथापि उसने मंडलेश्वर को संक्षुब्ध बना दिया था।

४

आनंदसूरि छत के दूसरे छोर पर पहुँचा। वह मन में प्रसन्न हो रहा था। गुरुदेव की आज्ञा लेकर वह चंद्रावती से पाटन आया था।

उस समय उसे आशा नहीं थी कि इतने शुभ मुहूर्त्त में वह चला है।

एक स्त्री की आवाज आई—प्रभु ! महाराज !

यति विचार से जाग उठा, उसने पूछा—कौन, रेणुका ?

रेणुका—जी हाँ, पधारिये। मंत्री को मैंने आपका पत्र दे दिया, वे आपको बुला रहे हैं।

यति—कहाँ हैं ?

रेणुका—चलिये मेरे साथ।

यति को जरा क्षोभ हुआ। मुंजाल—गुजरात के महामंत्री की ख्याति कौन नहीं जानता ? उनके नाम की हुण्डी बगदाद और वेनिस में भी सकारी जाती। उनके शक्ति की साक्षी काँपते हुए सामंत एवं मंडलेश्वर दे रहे थे। मालवराज उन्हें वशमें करने के लिए अपरिमित धन देने के लिए तैयार थे; पाटन कि प्रजा उनके पीछे पागल थी तथा उनकी उँगली के संकेत मात्र पर मरने के लिए तैयार थी। ऐसे व्यक्ति से प्रथम बार मिलने में यति का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था।

एक कमरे में दो तीन मुनीम बैठे हुए कुछ लिख रहे थे और एक कोने में शस्त्र से सुसज्जित चार-पाँच व्यक्ति धीरे-धीरे बात कर रहे थे। यति को देखकर सभी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे पर कोई बोला नहीं। रेणुका यति से ठहरने का संकेत कर भीतर चली गई। थोड़ी देर में वापस आकर उसे भीतर ले गई।

भीतर झूले पर मंत्री बैठे थे. वे पैंतीस वर्ष के लगभग थे। उनका चेहरा स्वरूपवान, आँखें तलवार की धार के समान तीक्ष्ण, शरीर सशक्त और सुडौल था एवं मुँह पर इस वय में भी युवावस्था जितनी ही मूँछ थी। उनके कपालपर विचार की गौरवशील रेखायें दीप्त हो रही थीं। लंबी चुटिया कंधे पर पड़ी हुई थी, उसे वे बांध रहे थे।

यति की ओर एक तीक्ष्ण दृष्टि डाल उन्हें नमस्कार किया एवं झूले

पर बैठने का संकेत करते हुए स्वयं पास ही में पड़े हुए एक पट्टे पर बैठ-कर मंत्री बोले—विराजिये ।

'नमस्कार मंत्री महाराज !' कह कर आनंदसूरि बैठ गया । प्रथम बार मुंजाल को देख उसके मन में कुछ विचार उत्पन्न हुए । मुंजाल की लोकप्रियता, उनका विशाल व्यापार, उनकी दृढ़ राजनीति, शत्रुओं के मुख से श्रुत मीनलदेवी के साथ संबंध, ये सभी बातें तुरंत उसके मन में एक साथ उठीं । इन सभी विचारों को दूर कर उसने मंत्री के साथ बातचीत प्रारम्भ कर दी—चंद्रावती में सब लोग अच्छी तरह हैं; नगरसेठ का पत्र आपने पढ़ा ?

जरा गंभीर आवाज में मुंजाल ने कहा—जी हाँ, पर इसमें उन्होंने माँ की खबर क्यों नहीं लिखी ? मौसी का क्या हाल है ?

आनंद—जब मैं आया, उस समय तो कुछ निर्बल थीं ।

मुंजाल—कहिये, कैसे पधारे ? आप जानते होंगे कि मुझे इस समय अवकाश बहुत कम है ।

आनंद—मैं आप के काम में विघ्न नहीं बल्कि सहायता करने आया हूँ ।

तिरस्कार से हँस कर मंत्री चुप रहे ।

आनंद—जिन भगवान की कृपा से, गुरुदेव का वचन है कि इस समय मेरे ललाट में अनेक कार्य मेरे हाथ से होना लिखा है । आपकी सहायता करने के लिए ही मैं आया हूँ ।

मुंजाल—देखिये, सौभाग्य भाई लिखते हैं कि आप विद्वान् और चतुर हैं । अतः सहायता तो बहुत मिलेगी किंतु सच पूछा जाय तो एक ही काम कीजिये ।

आनंद—क्या ?

शांतिपूर्वक दृढ़ता से मुंजाल ने कहा—कृपा कर पाटन के राजतंत्र में चंद्रावती के उत्पात का समावेश करने का प्रयत्न मत कीजियेगा ।

यति चौंक पड़ा। मुंजाल को कैसे पता चल गया कि वह इसीलिए आया है! उसके मनमें डर उत्पन्न हो गया।

यति—मैं कोई उपद्रव खड़ा करने नहीं आया हूँ। जैसा कि नगर-सेठ ने लिखा है आपसे मिलने के पश्चात् मीनल माता से मिलूँगा। यदि मेरे लायक कोई काम होगा तभी यहाँ ठहरूँगा।

इन शब्दों पर विश्वास न करता हो इस प्रकार मुंजाल कुछ देर तक यति को देखते रहे, तत्पश्चात् वे बोले—आनंदसूरि जी! मुझे अधिक बातचीत पसंद नहीं। चंद्रावती के श्रावकों की सत्ता के तिनिधि बनकर आप आये हैं पर मुझे पाटन की राजनीति में धर्मोन्माद नहीं लाना है, यदि आप इसका प्रयत्न करेंगे तो आपसे मेरी नहीं पटेगी। इतना ही मैं कह देता हूँ कि यदि आप ऐसा करेंगे तो मुझे आप शत्रु-रूप में पायेंगे।

यति—जी नहीं, ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है। अभी तो मैं मित्र रूप में ही आया हूँ; इसका प्रमाण चाहें तो अभी दे सकता हूँ।

मंत्री—क्या?

यति—एक गुप्त बात बताऊँ?

तिरस्कार से हँसते हुए मंत्री ने पूछा—क्या?

यति—कर्णदेव का भतीजा देवप्रसाद यहाँ है।

यह सुन मुंजाल खिलखिलाकर हँस पड़े—आनंदसूरि जी! चंद्रावती में ऐसे ही राज-कार्य चलता है क्या?

यति—क्यों?

मुंजाल—यही गुप्त बात है? पाटन के बाहर दोपहर को आप उनसे मिले, इस समय छत पर एकान्त में बातचीत हुई। क्या ये बातें मुझसे छिपी हैं? यति जी लोगों को मोक्ष-मार्ग बतलाने का काम आप लें। मुझे राज्य-कार्य करने दीजिये।

यति दिग्मूढ़ बन गया, उसका गर्व खर्व हो गया। वह बोला—मंत्रिराज ! क्षमा कीजिये। आपकी शक्ति से मैं अनभिज्ञ था।

भयंकर दृष्टिपात कर मुंजाल ने कहा—अच्छा, पर इतना स्मरण रखियेगा कि मेरी राजनीति में हस्तक्षेप करने वालों को मैं क्षमा नहीं करता। कहिये, क्या चाहते हैं ? कुछ भोजन किया या नहीं ?

यति—मीनल माँ को प्रणाम करना चाहता हूँ, आज उपवास है जिससे मुझे भोजन नहीं करना है।

मुंजाल—ठीक है, मेरे साथ चलिये, मैं भी देवी के पास जा रहा हूँ।

यह कह कर खूँटी पर से दुपट्टा उतारकर मुंजाल ने कंधे पर डाल लिया और दूसरे द्वार से यति को ले गये। आनंदसूरि का अभिमान मंत्री के आगे दब गया। उसके आगे-आगे गौरव से पैर रखते हुए मुंजाल तेजी से चल रहे थे। उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि चन्द्रावती में और चाहे जो हो, पाटन के मंत्री के समान वहाँ कोई नर नहीं है।

रानी के महल के पास पहुँचने पर मुंजाल ने यति को खड़ा रहने के लिये कहा। द्वार बंद था, द्वार पर एक हरी हांडी में दीपक मंद प्रकाश कर रहा था। मुंजाल ने कड़ा खटखटाया। कुछ देर पश्चात् एक वृद्ध स्त्री ने दरवाजा खोलकर पूछा—कौन ?

मुंजाल—मैं हूँ।

स्त्री—आइये, माता जी आपकी ही बाट जोह रही हैं। ये कौन हैं ?

मुंजाल—ये चंद्रावती के यति हैं। तुम यहाँ बैठो, मैं अभी बुलाऊँगा।

यती ने मुंजाल एवं मीनल देवी के संबंध में अनेक बातें सुनी थीं। इस समय छिपकर, दीवाल तोड़ कर, अदृष्ट रहते हुए, इन

दोनों की बातचीत सुन ली जा सके तो कैसा ? यति गुण पूजक था और कर्णदेव के नगर में निवास करने वाले महान् व्यक्तियों के समागम हेतु से ही वह यहाँ आया था।

सद्भाग्य से वह हेतु निर्विघ्न पूर्ण हुआ। कब द्वार खुले और इन महान् व्यक्तियों से भी अद्भुत मीनलदेवी का दर्शन कर पाये, यह विचार करते हुए वह खड़ा रहा। उसने सोचा कि जब तक मुंजाल की सत्ता को हीन करने की कुंजी हाथ नहीं लगती तब तक सब व्यर्थ है। मीनल देवी के संबंध में उसने बहुत कुछ सुना था जिससे उसके विचार कहाँ तक सफल होंगे, यह रानी से साक्षात्कार होने के पश्चात् ही मालूम हो सकेगा; यह सोच वह विचारमग्न हो गया।

५

पिता का घोड़ा अदृष्ट होते ही, उनकी आज्ञापर ध्यान दिये बिना त्रिभुवन भी उसी मार्ग से चल पड़ा। उसका मन प्रफुल्लित था क्योंकि पिता के दुःखों से वह अनभिज्ञ था। उसके लिए पाटन सजीव सुख-स्वप्न जैसा था पर दुर्भाग्यवश यहाँ वह थोड़ी देर भी नहीं रहने पाता था। धीरे-धीरे वह राजगढ़ की ओर बढ़ कर एक भिन्न मार्ग की ओर चला। कुछ दूर जाने पर एक कोने में. एकांत खिड़की के नीचे घोड़ा खड़ा कर, उसपर से वह उतरा और खिड़की के बंद दरवाजे पर कंकड़ उठाकर मारने लगा। ऐसे ही थोड़ी-थोड़ी देर बाद तीन-चार बार कंकड़ मारने पर दरवाजा धीरे से खुला और एक सुकुमार बालिका का खिला हुआ चेहरा बाहर आया। इधर-उधर सतर्कता से देखकर उसने दूसरा दरवाजा भी खोला। और गवाक्ष में आकर नीचे देखकर उसने पूछा—कौन ?

त्रिभुवन—अरे कौन वाली ! कब तक खड़ा रखेगी ?

हँसते हुए बाला ने कहा—कौन है ? जाता है या नहीं !

त्रिभुवन—जाऊँ कहाँ ? मैं तो आ रहा हूँ, रस्सी लटकाओ ।

बाला—रस्सी तो तीन दिन हुए टूट गई ।

त्रिभुवन—नहीं नहीं प्रसन्न ! देखो, पिताजी का काम था जिससे नहीं आ सका ।

बाला—इस समय मुझे काम है, वापस जाइये ।

पर साथ ही साथ वह खूंटी से रस्सी उतार कर उसे कटघरे से बाँधने लगी ।

त्रिभुवन—क्षत्री भी आकर कभी वापस जाते हैं ? मैं क्षत्रिय हूँ !

प्रसन्न—इतनी रात में चोर के समान आना ही आपका क्षत्रियत्व प्रकट करता है ।

त्रिभुवन—जो चाहे कह ले; बस-बस, इतना बहुत है अधिक नीचे तक लटकाने से क्या लाभ ?

रस्सी पकड़ कर वह एक हाथ के लगभग ही ऊपर पहुँचा होगा कि हँसते-हँसते प्रसन्न ने रस्सी की गाँठ ढीली कर दी । रस्सी छूट गई और त्रिभुवन रस्सी के साथ धड़ाम से जमीन पर आ रहा । त्रिभुवन हँसता हुआ उठा और बोला—अरे भवानी ! कोई चौकीदार आ जायगा तो मेरी और तुम्हारी दोनों की दुर्गति हो जायगी ।

प्रसन्न—तो मैं क्या करूँ ? आपका भोग, रस्सी फेंकिये, अब ठीक से बाँधूँगी ।

त्रिभुवन के रस्सी फेंकने पर प्रसन्न ने उसे पुनः बाँधा । दो पल में त्रिभुवन बरामदे पर पहुँच गया और कटघरा पकड़कर दूसरी ओर कूद कर प्रसन्न को अपनी भुजाओं में जकड़ लिया ।

'मेरी शपथ ! यदि मुझे पकड़ा तो ।'

प्रसन्न हटकर बोली ।

त्रिभुवन—क्यों ?

मुँह बिचकाकर प्रसन्न बोली—मैं कोपभवन में हूँ, तीन दिन तो मेरे लिए तीन युग हो गये।

त्रिभुवन—हाँ-हाँ ! मैं भी समझता हूँ।

यह कह त्रिभुवन उसे पकड़ने को बढ़ा कि बिजली के समान प्रसन्न भीतर भाग गई, पीछे-पीछे त्रिभुवन दौड़ा किंतु प्रसन्न झूले पर चढ़ कर पेंग मारने लगी।

त्रिभुवन—अरे बंद कर ? मरना है क्या ?

अधिकाधिक तेजी से पेंग मारते हुए प्रसन्न बोली–पकड़िये साहस हो तो ! उसके नेत्र हास्य और विनोद पूर्ण थे। त्रिभुवन को चिढ़ाने के लिए पेंग मारने के श्रम से उसका मुँह लाल हो उठा। धीरे-धीरे उसके बाल भी बिखर गये और झूला तेजी से झूलने लगा।

त्रिभुवन—प्रसन्न ! गिर जायगी।

प्रसन्न—आपकी बला से। आये क्यों नहीं ? अब मैं उतरूँगी ही नहीं जो मन में आये करें। वह बैठ-बैठकर पेंग मार रही थी जिससे झूला क्रमशः उत्तरोत्तर तेज हो रहा था। प्रसन्न ने मोहिनी की आकर्षक भयंकरता धारण की। त्रिभुवन तो भौंचक्का सा हो गया; झूला टूट गया तो क्या होगा, इसी चिंता में मग्न विमूढ़-सा वह खड़ा रहा।

इसी समय प्रसन्न ने डोर छोड़ दिया और हँसती हुई परिणाम का विचार किये बिना वह कूद पड़ी एवं सामने खड़े त्रिभुवन पर जा गिरी। अचानक इस प्रकार प्रसन्न के आ पड़ने से त्रिभुवन चकित हो गया और लड़खड़ा कर जमीन पर गिर पड़ा। गिरने से दोनों को सख्त चोट लगी तथापि जमीन पर पड़े-पड़े हँसते हुए दोनों एक दूसरे से लिपट गये।

'परिहास करती है !' कह कर त्रिभुवन ने दो-एक चपत जमा दिया। प्रसन्न ने भी प्रत्युत्तर में यथाशक्ति त्रिभुवन की मरम्मत की।

'उठिये, आतिथ्य सत्कार पूरा हो गया।'

'मेरा दुर्भाग्य जो मैं यहाँ आया। चलो झूलेपर बैठें, मेरा तो सिर घूम रहा है।'

'यह मेरा हाथ देखा ? खून निकल रहा है, छिल जो गया !'

'अच्छा हुआ ! अब चलता हूँ।'

'कहाँ ? तब आये क्यों ?' प्रसन्न के मुँह से स्वतः ही निकल पड़ा।

'तुम्हीं न कह रही थी कि चले जाओ, तो मैं चला।' त्रिभुवन भी प्रसन्न की मानसिक स्थिति समझ गया था।

'यह नहीं हो सकता, पहले यह बताइये कि अब तो आप यहाँ रहेंगे न ?'

गंभीर हो त्रिभुवन ने उत्तर दिया—प्रसन्न ! कुछ ठीक नहीं है और न कुछ समझ ही में आ रहा है, पर इस समय बादल गहरा घिरा हुआ मालूम पड़ता है।

प्रसन्न—आपके पिता से तो भगवान बचाये।

त्रिभुवन—प्रसन्न ! तू मेरे पिताजी के संबंध में क्या जाने ? संसार में उनके जैसा वीर योद्धा मिलना कठिन है और तेरी बूआ ने उन्हें इतना कष्ट दिया है कि यह तो पिताजी ही थे जिन्होंने सहन किया।

कुछ कर्कश स्वर में प्रसन्न बोली—बूआजी की बात छोड़िये, वे तो संसार में एक ही हैं।

'सृष्टि में मंडलेश्वर भी एक ही हैं।'

'यदि किसी को पता चल गया कि हम प्रति मास इस प्रकार मिलते हैं तब !'

'हम चोरी कर रहे हैं क्या ?'

'नहीं, पर बूआजी आफत कर डालेंगी।'

'इसमें आफत कर डालने की तो कोई बात नहीं है। अच्छा, भाटजी कैसे हैं ?'

'वे दिनोंदिन निर्बल होते जा रहे हैं, आपको बहुत याद करते हैं।'

'चलो, मिल आयें। मुझे जाना भी है।'

'आप आये और जाना है–जाना है की रट लगाना शुरू कर दिया। पहले चलिये तो सही।'

सामल भाट भीमदेव का आदरित भाट था। उस वीर के अशांत शासन काल का वह दृढ़ साथी था; आज नब्बे वर्ष की उम्र में भी जब उसकी नेत्र-ज्योति न रही, वाक्यशक्ति धीमी पड़ गई, स्मरणशक्ति कम हो गई थी तब भी वह पहले के यशोगान का स्मरण कर जीवित रहता था। वह राजगढ़ में रहता था, सभी लोग उसे प्रेमभाव और आदर से देखते थे। प्रसन्न एवं त्रिभुवन को वह बड़ा ही स्मरण करता। प्रसन्न एवं त्रिभुवन जब उसके पास पहुँचे तब वह बिछौने पर बैठा था और एक नौकर हुक्का भर रहा था। उनके पहुँचते ही नौकर हुक्का रख कर चला गया।

त्रिभुवन—भाटजी ! जय जय !

छाती पर से सिर उठाकर भाटजी ने निस्तेज आँखों को इधर-उधर घुमाकर पूछा—कौन है भाई !

'नहीं पहचानते ?'

'कौन ? त्रिभुवन पाल ! आइये, आइये, आज इतने दिनों बाद सामल भाट को स्मरण तो किया !'

'आप बिना कहीं काम चलेगा ? स्वास्थ्य कैसा है ? दिनों-दिन बहुत गलते जा रहे हैं !'

'बेटा ! सब साथी चले गये, सुभट गये और अब कर्णदेव भी जाने के लिए तैयार हैं। फिर मैं तो पुराना हूँ। अतः मुझे तो जाना

ही चाहिये।' कहते कहते भाट की आँखों में आँसू आ गए।

'फिर हमें उपदेश कौन देगा ?'

'बेटा ! उपदेश की आवश्यकता ही अब किसे रह गई है ? पाटन तो नष्ट-भ्रष्ट हो गया, अब तो प्राचीन वैभव सालता है, प्राचीन वीरता व्यथित करती है।'

प्रसन्न से न रहा गया, वह बीच में ही बोल उठी—'चलिये, चलिये ! भाटजी, आपको तो केवल पहले का ही सब कुछ अच्छा लगता है।'

कुछ व्याकुल होकर भाट ने कहा—अब रह क्या गया है ! केसरिया त्याग कर अब नरपाल षड्यंत्र करने लग गये हैं, घूमना छोड़ उन्होंने चूड़ी पहन लिया है; प्रतिदिन कुछ न कुछ नई बात सुनाई देती है !

'आपने ऐसी कौन-सी बात सुनी है जिससे इतने चिढ़ उठे हैं ?' प्रसन्न ने पुनः तड़ाक से उत्तर दिया।

'प्रसन्न ! बेटा ! जो मालव राज पाटन का नाम सुनकर काँप उठता था उसे घूस दिया जा रहा है ! उसके बल से भयभीत होकर उसे संतुष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा है !'

ओंठ काटकर भय-व्याकुल हो प्रसन्न त्रिभुवन का मुँह देखने लगी।

'ऐं ! यह क्या ?'

'स्त्री-शासन में और दूसरा क्या होगा ! स्त्री की बुद्धि कहाँ तक काम करेगी ? बेटा !'

त्रिभुवन—पर बात क्या है !

प्रसन्न विमूढ़ सी खड़ी रही, भाट क्या कहने जा रहे हैं, वह समझ गई, उसे सुनकर त्रिभुवन संभवतः क्रुद्ध हो जाय, इसे बचाने के लिए बात बदलने के आशय से वह बोली—होगा कुछ, आपकी खाँसी कैसी है, यह तो बताइये !

त्रिभुवन—सुनें तो सही कि बात क्या है ? भाटजी ! कह डालिये। बिना आपके नई घटना भला कैसे मालूम हो सकती है ?

'क्या ? मेरी यह प्रसन्न मालवराज को अर्पित की जाने योग्य है ! पाटन का कैसा बड़प्पन है ! कन्या देकर शांति खरीदना ! इस समय मेरा भीम नहीं हुआ; नहीं तो सब की जान के लाले पड़ जाते।'

कठोरता से त्रिभुवन ने पूछा—क्या सचमुच ? क्या मेरी प्रसन्न मालव के साथ विवाह करेगी ! प्रसन्न ! क्या यह सच है ?

प्रसन्न को नहीं सूझ पड़ रहा था कि वह क्या करे। वह नीचे देखने लगी। त्रिभुवन का चेहरा विकराल हो उठा; उसके नासारंध्र भयङ्कर रूप से फटने लगे। पाटन और मालव के बीच पुश्त दर पुश्त से शत्रुता चली आ रही थी और उस शत्रुता को बढ़ाने में बड़प्पन समझा जाता था एवं शत्रु को झुका कर सुलह करना, यह राजपूत वीरों के लिए सदैव मृत्यु से भी बढ़कर निकृष्ट मालूम पड़ता था।

उसने कठोरता से पूछा—प्रसन्न ! उत्तर देने में लज्जा मालूम पड़ती है ? क्या तू भी तैयार है ?

सामने सामल भाट भी खिन्नता से सिर हिलाकर कभी-कभी हुक्का पी लेता था।

'बूआजी समझाती रहती हैं !' कह कर प्रसन्न ने पुनः सिर झुका लिया।

उग्रता से बिना विचारे त्रिभुवन बोल उठा—बूआजी ! मीनल देवी ! उनका इतना साहस ?

'मीनल माता का साहस पूछनेवाला यह कौन !' पीछे से एक कोमल पर सत्तादर्शक स्वर सुनाई दिया। सब लोग चौंक कर उसी ओर घूम पड़े।

द्वार पर बारह वर्ष का एक बालक खड़ा था। उसके गौरवपूर्ण चेहरे पर कर्णदेव के सौंदर्य की छाप थी, नेत्रों में मीनलदेवी की

तेजस्वी भव्यता थी। अपमानित राजसत्ता की उग्र मूर्ति जैसा खड़ा वह सबको तीव्र दृष्टि से देख रहा था।

भाट—कौन, जयदेव कुमार! आओ, मेरे सोलंकी कुल दीपक?

तिरस्कार से जयदेव ने पूछा—मीनल माँ के संबंध में इस प्रकार बोलने वाला है कौन और यहाँ क्यों आया है?

त्रिभुवन ने भी उत्तर दिया, उसी तिरस्कार और गौरव से—'राजगढ़ में आने का जितना तुम्हारा अधिकार है उतना ही मेरा भी है। इसे मैं कभी प्रमाणित कर दूँगा, इस समय तो जाता हूँ।'

कह कर तुरंत वह वहाँ से चला गया। उसे स्मरण हो आया कि जयदेव कुमार यदि उसे पहचान लेगा तो पिता को अत्यधिक हानि पहुँचने की सम्भावना है। इस समय पिता ने शांत रहने का आदेश दिया था। भाट और प्रसन्न तो चाहे जैसे भी हो बात गुप्त रखेंगे पर पाटन-कुमार के साथ बात बढ़ाना उसे भयप्रद जान पड़ा। तेजी से वह नीचे उतरा और उस बारजे में पहुँच गया जिसपर चढ़कर वह आया था। उसके पीछे-पीछे दौड़ती हुई प्रसन्न आ पहुँची और बोली–त्रिभुवन! जरा ठहरो तो इस प्रकार चले क्यों जा रहे हो?

उसे फटकारते हुए वह बोला—क्या काम है? उज्जैन की रानी से मेरा क्या सरोकार!

'कुछ सुनोगे भी!'

'रानी हो जाने पर तो सुनना ही होगा।' कह कर अपना तीर कमान वहीं छोड़ क्रोधावेश में बिना विचारे वह बारजे पर से कूद पड़ा और घोड़े पर सवार हो वहाँ से चल दिया।

बहुत देर तक प्रसन्न उस ओर देखती रही—और तब बुदबुदा उठी वह—'पिता और पुत्र दोनों कितने जल्दबाज हैं!'

६

मुंजाल आनन्दसूरि को छोड़ रानी के महल में पहुँचे तब उनकी चाल और स्वरूप बदल गए। उसका घमंडी, सत्तादर्शक मुख कुछ नम्र और स्नेहपूर्ण हो गया।

'देवी ! कहाँ हैं ?' मुंजाल ने पूछा।

'कौन, मेहताजी ! यहाँ हूँ।' भीतर के कमरे से आवाज आई। छोटे कमरे में तीस वर्षीया एक स्त्री पटरे पर बैठी हुई माला फेर रही थी, उसकी आँखें लाल और वदन म्लान था। मुंजाल सामने बैठ गये। स्त्री ने माला चौकी पर रख दिया, और अपने छोटे पर तेजस्वी नेत्र मंत्री पर डाले। उसका रूप साधारण और रंग श्याम था।

'कोई नई बात ?'

'नई बात तो यही है कि बादल मँडरा रहे हैं।'

'क्यों ?'

'देवप्रसाद यहाँ आये हैं !' मुंजाल कुछ खुले।

'एं ! क्या कह रहे हो ? बिना आज्ञा लिये ?'

'इसमें आज्ञा लेने की कौन-सी बात है ? चाचा मृत्यु शय्या पर पड़ा है तो भतीजा क्या देखने भी न आवे ?'

'और हमारा सब लूट ले जाय, क्यों ? अभी उन्हें कुछ भी पता नहीं है; कुछ कह देंगे तो एक नया उत्पात खड़ा हो जायगा।'

'कुछ भी नहीं होगा, आप निश्चिन्त रहिये; किंतु इस समय उसे छेड़ना ठीक नहीं। वरना क्या मैं चूकने वाला था ? अभी तो मुझे इसके साथ बहुत से हिसाब का भुगतान करना है।'

'मेहता ! भुगतान करते-करते तो पन्द्रह साल बीत ही गये, कुछ करते-धरते नहीं बना।'

'यह सब आपके लिए।'

'मेरे ?'

'जी हाँ, आपके जयदेव के लिए पाटन सुरक्षित बना रहे, इसीलिए अपनी शत्रुता एवं स्वार्थ को तिलांजलि दे इस गोरखधंधा में फँसा हुआ हूँ।'

मीनलदेवी उबल पड़ीं—'किया क्या ? गुजरात में आये हुए तेरह वर्ष हो गये, जैसी सत्ता-विहीन शोभा की रानी उस समय थी—वैसी ही आज भी हूँ। आप पर विश्वास रख कर मैं वृद्धा हो गई।'

अन्यायपूर्ण प्रहार के आघात से दबे हुए स्वर में मुंजाल ने कहा—देवि ! देवि ! ऐसा कहियेगा ? तेरह वर्ष पूर्व संपूर्ण पाटन भी आपका नहीं था, आज बड़े जागीरदारों और मंडलाधीशों को छोड़ सभी आपकी सत्ता को स्वीकार करते हैं। चंद्रावती ने भी हमारे लिए सेना तैयार की है और यदि कुछ अधिक नहीं हो सका तो उसका कारण आप ही हैं।

'आपका यह अभियोग सुनते-सुनते तो मैं थक गई !'

'अभी और भी सुनना पड़ेगा क्योंकि येन केन प्रकारेण राजसत्ता की स्थापना करना मेरी बुद्धि के बाहर है।'

'तब क्या मैं सबकी लौंड़ी बन कर रहूँ ? आपके अन्नदाता भले कि संपूर्ण जीवन नाम-मात्र के शासक के अधिकार का उपभोग कर उन्होंने जीवन व्यतीत कर दिया; पर यह मुझसे कैसे हो सकता है ?'

'मैं ऐसा कब कहता हूँ ? एक पक्ष को दूसरे पक्ष से लड़ाकर सत्ता किसलिए स्थापित की जाय ? जागीरदारों और मंडलेश्वरों की सत्ता निर्बल करने के लिए किसलिए राजपूतों को नीचा दिखाकर श्रावकों को श्रेष्ठता दी जाय ? क्या इससे पाटन सत्तावान बन जायगा ? यह तो स्वप्न मात्र है, देवी !' मुंजाल ने अपने हृदय की सत्य बात कह दी।

'मुझे तो आपकी ही बातें स्वप्न मालूम पड़ती हैं, जब तक ये दो पक्ष एक दूसरे को निर्बल नहीं करेंगे तब तक राजा को कौन पूछेगा ?'

'निर्बलता पर राज्य करना तो जनखों का खेल है। परिणाम क्या होगा, इसका भी कुछ पता है ? हमारे श्रावकों ने पाटन से ऊबकर चंद्रावती की स्थापना की; यहाँ भी उनकी चले तो राजा को निकाल बाहर कर महाजन का राज्य स्थापित कर दें। अंत में यही होगा, अब तक नहीं हुआ वह मेरे ही प्रताप से।' मुंजाल के शब्दों में दम्भ का पुट था।

कटाक्ष से रानी ने प्रत्युत्तर दिया—डरते क्यों हैं तब ? यहाँ महाजनों का राज्य होगा तो नगरसेठ तो आपही हैं ? आपके मौसा विमलमंत्री ने चंद्रावती का राज्य स्थापित किया, आपकी दूसरी मौसी का सौभाग्य अभी भी वहाँ राज्य करता है और आप यहाँ कीजिये।

'मैं नहीं करता, इसका कारण क्या आपको मालूम नहीं है ?' कहकर विचित्र रूप से मुंजाल ने मीनल को देखा।

मीनल ने सिर नीचा कर लिया। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे।

'दूसरा कारण यह है कि जगह-जगह चंद्रावती बनाने से लाभ ? अकेले व्यापारियों की सत्ता में प्रभाव ही कितना होगा ? सत्ता संपूर्ण देश की चाहिये। मूलराजदेव की यह राजनीति थी कि संपूर्ण गुजरात को एक राजा के अधीन कर संपूर्ण प्रजा को बलवान बनाने से ही पाटन का डंका देश देशान्तर में बजेगा; जब से दूसरे प्रकार के विचार ने यहाँ प्रवेश किया तभी से सब कुछ बिगड़ा है और जो मालवा एवं कच्छ मूलराजदेव के नाम से थर-थर काँपते थे वे ही अब प्रतिवर्ष कुछ हड़प लेते हैं। कोई नहीं कह सकता कि वे कब पाटन पर आक्रमण कर दें।

'मालवराज भी तैयार हो गये हैं क्या ?'

'नहीं कब थे ? अवली में तो यह गुजरात मालव का मंडल समझा जाता है।'

'इसी से तो प्रसन्न को देना चाहती हूँ !'

'इससे लाभ ? मैं तो इतना ही कहता हूँ कि जैसे तेरह वर्ष विश्वास रखा वैसे ही थोड़ा और ! जयदेव अवश्य ही समस्त गुजरात का शासक बनेगा।'

'पर मंडलेश्वर का क्या होगा ?'

'यह अपने आप ही ठीक हो जायगा। कोई उपद्रव होने से तो इसका पक्ष सबल हो जायगा, जगह-जगह के राजपूत इसके पक्ष में हो जायँगे। पर शांतिपूर्ण वातावरण में इसके पक्ष को इतना निर्बल बना दूँगा और इसके अनुयायियों को ऐसा विश्वास दिला दूँगा कि उसे छोड़ सब पाटन के सेवक बन जायँगे।'

'जैसा आप सोचते हैं वैसा यह सरल नहीं है।'

'बहुत सरल है, यदि राजनीति लोगों के लिए हितकर हो जाय तो मालवराज के साथ युद्ध सरलतापूर्वक प्रारंभ कर सकूंगा। हममें उत्साह है, शक्ति है; केवल उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा है।'

'मेहता ! मुझे तो यह स्वप्न ही लगता है।'

'स्वप्न को कल ही सत्य कर दिखाऊँ, यदि....!'

'यदि क्या ?'

'यदि मुझे दंडनायक बना दें।'

विमलशाह के पश्चात् यहाँ कोई दण्डनायक नहीं हुआ। देवप्रसाद प्रयत्न करते-करते थक गया पर अन्नदाता ने वह पद उसे भी नहीं दिया।

'मेहताजी ! इस पदका लोभ आपको कब से ? आपके पास कमी क्या है ?'

दीनता से मुंजाल बोला—कमी तो बहुत कुछ है। देवी ! आपको खबर नहीं कि मुझे पदवी की कोई परवाह नहीं है। इस राज्य में प्रचलित विचित्र प्रथा ही मेरी कमी है। यहाँ सत्ता एक के हाथ में रहती ही नहीं और सब लोग मनमाना करते हैं।

'आपकी सत्ता में क्या कमी है, जो ऐसा कह रहे हैं ?'

'सत्ता हीन पड़ जाती है क्योंकि आपके राजतंत्र में एकता नहीं है। देवप्रसाद सेनाधिपति नाम का है, वह अपना शत्रु है; शान्तिचंद्र मंत्री और कोषाध्यक्ष चंद्रावती के पक्ष का है; उदयामति का भाई मदनपाल कर्णावती का दुर्गपाल होने से वहाँ का राजा है: मैं पाटन का दुर्गपाल हूँ अतः....'

'यहाँ के राजा आप हैं।'

'जी नहीं, मैं कुछ नहीं कर पाता क्योंकि आपका मार्ग दिन-दिन निराला होता जा रहा है। शांतिचन्द्र का तो है ही, अतः मैं यहाँ शोभा के लिए हूँ।'

'सच देखा जाय तो आप ही शासन करते हैं।'

'क्योंकि किसी में बुद्धि नहीं है। यदि ये सब किसी एक के अधिकार में आ जायें और पाटन का दुर्गपाल भी वही हो तो अवश्य ही राज्य की सत्ता बढ़ जाय !'

'यह हो कैसे ?'

'यही तो दुःख है। इतना कष्ट सहन कर, इतनी सेवा करते हुए भी आपके मन में संदेह बना है कि यदि आप मुझे अधिकार दीजियेगा तो मैं उनका दुरुपयोग करूँगा।' कुछ दुःखित मन से मुंजाल ने कहा।

'नहीं, नहीं मेहता ! ऐसी कोई बात नहीं है।'

'देखिये भली-भाँति समझ बूझ लें; अभी थोड़ा समय है; पर अन्नदाता का स्वर्गवास होते ही आपको कोई न कोई व्यवस्था करनी

पड़ेगी, नहीं तो आज की अपेक्षा कहीं अधिक अंधकार छा जायगा और आज तक के किये-धरे पर सब पानी फिर जायगा।'

'तब चंद्रावती से जो सेना बुलायी है उसका सेनापति कौन होगा ?'

'यह विचारणीय है। श्रावक के सिवा किसी दूसरे का अधिकार वे स्वीकार नहीं करेंगे और अपनी सब सत्ता की कुंजी वे ही हैं। (कुछ सोच कर) यदि शांतिचंद्र को नियुक्त करें तो कैसा ?'

'क्यों ?'

'इसलिए कि वहाँ के लोग उसे अपना मानते हैं; साथ ही उनके वयोवृद्ध होने से प्रभाव पड़ेगा। सोलंकियों के प्रति उनकी राजभक्ति अटल है जिससे आपकी आज्ञा-पालन अवश्य करेंगे।'

'अच्छी बात है, विचार करूँगी। भगवान करे वह समय अभी न आवे।'

'देवी ! सौभाग्य भाई ने एक यति यहाँ भेजा है और लिखा है कि उसकी इच्छा राजसेवा करने की है, उससे इस समय मिलियेगा या प्रातःकाल ?'

'है कुछ पानीदार ?'

'लगता तो चतुर है; सौभाग्य भाई ने तो बहुत प्रशंसा की है।'

'अच्छी बात है, इसी समय मिलूँगी।'

'एक प्रकार से हमारे काम तो बहुत आयेगा। शांतिचंद्र और चंद्रावती इसके कारण वश में रहेंगे। पर ध्यान रखें कि कहीं वह चंद्रावती की धाक यहाँ न जमा दे।'

'मुंजाल ! मुझ पर भी विश्वास नहीं है ?'

'है, पर आपको लड़ा कर मार डालने की राजनीति में मुझे बिलकुल श्रद्धा नहीं है।'

'नहीं, नहीं भेज दीजिये, पर मुंजाल ! देवप्रसाद यहाँ है और

कोई उत्पात खड़ा हो जाय तो, इसलिए उसे यहाँ लाकर रखा जाय तो कैसा ?'

मुंजाल का मुँह उतर गया। उसके ललाट पर त्रिबली पड़ गई। उसने पूछा—'किसे ?'

'उसे' कहकर मीनल ने द्वार की ओर संकेत किया।

मुंजाल की आँखों से ज्वाला निकलने लगीं।

'देवी ! जो समझ पड़े कीजिये, मुझसे इस संबन्ध में कुछ न पूछें।'

'इस यति को सौंप दूँ क्या ? यह अनजान है बिना किसी संदेह के काम करेगा।'

'जो समझ पड़े कीजिये।'

कहकर द्वार के पास जाकर आनंदसूरि को बुलाया। आनंदसूरि भीतर आया।

७

आनंदसूरि ने प्रणाम किया, मीनल ने प्रणाम ग्रहण किया।

'देवि ! ये ही महात्मा हैं जिन्हें सौभाग्य भाई ने भेजा है। मैं जाता हूँ। देख आऊँ अन्नदाता की तबीयत कैसी है।'

'जाइये, मैं भी आती हूँ।'

'देवी ! आज मेरा अहोभाग्य है, देश-विदेश घूमते हुए भी आप के दर्शन की इच्छा हृदय में बराबर बनी रहती थी। आज मैं कृतार्थ हुआ।' कह कर आनंदसूरि ने बात शुरू की।

'आपका नाम ?'

'आनन्दसूरि !'

'आप यहाँ क्यों आये हैं ? कोई विशेष काम तो नहीं है ?'

यह प्रश्न सुन यति के नेत्र चमक उठे। मुंजाल की उपस्थिति में जो क्षोभ था वह दूर हो गया। क्रमशः उसका प्रभाव प्रकट होने लगा, वह बोला—महारानी ! सच कहूँ ? अपना जीवन मैंने जिन प्रभुजी को अर्पण कर दिया है।

'तब राज्य के झमेले में क्यों पड़ना चाहते हैं ?'

'राजनीति क्या धर्म नहीं है ? धर्म और जीवन अभिन्न हैं, देवी ! और हमारी अवनति का कारण यह भिन्नता ही है।'

'महाराज उपदेश दे रहे हैं ?' रानी ने जरा गर्व से पूछा।

'अवश्य दे रहा हूँ, क्यों न दूँ ? आपकी अपेक्षा गज़नी के यवन अधिक बुद्धिमान हैं। संसार के वध की शिक्षा उन्हें उनका शास्त्र देता है।'

'पर मुंजाल मंत्री का अभिप्राय इससे भिन्न है !'

'इसी से वे धोखा खाते हैं।'

आतुरता से मीनल ने पूछा—'तब आपका क्या विचार है ?'

'मंत्री जी ने चंद्रावती की शासन-व्यवस्था के संबंध में अधिक बातचीत करने के लिए मुझे मना कर दिया है और आप चिन्तातुर हैं। पीछे बात करूँगा।'

'नहीं, मैं अभी सुनना चाहती हूँ। पाटन की स्थिति इस समय ठीक नहीं है जिससे आप जैसे विद्वान् अनुभवी की राय से अत्यधिक लाभ होगा।'

'मुंजाल मंत्री के अतिरिक्त किसी दूसरे का अभिप्राय आपके काम नहीं आयेगा'; धीमे स्वर में विष फैलाते हुए यति बोला—'पर मेरा विश्वास है कि एक धर्म बिना एकता नहीं, बिना एक धर्म के प्रभाव के प्रजा संतुष्ट नहीं होगी, और उसके उत्साह बिना वीरता नहीं टिक सकती।'

'आपको इस समय पाटन का प्रधान बना दिया जाय तो आप क्या करेंगे ?'

'मेरी चले तो जैन धर्म को अपनी राजनीति का प्रथम मंत्र बनाऊँ। उसके अनुयायियों में उसके नाम पर उत्साह और एकता प्रेरित करूँ। उसके रक्षण के लिए लोगों में वीरता उत्पन्न करूँ एवं उसके प्रचलन के लिए देश-विदेश में जिन भगवान की पताका उड़ाने का प्रयत्न करूँ।'

'आपकी बात तो ठीक है पर राजपूतों का क्या कीजियेगा ?'

'राजपूत सत्ता एवं शौर्य के सेवक हैं: धर्म को अपना प्रतिनिधि देखते ही वे उसके अधीन हो जायँगे।'

'महाराज ने बड़े महाराज से सुना था कि गजनी के बादशाह ने नव खंडों को विजय कर अपना प्रभाव समस्त संसार में फैला दिया था।'

'उसका कारण भी यही है, वह केवल राजा ही नहीं, धर्मवीर थे। उत्तर प्रदेश में जब मैं गया था तो वहाँ उसके एक धर्मगुरु से भेंट हुई। उसने मुझे उसके अनेक सिद्धांत समझाये। इन यवनों ने इतना ही सीखा है कि धर्मोन्माद बिना राज्य असंभव है।'

चिन्ता से सिर हिलाते हुए मीनल देवी बोलीं—आनन्द सूरि! जान अथवा अनजान में आपके उद्गार मेरे हृदय की इच्छा के अनुसार हैं पर श्रावकों की सत्ता होने पर जैसा विमलशाह ने किया वैसे ही वे राजा को तुच्छ समझ महाजनों की सत्ता बैठा देंगे! पाटन दूसरा चंद्रावती बन जायगा।

नीचे झुककर [illegible] शांति से यति बोला—रानी जी! सच कहूँ? यह भय आपका सच है: पर अच्छी वस्तु को ग्रहण कर त्याज्य वस्तु दूर करना चाहिए।

'कैसे ?'

'रानी शायद आप उसे पसंद न करें!'

'उस पर पीछे विचार करूँगी, पहले आप कहें तो।'

'इसे दूर कीजिये।'

गौरव से सिर ऊँचा कर, आनंदसूरि पर तीक्ष्ण दृष्टि डालते हुए रानी ने पूछा—किसे? मुंजाल को? आप परदेशी हैं इससे जानते नहीं। मुंजाल मेरा दाहिना हाथ है। जब चंद्रपुर में थी तो पहले गुजरात की ओर इन्होंने ही आकर्षित किया; महाराजा के साथ विवाह का प्रबन्ध इन्होंने किया; महाराजा ने जब मेरे रूप से अप्रसन्न हो मेरा त्याग किया तब समाधान इन्होंने कराया एवं गत तेरह वर्षों से पार्श्व में निश्चल भक्ति से ये ही मेरे साथ हैं।

'ये उद्‌गार आपकी महत्ता प्रकट करते हैं। मुंजाल राजभक्त हैं पर उनकी राजनीति तुच्छ बुद्धि वाली है। ये स्वीकार कर लें तब तो अत्युत्तम, नहीं तो थोड़े समय के लिए शासन व्यवस्था अपने हाथ में आपको लेनी चाहिये। मुंजाल मंत्री की दृष्टि से देखता है राजा की दृष्टि से नहीं।'

'यति! आप वाचाल हैं। किसी विदेशी व्यक्ति के साथ निजी बातचीत आज प्रथम बार ही हो रही है; आपकी सत्यता पर मैं सन्देह नहीं करती।'

'आप डरें नहीं! विश्वास रखें, मैं आपकी सेवा करने के लिए ही आया हूँ, मेरे जैसा स्वामी-भक्त दूसरा नहीं मिलने का।'

'अच्छा तो सुनो? मुंजाल फौलाद है, टूट जायगा लेकिन झुकेगा नहीं।'

'झुक सकता है, पर अपेक्षित बल हो तब!'

'कैसे?'

'चंद्रावती की सेना का सेनापति बनाइये मुंजाल को। श्रावक सीधे रास्ते पर रखेंगे। शांतिचंद्र कुशल हैं। उन्हें पाटन का दुर्गपाल बनाइये, यदि संभव हो तो दंडनायक भी!'

'क्या ?' रानी चौंक पड़ीं, 'अच्छी बात है विचार करूँगी। कल प्रातः शांतिचंद्र सेठ के साथ यहाँ आने का कष्ट करें।'

'अवश्य देवी ! कोई और आज्ञा ?'

'नगर के बाहर विमलशाह का स्थानक आपने देखा है ?'

'जी हाँ, आज यहाँ आने के समय वहीं ठहरा था।'

'वहाँ आचार्य से एकान्त में कहें कि मीनल देवी ने गोरी साध्वी को बुलाया है।'

'गोरी साध्वी ?'

'हाँ, उन्हें पालकी में यहाँ ले आइये। पालकी सदर फाटक से न लाकर पीछे के फाटक से लायें। वहाँ मेरी दासी को सौंप दीजिये।'

'जैसी देवी की आज्ञा।'

'यह बात बहुत गुप्त रखने की है।'

'इससे आप निश्चिन्त रहें।' कह कर आनन्दसूरि चला गया।

मीनलदेवी बहुत देर तक चुपचाप बैठी रहीं। मुंजाल और यति के वाक्य उसके कानों में गूँज रहे थे, वह क्या करे ?

८

इतने समय तक विचारा मंडलेश्वर वाचस्पति की प्रतीक्षा में छतपर इधर-उधर घूम रहा था। पहले उसने वाचस्पति को पश्चात् लीलाधर वैद्य को, मुंजाल को, मीनल देवी को एवं अंत में अपने भाग्य को कोसा; तब भी कोई नहीं आया। अंत में उसे जंभाई आने लगी और वह सो गया। नींद में उसने अनेक स्वप्न देखे। स्वप्न में सदैव एक सुन्दर मुख दिखाई पड़ा। मंडलेश्वर अधिक निराश और चिंतातुर हो गया। ऐसा लगा निद्रा में ही उसका हृदय बैठ गया हो। उसे ध्यान न

रहा कि रात समाप्त हो चली। क्रमशः प्रकाश फैलने लगा, जब पीछे से वाचस्पति ने आकर मंडलेश्वर के कंधे पर हाथ रखा तो वह चौंक कर उठ बैठा और इधर-उधर देखने लगा।

'वाचस्पति! अरुणोदय हो गया क्या?' कह कर मंडलेश्वर पूर्व की ओर देखने लगा।

'जी हाँ, कुछ देर हो गई।'

मंडलेश्वर ने कुछ उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप खड़ा रहा। मालूम पड़ता था मानो पुतलियाँ उसके आँख से बाहर निकल पड़ेंगी। एकाग्र दृष्टि से नीचे उपवन में वह कुछ देख रहा था, उसका अंग-प्रत्यंग काँप रहा था, ललाट पर पसीने की बड़ी-बड़ी बूँदे आ यगी थीं।

'क्या बात है मंडलेश्वर?'

वह मुड़ा और वाचस्पति का हाथ दबा कर पूछा—देखो, देखो, वह क्या दिखाई पड़ रहा है?

अँधेरे में कुछ दिखाई न पड़ने से वाचस्पति ने कहा—कुछ तो नहीं।

'वह स्त्री जैसी, देखो-देखो वह जा रही है। वह गई, वह-वह—'

'नहीं प्रभो! शायद मेरी आँखें कमजोर होने से दिखाई न देता हो।'

'आज दूसरी बार, ठहरो मैं निश्चय कर आऊँ।'

'कहाँ जाइयेगा? उजाला हो रहा है और अन्नदाता इस समय चैतन्य हैं, वे पुनः मूर्छित हो जायँगे। आपको मिलना नहीं है क्या?'

'वाचस्पति! क्या करूँ? मेरा मन ठिकाने नहीं है।'

'एक स्त्री देख कर आप इतना डर क्यों गये?'

'पंडित! तू क्या जाने? पन्द्रह वर्षों बाद आज दो बार देखा।'

'किसे?'

'अपनी प्रियतमा को, अपनी मृत किंतु अविस्मृत हृदयेश्वरी को' मंडलेश्वर की आवाज में कंपन था।

'बापू ! भ्रम होगा।'

'भ्रम ? नहीं नहीं, अभी न मेरी आँखें निस्तेज हैं और न बुद्धि ही कुण्ठित।'

'तब क्या भूत था ? क्या आपकी यह धारणा है ? शांतं पापं, शांतं पापं !'

'पंडित ! इसमें शांतं पापं की आवश्यकता नहीं है, मेरे सिर पर मौत मँड़रा रही है, गुजरात के श्रेष्ठ योद्धा के दिन नजदीक आ गये हैं। एक व्यक्ति ने भविष्यवाणी भी की है कि मैं जल्दी ही मरूँगा। आज स्वर्गवासी पत्नी भी दो बार सचेत कर गई। कोई बात नहीं। जैसे जीया वैसे ही मैं मरूँगा भी। मेरे नाम से बारह मण्डल एवं बावन नगर काँप उठेंगे, तभी मरूँगा। चलो वाचस्पति ! चाचाजी के पास ले चलो।'

पास ही एक कमरे में पाटन का अधिपति बिछौने पर पड़ा अन्तिम घड़ी गिन रहा था। लीलाधर वैद्य दो व्यक्ति के साथ औषधि तैयार कर रहे थे। मंडलेश्वर को आते हुए देख लीलाधर उठकर उनके पास जाकर बोले—मंडलेश्वर ! कितनी देर लगा दिया ? बड़ी कठिनता से मूर्छित होने से रोक रखा है, अब यदि मूर्छित हुए तो बस....!

'अच्छा !' कहकर मंडलेश्वर बिछौने के पास गये। संकेत से दूसरे मनुष्यों को बाहर भेज कर लीलाधर निश्चिन्त हो औषधि घोटने लगे।

'चाचाजी ! चाचाजी ! पहचानते हैं ?'

मृत्यु शय्या पर भी स्वरूपवान कर्णदेव ने करवट बदली और बड़ी कठिनता से आँखें खोलीं। उनका सारा शरीर निर्जीव-सा हो गया था। औषधि के बल से कुछ चैतन्यता थी। बड़ी कठिनता से पूछा—कौन, देव ?

'जी हाँ चाचाजी ! कुछ कहना है ?'

निस्तेज आँखें देवप्रसाद पर गड़ा कर राजा ने पूछा—उ···त्पात करने····!'

कान में चिल्लाकर देवप्रसाद बोले—नहीं चाचाजी ! मैंने कुछ भी उत्पात नहीं किया, यदि किया भी तो दूसरों के अत्याचार के कारण। मेरा वश चला तो मैं झगड़ा मिटा दूंगा। और कुछ कहना है ?

'ज····य····दे····व !'

'चाचाजी ! आपका पुत्र मेरा भाई है, उसे तनिक भी आँच नहीं लगने दूँगा।

'व····च···न···!'

'हा, वचन देता हूं। यदि कोई मेरा अपमान करने की इच्छा नहीं करेगा तो जयदेव का बाल भी बाँका नहीं होने दूँगा। और कुछ !'

'पास आ····ओ !'

देवप्रसाद पास जाकर नीचे झुके।

'हं····हं···सा जीवित है।'

चौंककर देवप्रसाद पीछे हट गया और बोल उठा—ऐं ? क्या ? कहाँ ? उसकी आँखों के नीचे अँधेरा छा गया।

'वि····वि····वि' कहते-कहते कर्णदेव का गला घरघराने लगा, उनकी आँखें देवप्रसाद के पीछे किसी वस्तु पर स्थिर हो गईं।

देवप्रसाद ने पीछे देखा। तेजस्वी आँख की भयंकर स्थिरता से मीनल देवी राजा की ओर देख रही थीं। मरते-मरते भी सरल राजा प्रतापी रानी की एक दृष्टि मात्र से मौन हो गये। शांति और तिरस्कार से रानी वहीं खड़ी रही। राजा की आँखें पथराने लगीं।

रानी शांत स्वर में बोली—वैद्यराज ! देखिये पुनः मूर्च्छा आ रही है क्या ?

देवप्रसाद के उबलते स्वभाव में राजा की बातों ने तेल का काम

किया। उनकी उग्रता बढ़ गई। हंसा, वर्षों से उनकी विरहित पत्नी जीवित है? वह यह भी न समझ सके कि वे चैतन्य हैं अथवा अचेत! सामने मोनल देवी को देख वे अधिक व्यग्र हो उठे। बड़े धैर्य से चित्त को शांत रख उन्होंने पूछा—चाची! क्या यह सच है?

'क्या?'

'मेरी हंसा जीवित है? मैंने आज उसे दो बार देखा, इस समय चाचाजी ने भी बताया।'

जरा कटाक्ष से मोनल देवी बोलीं—आपके चाचाजी इस समय ठीक-ठीक बोलते होंगे, यह तो आप ही जाने। पीछे बात करूँगी, इस समय मेरा जी ठिकाने नहीं है।

'आपका जी ठिकाने नहीं है तो मेरा कहाँ है? मेरी हंसा आपके महल में है।' देवप्रसाद स्वतः ही बोल उठे।

'किसने कहा?'

'मैंने अपनी आँखों देखा और इस समय—।'

यह सुनकर मोनल देवी अलक्षित रूप से चौंक उठीं; पर शांतिपूर्वक बोलीं—भ्रम है, मंडलेश्वर! इस समय आपको राज्य की चिंता करनी चाहिये। ऐसी व्यर्थ बातें करना क्या ठीक है?

'चाची! राज्य की क्या चिंता करूँ? आपके मतदाताओं ने तो आपको भरमा रखा है। अतः आप मेरी बात कब सुनने वाली? चाचाजी को मैंने अभी वचन दिया है कि मैं अपने भाई की सेवा करने के लिए तैयार हूँ।'

देवप्रसाद का भोलापन देख रानी की आँखें हँस पड़ीं। उसका विचार जानने के लिए निराधार का ढोंग कर वह बोलीं—मैं कहाँ अस्वीकार करती हूँ? आप ही तो कुछ न कुछ बहाना ढूँढ़ा करते हैं।

'मैं कि आपके मंत्री? चाची! अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। बीती ताहि बिसार दे, जो आप कहें मैं करने के लिए तैयार हूँ।'

'मैं कहाँ अस्वीकार करती हूँ ? देर तो केवल आपकी है ।'

'मेरी देर ? क्या चाहती हैं ?'

मीठास से मीनल देवी बोली—मेरा पुत्र एक चक्र राज्य करे, इतना ही चाहती हूँ ।

'चाची ! पाटन का अधिपति सदैव एक ही चक्र से राज्य करता है ।'

'केवल बातों में ! सच देखा जाय तो पाटन के बाहर एक कुत्ता भी उसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखता ।'

गर्व से देवप्रसाद ने कहा—एक चक्र राज्य करना है तो चाची मुझे दंडनायक बनाइये । कल ही समस्त भरतखंड को पाटन के अधीन बना दूँ ।

'भरतखंड तो दूर रहा, सोरठ और हालार का क्या होगा ? घर में ही संशय पैठा है ।'

'अर्थात् ?' रानी की धूर्तता का ध्यान आते ही देवप्रसाद सँभला ।

'अर्थात् बारहों मंडल एवं बावनों शहर मनचाहा क ेंगे तब पाटन कौन पूछेगा ?'

मीनलदेवी की धूर्तता समझ मूँछ पर हाथ फेरते हुए देवप्रसाद बोला—आप उन सबको सर करना चाहती हैं ?

'हाँ, उसके बिना मेरा पुत्र एक चक्र कैसे राज्य करेगा ?'

'अर्थात् सब मंडलेश्वर आपके दास बन जायँ ! सिंह से बदल कर आपके घर की बिल्ली बन जायँ !'

'नहीं, राज्य के शत्रु के स्थान पर राज्य के स्तंभ बनें ।'

'यह करने के लिए अपनी देहस्थली आपको सौंप दूँ, अपनी सेना आपको दे दूँ, मेरे दादा के साथ रह कर जिन पराक्रमी वीरों ने यवनों को गुजरात से निकाल बाहर किया उनकी स्वतंत्रता पर कुठाराघात करूँ, क्यों ?'

मीनलदेवी मौन रहीं। लीलाधर वैद्य चुपचाप राजा का उपचार कर रहा था। कुछ देर तक सब चुप रहे।

'और इस अधमता एवं द्रोह का पारितोषिक क्या मिलेगा?' कटाक्ष करते हुए मंडलेश्वर क्रूरता से हँसा।

मीनल की आँखें शांति से उनको देखती रहीं। उसने धीरे से कहा—दंडनायक का पद छोटा नहीं है। वह आप जैसे सोलंकी शूरों को ही शोभा देगा।

देवप्रसाद ने खोखली आवाज में पूछा—आपकी पदवी के लिए अपना देश, अपनी सत्ता, स्वतंत्रता को तिलांजलि दे दूँ।

उसकी आँखें विकराल बन गईं, उसके मुखपर सिंह का तेज चमक उठा। वह छाती ठोंक कर पुनः बोला—चाची! अपनी बुद्धि आप अपने पास रखें। जब तक मंडलेश्वर में प्राण रहेगा तब तक राजपूत लोगों को अधीन करनेवाला कौन जन्मा है यह मैं देखूँगा। जो राजनीति परापूर्व से चली आ रही है उसे देखता हूँ कौन बदलता है।

'मैं भी देखूँगी कि गुजरात में कितना पानी है?'

'इसमें पछताइयेगा। पद के लोभ से बाप-दादा की टेक छोड़ने के लिए कोई निकल आयेगा तो उसे भारी पड़ जायगा।'

'मंडलेश्वर! पाटन का राना किसी के डराने से डरती नहीं।'

'भीमदेव सोलंकी के पौत्र को पिंजड़े में भरने वाला कौन है देखूँगा?' कहकर मंडलेश्वर ने मूँछों पर ताव दिया, पश्चात् कुछ नरम पड़ कर कहा—चाची! अब कुछ अच्छी सलाह लीजिये और कलह दूर करें।

'सलाह के लिए मैं देवस्थली नहीं आऊंगी, यह आप निश्चय रखिये।' कहकर मीनल राजा की ओर चली गई।

देवप्रसाद भी क्रोध में भरा हुआ वहाँ से चला गया।

लीलाधर वैद्य ने औषधि बनाते हुए सिर उठाकर ऊपर देखा, रानी के चेहरे पर व्यग्रता दीख पड़ी।

'माताजी! इस सिंह को पिंजड़े में बंद करना सरल नहीं है।'

'वैद्यराज! समय आने पर यह भी करूँगी!'

वृद्ध वैद्य ने साहस से कहा—जो इच्छा, पर माताजी पाटन की गद्दी को कलंक न लगने पाये; इसका ध्यान रखियेगा।

मीनल देवी ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

९

देवप्रसाद भारी हृदय से घर आये! घड़ी भर के लिये वे राज के खटपट भूल गये, उनके मस्तिष्क में दो शब्द गूँज रहे थे–'हंसा जीवित है।' उनमें गंभीर विचार करने की शक्ति ही न थी। मन में अनेक विचार उठे। पुरानी आशायें और संकल्प याद आये। राजा के शब्दों पर विश्वास करना या नहीं। इस विकट परिस्थिति में एवं हंसा की याद ने उसके साहस को क्षीण कर दिया। उसकी कुशाग्र बुद्धि पथरा-सी गई। वह पाटन में गुप्त रूप से आया था, अतः चुपचाप पिछले द्वार पर गया।

'जोरावर! त्रिभुवन कहाँ है?'

'ऊपर हैं बापू!'

'अच्छा, किसी से कुछ कहना मत। यदि वल्लभ आये तो ऊपर भेज देना।'

'जैसी आज्ञा।'

मंडलेश्वर ऊपर गये, उनके हृदय रूपी अरण्य में त्रिभुवन ही विश्राम स्थल था। पुत्र भी उदास मालूम पड़ा। उन्होंने पूछा—बेटा! सोये नहीं?

'जी नहीं, नींद नहीं आई।'

त्रिभुवन की पीठ पर हाथ फेरते हुए स्नेह से देवप्रसाद ने कहा—बेटा! तुझे चिंता करने की आवश्यकता नहीं; अभी देर है।

'पिता जी! यह भी क्या अपने हाथ की बात है? छोड़िये इसे, आप जिस कार्य के लिए गये थे उसका क्या हुआ?'

एक निःश्वास छोड़ते हुए मंडलेश्वर बोले—क्या कहूँ? मेरा दुःख असीम है।

उनकी आँखें डबडबा आईं।

त्रिभुवन ने बड़ी सहानुभूति से देखते हुए कहा—पिताजी! आप मुझे अभी भी बालक समझ कर कुछ बताते नहीं? आपका दुःख सुनने और यथाशक्ति सहायता करने के लिए मेरा मन तरसता है। पर आपको अभी भ. विश्वास नहीं है।

'विश्वास की बात नहीं है बेटा! तेरे कोमल मन पर कितना बोझ डालूँ?'

'आपको पता नहीं है पिताजी कि सोलह वर्ष का सोलंकी संसार के लिए भारी पड़ सकता है!'

'बेटा! मैं जानता हूँ, मेरे सामने तुम बड़े हुए और मेरी सभी आशायें तुमने पूर्ण की।'

'तब आप अपने दुःख में मुझे अपना साझीदार-क्यों नहीं बनाते?'

'साझीदार बनाऊँ? अच्छा, इस राज्य के रहस्य जानते हो?'

'थोड़ा-बहुत जानता हूँ; पर कारण नहीं समझ पाता।'

'उनका इतिहास अति प्राचीन है। तुम्हारा जी न दुःखे, इसलिए अब तक नहीं बतलाया। भीमदेव के तीन पत्नियाँ थीं। प्रथम पत्नी और उनके पुत्र मूलराजदेव के मृत्यु की बात तुम जानते हो। द्वितीय पत्नी थीं—बकुलादेवी; वणिक-कन्या—पिताजी की माँ। और तृतीय चाचाजी की माँ उदयामति।'

'अच्छा यह तुम्हें मालूम नहीं होगा कि पिता क्षेमराज ने ज्येष्ठ पुत्र होते हुए भी राज्य छोड़ दादाजी के साथ क्यों वानप्रस्थ ले लिया ? वैराग्य बुद्धि की अपेक्षा उनमें व्यवहार कुशलता अधिक थी। उन्होंने देखा कि उनके गद्दी पर बैठने से गुजरात के सामंत आपस में ही मर मिटेंगे।'

'यह क्यों ?'

'यवन बादशाह के पाटन पर अधिकार करने पर सामन्त छिपते-फिरते थे। देश बरबाद हो गया। सेठ धन और बाल-बच्चों को छिपाये रहते। अंत में भीमदेव कंथकोट (कच्छ) से आये; उन्होंने भयभीत सामंतों में साहस बँधा कर उन्हें एकत्र किया। श्रावक भी विदेशियों के अत्याचार से घबड़ा कर दादाजी की ओर घूमे। दादाजी की सेनाने पाटन पर चढ़ाई कर दी; पापी यवन के सहायक भागे एवं पाटन में पुनः सोलंकी डंका बजने लगा। पर हमारे दुर्भाग्य ने साथ न छोड़ा।'

'उस विजय ने पाटन के नगरसेठ और इस मुंजाल के मौसा विमलशाह के मन को बदल दिया। वह अपने को दादाजी से अधिक बड़ा योद्धा मानने लगा।

'विमल मंत्री की वीरता सुनी है। चंद्रावती उसीने बसाया है ?'

'हाँ, पर इसका मूल कारण यह था कि इन स्वार्थपटु व्यापारियों को हमारा राज्य अच्छा नहीं लगा। इन्हें तो जहाँ-तहाँ महाजन ही चाहिये।'

'दादाजी ने यह कैसे सहन कर लिया ?'

'कर ही क्या सकते थे ? राज्य में अव्यवस्था के कारण श्रावकों के बिना धन मिलना असंभव था।'

'सब सामंत क्या कर रहे थे ?'

'इसमें दादाजी की भूल थी। उनके सामंतों पर सत्ता बैठाने के

प्रयत्न से वे खीझे रहते थे। सामंतों का जोर अत्यधिक था और कठिन परिश्रम से वे धनिकों को थोड़ा-बहुत वश में रखते थे। पिताजी ने सोचा कि यदि वे गद्दी पर बैठेंगे तो सभी सामंत गण चाचाजी का पक्ष लेंगे और गुजरात में युद्ध छिड़ जायगा। इसीलिए उन्होंने वानप्रस्थाश्रम अधिक पसन्द किया। पर कर्णदेव चाचाजी उनसे भी अधिक बुद्धिहीन निकले। खेल ही खेल में श्रावक मंत्रियों के हाथ के खिलौने बन बैठे. तथापि मानलदेव के साथ विवाह होने के पूर्व तक वे सब मेरी दाब में थे और शूर-वीर सामंतगण जो इच्छा होती करते। पाटन के दुर्भाग्य से मानल चाची आईं। नगर सेठ मुंजाल को चाचाजी बहुत मानते थे। साथ ही नई रानी का भी वह आदर पात्र बन गया। अतः सामंतों की सत्ता को नष्ट कर देने का प्रयास प्रारंभ हो गया। आज मैं ही केवल एक कांटा हूं। अपना मंडल सबसे वृहद् और स्वतंत्र है। जब तक वह स्वतंत्र है तबतक दूसरे मंडल के साथ छेड़छाड़ करना असंभव सा है। सामंतों की स्वतंत्रता मेरे कारण से बनी हुई है। इस समय ये लोग मुझे राजा का दास बनाने के प्रयत्न में हैं पर इन सबको पता नहीं है कि जब तक मंडलेश्वर जीवित है तब तक किसी में साहस नहीं कि मेरी देवस्थली अथवा सामंतों की ओर आंख उठा कर देख सके। जो राजा भीमदेव ने नहीं किया उसे ये बनिया कौन करने वाले होते हैं?'

'ये चाहते क्या हैं!' त्रिभुवन की उत्सुकता बढ़ी।

'यह तो चाचाजी के जाने के बाद मालूम होगा। इनकी चाल तभी समझ में आयेगी। मैं अबतक अपनी देवस्थली में ही पड़ा रहा इसके कारण चाचाजी ही हैं। जब तक ये हैं तब तक पाटन का पति मेरे लिए परमेश्वर के समान है।'

'पिताजी इसमें चिंता करने की क्या बात है? आप देवस्थली में वल्लभसेन से कह आये हैं कि अपना दल मेरल सीमा पर तैयार रखें

तब चिंता की क्या बात है? आपके मुख से एक शब्द निकलते ही गुजरात के वीर उठ खड़े हों और मीनल चाची अपने आप ही सीधी हो जायँगी।'

बोलते-बोलते मंडलेश्वर को पसीना निकल आया। उसे पोंछते हुए वे बोले—यह मैं जानता हूं, सब सोच समझ कर ही मैं यहां आया हूं पर एक और दूसरा नया दुःख सामने आ गया।

आतुरता से पुत्र ने पूछा—वह क्या?

'वह हृदय व्यथा है। वह सेना अथवा बाहुबल से दूर होने वाला नहीं है।'

'देवप्रसाद ने भारी हृदय से त्रिभुवन की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—क्या कहूं? कहाँ से प्रारंभ करूँ? तुम्हें यह तो मालूम ही है कि तुम्हारी माँ कौन थीं?'

'जी हाँ, मुंजाल नगर सेठ की बहन थीं न?'

'हम दोनों का विचित्र रूप से विवाह हुआ था। उसके भाई एवं माँ दोनों इस विवाह के विरुद्ध थे। किसी की संमति बिना मैं उसे देहस्थली ले गया और वहीं हम दोनों विवाह-सूत्र में संबद्ध हुए। हमारे सुख की सीमा न रही। मैं श्रावकों से जलता और अवसर पाने पर उन्हें सताने में न चूकता, इसलिए वे मुझसे भी बदला लेने की ताक में रहते। एक बार शिकार से वापस आने पर देखा कि घर पर मेरी हंसा नहीं है।'

'ऐं! कहाँ गई?' त्रिभुवन ने आकुलता से पूछा।

निराशा से सिर हिलाते हुए मंडलेश्वर बोले—कौन जाने कहाँ गई? मेरे शत्रुओं की विजय हुई, मेरी लक्ष्मी लुट गई।

'आपने खोज क्यों नहीं की? इस प्रकार कैसे उठा ले गये?'

'चाचाजी से एवं तेरे मामा से मिला, सभी ने कहा कि मैं क्या जानूँ? मैं हाथ पैर पटकता ही रह गया। धीरे-धीरे बात फैली कि हंसा

मर गई, चण्डालों ने उसे मार डाला। मेरी निर्दोष, सुकुमार प्रियतमा इनके द्वेष का भोग हो गई।'

'पर इसमें उन्हें आपत्ति क्या थी? दादाजी के साथ बकुला देवी का भी तो विवाह हुआ था!'

'बेटा! उस समय बात दूसरी थी। श्रावक सबल नहीं थे। इस समय वे अभिमानी एवं सत्तावान हो गये हैं, और फिर मैं तो उनका कट्टर शत्रु ठहरा।'

'पिताजी! मुझे क्या पता कि इन्होंने इतना अत्याचार किया है? बाल्यावस्था में देखी हुई माँ को स्मरण करने का प्रयत्न करता हूँ। मैं तो समझ रहा था कि दैव-कोप ने उन्हें उठा लिया।'

निःश्वास छोड़ते हुए देवप्रसाद बोले—नहीं, तुम्हारे मामा मुंजाल ने दैव का अभिनय किया।

'पिताजी? अब आप इतना निराश क्यों हो रहे हैं? मामा के दैव तो हम हैं। हमारा कोप उनके लिए भारी पड़ जायगा।'

'बेटा! बात यहीं से समाप्त नहीं होती।'

'क्यों?'

'बेटा! तेरी माँ जीवित है।' कहते-कहते देवप्रसाद का गला बँध गया।

'एं! कह क्या रहे हैं आप?' बिजली कौंध गई हो, इस प्रकार चौंक कर त्रिभुवन ने कहा।

'हाँ, सत्य है बेटा! कल रात में दो बार मैंने देखा। पहली बार तो हम जब विमल के अप्सरा के पास से जा रहे थे उस समय····!'

'जिस समय घोड़ा भड़का था?'

'हाँ, और दूसरी बार राजगढ़ में, जब मैं छत पर खड़ा था। क्षण-भर के लिए मैं उसकी स्वर्गीय छवि देखता रहा। पर दूसरे ही क्षण वह अन्तर्धान हो गई।'

'पिताजी ! भ्रम तो नहीं था ?'

'मैंने भी यही सोचा था पर चाचाजी—'

'उन्होंने मरते-मरते बताया कि हंसा जीवित है और पीछे से यदि चाची न आ गई होतीं तो कुछ और पता चलता।'

'अर्थात् इतने दिनों से कहीं छिपा रखा है ?'

'और क्या ! यही मेरी व्यथा है। बेटा ! अब क्या करूँ ?'

'यह आप मुझसे पूछते हैं ? अब इतना ही करना है कि यदि यह बात सच है, यदि माँ को जीते जी ऐसा कष्ट दिया है तो हम इसका बदला लेंगे। माँ को छुड़ावेंगे एवं इन चाण्डालों को ऐसी शिक्षा देंगे कि जिसे ये जन्म भर याद रखेंगे।'

'यह सच है पर किसे पता वह कहाँ है ?'

'विमल के अपासरा में या राजगढ़ में। आपने माँ को वहीं तो देखा था ?'

'हाँ, पर राजगढ़ में ढूँढ़ना क्या कोई सरल बात है ? मीनल चाची से मैंने पूछा पर वे टस से मस नहीं होतीं।'

'कहती क्या हैं ?'

'वे तो मेरा भ्रम ही बतलाती हैं। शायद वे न भी जानती हों।'

'तब कौन जानता है ?' त्रिभुवन के स्वर में जिज्ञासा थी।

'मीनल चाची के आने के पूर्व ही मुंजाल हंसा को उड़ा ले गया था, इससे वे शायद न जानती हों। पर चाचाजी जानें, और चाची न जाने इस पर विश्वास नहीं होता !'

विचार करते हुए त्रिभुवन बोला—चाचाजी को कैसे समझाया जाय ? पिताजी ! एक मार्ग है, यदि आज्ञा दें तो करूँ। मुंजाल मामा से मैं अभी तक नहीं मिला। देखूँ मानते हैं ?

'बेटा ! तू उसे नहीं जानता। मुंजाल से कोई बात निकालना सरल नहीं।'

'मिलने में क्या हानि है ? अधिक से अधिक 'नहीं' कर देंगे ।'

'तो जाओ पर अपनी टेक याद रखना । अभी चाची मुझे शिक्षा देने आई थीं, वैसे ही तुम्हें भी न फँसायें ।'

'यह कहने की आवश्यकता नहीं ! मैं अभी वापस आता हूँ। जोरावर ! पिताजी और मेरे लिए हाथ-मुँह धोने के लिए पानी ला ।'

नौकर दाँतुन और पानी ले आया । उसने धीरे से देवप्रसाद से कहा—महाराज ! वल्लभसेन ने आदमी भेजा है ।

'क्या कहलाया है ?'

'कहलाया है कि वल्लभसेन मेरल आ गये ।'

'बेटा ! यह भी शुभ समाचार है । तू हो आ, देखें क्या होता है ?'

सेना के आगमन की बात सुनते ही मंडलेश्वर का मन निराशा से कुछ मुक्त हुआ । वे मुंजाल को सत्ताहीन कर डालना चाहते थे । स्वयं पाटन में, मेरल में वल्लभ और यदि देवस्थली की स्वतंत्र ध्वजा उड़ती रहे तब विरोधियों की कुछ चलेगी नहीं । उन्हें विश्वास हो गया कि इस समय उन्हें छेड़ने का कोई साहस नहीं करेगा । कर्णदेव की मृत्यु के पश्चात धाँधली का लाभ उठा कर अपनी सत्ता पाटन में पुनः जमाने का उन्होंने निश्चय कर डाला ।

१०

मामा से मिलने के लिए जाते समय त्रिभुवन घबड़ाया । उन्हें जीवन भर उसने शत्रु समझा । उनके पहले कभी बोला तक नहीं था । उनकी ख्याति बड़े बड़े राजनीतिज्ञों के हृदय को भी दहला देती तथापि बालक का निश्चय दृढ़ था । अपनी माँ पर किये गये अत्याचार से उसका हृदय व्यथित हो उठा था । अत्याचारियों को उचित शिक्षा

देने के लिए उसका हाथ फड़क रहा था पर अपने पिता की अपेक्षा उसमें सांसारिक ज्ञान अधिक था। वह सब जानता था। उसे दृढ़ विश्वास था कि मुंजाल जैसे राजनीतिज्ञ पर क्रोध प्रकट करने का परिणाम तिरस्कृत होना है।

जब वह मुंजाल के गुमाश्ताखाना में पहुँचा, तब सभी खलबला पड़े। त्रिभुवन का बचपन, चेहरे पर की भव्य रेखायें, नेत्रों का तेज देखते ही सब विचार में पड़ गये और पूछने लगे कि 'यह कौन है।' साधारणतः मुंजाल इस समय किसी से भेंट न करता था; किंतु त्रिभुवन से इन्कार करने का साहस किसी को न हुआ।

'आपका नाम ?'

'त्रिभुवनपाल सोलंकी !'

लोगों ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा, चौंके, उसे पहचाना। 'ठहरिये महाराज ! देख आऊँ, शायद मंत्रीजी काम में हों।'

'जी हाँ, जब फुरसत मिले तब बुला लें; मैं यहाँ हूँ।'

गुमास्ता तुरंत वापस आकर बोला—पधारिये।

त्रिभुवन हृदय की धड़कन शांत कर भीतर गया। सामने गद्दी पर सुंदर, तीक्ष्ण दृष्टि वाला एक व्यक्ति बैठा था। त्रिभुवन ने चेहरे के रूप और भव्यता से उसे तुरंत पहचान लिया। कुछ काँपते स्वर में पूछा—मामाजी ! पहचानते हैं ?

मंत्री के मुख के भाव बदले, क्षण भर के लिए घबड़ाहट की, उछलते हुए स्नेह की छाया दीख पड़ी। उसने हाथ बढ़ाया। उसमें अदृष्ट कंपन था।

अशांत-से स्वर में मंत्री ने पूछा—कौन ? हंसा का त्रिभुवन ?

मामा को नमस्कार कर त्रिभुवन गद्दी के नीचे बैठ गया।

'ऊपर बैठो बेटा ! देखूँ, इधर तो देख, देखूँ तेरा मुँह। इधर आओ, इधर।'

यह देख त्रिभुवन को आश्चर्य हुआ। क्या यही स्नेह-पूर्ण भावुक पुरुष, उसका क्रूर विख्यात मामा है ! कुछ क्षण दोनों मौन रहे।

'बहुत दिनों पर तुम्हें देखा।'

'शायद प्रथम बार !'

त्रिभुवन के इन शब्दों ने मंत्री की बुद्धि सचेत कर दी। वह स्वस्थ हो बैठा। त्रिभुवन ने देखा कि ऐसा कटाक्षपूर्ण वाक्य कहकर उसने भूल की। मंत्री का अंतर्वेगपूर्ण स्वर शांत और भावहीन होने लगा, उसने पूछा—कहो बेटा ! कैसे चले ?

किस प्रकार प्रारंभ करे, यह न समझ पड़ने से त्रिभुवन बोला—एक भिक्षा माँगने आया हूँ।

थोड़ा हँसकर मंत्री ने कहा—भिक्षा ! मेरे बहन का पुत्र मेरे रहते भीख माँगे ?

विनती करते हुए त्रिभुवन बोला—जी हाँ, मामाजी ! भिक्षा कहिये, या चाहे जो कहिये, मुझे एक वस्तु दीजिये।

'क्या ?'

'मेरी माँ को !'

दूसरा कोई व्यक्ति चौंक पड़ता, पर मुंजाल के चेहरे पर क्षण मात्र के लिए आश्चर्य की बिजली चमकी और अदृश्य हो गई। उसने कहा—कह क्या रहे हो ?

'सच कहता हूँ, मामा जी। सत्रह वर्ष तक मेरा जीवन रस विहीन था। आज मुझे मालूम हुआ कि क्यों नीरस है। मुझसे माँ बिना नहीं रहा जाता। उसे मुझे दीजिये।'

'बेटा ! तू पागल हुआ है ? तेरी माँ तो कभी स्वधाम—'

'मामाजी ! आप भी धोखा दीजियेगा ? माँ जीवित हैं।'

'किसने कहा ?' निश्चल दृष्टि से त्रिभुवन की ओर देख मुंजाल ने पूछा। उनकी आवाज में बनावटी शांत मधुरता थी; पर मंत्री की

आँखें कह रही थीं कि उसका मस्तिष्क बड़ी तेजी से काम कर रहा है।

'किसने कहा ? मैं कहता हूँ। देखनेवालों ने उसे सदेह देखा है और कहने वाले ने सच कहा है।'

'किसने देखा है ? किसने कहा ?'

गिड़गिड़ा कर त्रिभुवन बोला—मामाजी ! मेरे साथ ऐसा व्यवहार कीजियेगा ? जन्म लेने के पश्चात् माँ की गोद मैं नहीं जानता, प्रेम से उमड़ते हुए माँ के नयनों ने मुझे नहीं बुलाया। आप पाषाण नहीं, मनुष्य हैं। आपको माँ के लिये विलखित रोते-कलपते बालक पर दया नहीं आती ? आपके हृदय में अत्याकांक्षिणी बहन के लिए क्या जरा भी स्थान नहीं है ? वह क्यों गई, यह मैं नहीं जानना चाहता; न मैं यही सुनना चाहता हूँ कि किसने उसे दुःख दिया, किंतु इस समय यदि वह मुझे देख ले तो आपको कितना आशीर्वाद दे ? माँ-बाप उसे आपको सौंप गये, आज उस बेचारी रंक बहन की इतनी इच्छा भी पूर्ण न कीजियेगा ? छः मास के प्यारे कुँवर के पास से लोग उसे पकड़ ले गये, तबसे उसने उसे देखा तक नहीं। आज पुत्र बड़ा हुआ, माँ की आँखें ठंडी करने योग्य हुआ। क्या आप अपनी बहन तथा भानजे की इतनी विनती न सुनियेगा ? मामाजी ! क्या दोनों को नहीं मिलाइयेगा ?'

त्रिभुवन का चेहरा दीनतापूर्ण था, नेत्रों से आँसू बह रहे थे। सामने मंत्री स्थिर बैठा था; मुट्ठी बँधी हुई थी। उँगलियों के नाखून हथेली में चुभ रहे थे। पर चित्तविकार के और कोई चिह्न नहीं थे।

'बेटा ! यह सब मिथ्या है। मैं क्या परमेश्वर हूँ असंभवको संभव करके दिखा दूँ ?'

'नहीं, पर आप मुंजाल हैं, गुजरात की दसों दिशाओं में फैली ख्याति के आप स्वामी हैं; आपकी शक्ति अपार है। आप जो चाहे कर सकते हैं।'

'बेटा ! भूलता है। बहुत सी बातें समझने में अभी तुम्हें देर है। विजयी वीर के क्षमाशील शासन के पीछे क्या-क्या पीड़ायें छिपी हुई हैं, हँसते हुए मुख की सुंदर रेखायें कितने आँसुओं को ढाँकती हैं, यह सब तुम बाद में समझोगे। तुम्हारी यदि मेरी बहन जीवित हो सकती तो क्या मैं इस प्रकार हाथ पर हाथ रखे हुए बैठा रहता ? मेरी बहन मेरे लिए भी मेरे प्राण के समान थी। उसने ही मुझे धोखा दिया मैंने नहीं।'

'तो क्या वह मर गई ? अथवा ऐसे हाथ में है जहाँ आपकी सत्ता चल नहीं सकती ? आप इस प्रकार आँसू बहायेंगे तो मेरी क्या दशा होगी ?'

'कुछ नहीं, वह भला कहाँ से मिल सकती है ?' मुंजाल की आँखों में भी दुःख की छाया आ गई।

'यह नहीं, क्या वह मर गई, सचमुच ?'

मुंजाल ने निरवता से पूछा—और क्या ? बहन का तो जो होना था हो गया, भानजा क्या मेरा कहना मानेगा !

त्रिभुवन विचार में पड़ गया। इनके साथ किस प्रकार बात की जाय ? पिता जी का कर्त्तव्य का भ्रम तो नहीं था !

'त्रिभुवन क्या मेरे पास रहोगे ?' दीनता से मुंजाल ने पूछा। चौंककर त्रिभुवन भी पूछ बैठा—क्यों ?

'देखो, मेरे कोई लड़का नहीं है, संसार में कोई दूसरा सहारा नहीं है। कुछ दिनों में बुढ़ापा आ जायेगा। मेरे पास रह कर क्या मेरे रिक्त हृदय की आशा नहीं पूर्ण करोगे ?

'मामाजी ! यह एक ही प्रकार से हो सकता है, पिताजी से मेल कर लीजिये।'

मुंजाल के दाँत एक पर एक बैठ गये, उसके नेत्र अधिक तीक्ष्ण हो गये। वह बोला—तुम्हें क्या संधि के लिए भेजा है ?

गर्व से सिर ऊँचा कर त्रिभुवन ने उत्तर दिया—मंडलेश्वर संधि की याचना नहीं करते।

'बेटा! मेरा कहना मान लो तो मैं तुम्हें इतना सुख दूँगा कि माँ का सुख उसके सामने कोई चीज नहीं है।'

'यह कैसे हो सकता है? सुख के लिए क्या मैं पिताजी को अकेला छोड़ दूँ?'

'मंडलेश्वर स्वयं ही संभाल लेंगे। यहाँ तुम्हारे लिए मान, धन, कीर्त्ति सब कुछ है।'

'फिर?'

'फिर क्या? कर्णदेव के जाते ही तुम्हारे पिता की स्थिति और बिगड़ जायगी। वहाँ तुम्हारे जैसों की नहीं चलेगी।'

'मामाजी! यह बिगाड़ना या सुधारना सरल नहीं है। देहस्थली का गढ़ ऊँचा है और वहाँ के वीर चूड़ी नहीं पहने हैं!'

'पर वहाँ मुंजाल मंत्री की बुद्धि नहीं है।'

'मामाजी! परमेश्वर ने बुद्धि किसी एक को ही नहीं सौंपी है।'

'बेटा! व्यर्थ की बातों के लिए मेरे पास समय नहीं। मेरा हृदय तुम्हारे लिए छटपटा रहा है। मेरी इच्छा तुम नहीं पूर्ण करोगे तो कौन करेगा?'

'कीर्त्ति और धन की लालच देकर मुझे लुभाते हैं? यदि आपका कथन सच हो, यदि मुंजाल मंत्री की बुद्धि से ही पाटन द्वारा मेरे पिता पर अत्याचार किया जाता हो तब ऐसे समय मैं आपके पास आकर बैठ सकता हूँ? मुझे क्या समझते हैं? मातृ-विहीन जिस बालक को माँ के प्यार से जिसने पाल-पोस कर इतना बड़ा किया, वह पुत्र क्या ऐसा निर्लज्ज, कृतघ्न होगा कि वह सिंह जैसे पिता का साथ छोड़ अब आपकी कोमल गोद में आकर बैठ जायगा? मामाजी! आपका मंत्रित्व यहाँ काम नहीं आयेगा!'

मुंजाल चुपचाप सुन रहा था, उसका चेहरा कठोर हो गया।

'तुम्हारी इच्छा ! मुझसे जो हो सकता था कर दिया।'

'हंसादेवी के आतंक से उसके पुत्र को दूसरी आशा हो ही क्या सकती है ?' तिरस्कार से कह कर त्रिभुवन उठ खड़ा हुआ।

'चुभते शब्दों का प्रयोग करना तुझे खूब आता है।'

'शब्द कठोर होते हुए भी सच हैं। मामा जी ! आप सुखी नहीं हैं। आपका भी हृदय रो रहा है। मैं जाता हूँ किंतु स्मरण रखिये कि आज आपने मेरी याचना ठुकरा दी, इसके लिए आप पछतायेंगे।' कह कर त्रिभुवन ने नमस्कार किया और बाहर निकल आया।

मुंजाल बहुत देर तक द्वार की ओर देखते रहे और एक निःश्वास लिया। लोग उसे दृढ़ विचार वाला समझते। उसे हृदय है, इसमें कितनों को संदेह था। पर वे भी आज दुपट्टे से आँखें पोंछ वहाँ से उठ खड़े हुए। त्रिभुवन तेजी से राजगढ़ की सीढ़ी उतर कर घर जाने के लिए पालकी में पैर रखने जा ही रहा था कि एक दासी ने आकर उसे रोका और एक बाण सामने रखते हुए कहा—त्रिभुवनपाल ! बाण से बिंध तो दिया पर उस घाव को भरेंगे कब ?

त्रिभुवन ने बाण देखा। पहचान लिया कि वह उसका ही है। याद आया कि प्रसन्न के यहां धनुष-बाण दोनों रह गये थे। बाण के फल पर रक्त की एक बूंद थी। उसे प्रसन्न याद आई, उसके पास जाकर दो बातें करके हृदय का दुःख हलका करने की इच्छा हुई। विचार आया 'वह न जाने कैसी होगी ?'

मन दृढ़ करके उसने कहा—दासी ! जाकर कहना कि घाव का उपचार तो कहीं भी हो सकता है।

यह कह कर बाण के दो टुकड़े कर दासी से पुनः वापस भेज दिया।

उसने पालकी में पुनः पैर रखा। इसी समय गढ़ में जोर से रुदन प्रारंभ हुआ। सभी जगह खलबली मच गई। त्रिभुवन दाँत पीसता हुआ लौट पड़ा। राजा कर्णदेव सोलंकी परलोक सिधार गये।

११

त्रिभुवन वहाँ गया जहाँ कर्णदेव जमीन पर सुलाये हुए थे। महल के सभी लोग वहाँ थे। बाहर से आने वालों का ताँता लगा हुआ था। रुदन प्रारंभ हो गया था। बहुत दिनों से जनता समझ रही थी कि कोई भयंकर आपत्ति पाटन के सिर पर आने वाली है। कर्णदेव की मृत्यु ने उस संकट का श्रीगणेश किया। जितने लोग आ सकते थे राजगढ़ में आ गये; कुछ बाहर मैदान में, सड़कों एवं चौराहों पर खड़े थे। 'रानी कैसी हैं, मुंजाल के चेहरे पर कैसे भाव हैं, देवप्रसाद पाटन आये या नहीं आदि अनेक प्रश्नों की चर्चा और कटु आलोचना होने लगी। समाचार मिलते ही मंडलेश्वर भी आ पहुँचे। उन्हें देखते ही लोगों में और भी घबड़ाहट बढ़ गई। कितने ही वर्षों बाद आज वे प्रकट रूप से गढ़ में आये थे।

मंडलेश्वर ने कर्णदेव के शव को प्रणाम किया और त्रिभुवन को ढूँढ़कर उससे धीरे से पूछा—क्यों, कुछ पता चला ?

त्रिभुवन ने सिर हिला कर कहा—जी नहीं।

'जीवित है या नहीं, इसका कुछ पता चला ?'

'कुछ कहा नहीं जा सकता; मुझे तो कुछ भेद मालूम पड़ता है।'

'अच्छी बात है, पीछे विचार करेंगे; इस समय आँखें और कान दोनों खुला रखना। कल प्रातः उठौना के पहले कोई नवीन घटना अवश्य घटेगी।'

'कोई चिंता नहीं।'

इतने में अंतिम क्रिया के लिये राजपुरोहित आ पहुँचे। लोग वहाँ से पीछे हट गये। इसी समय एक भयावना राजपूत मूँछों को ऐंठते हुए आया और इस प्रकार मानो कुछ जानता ही न हो मंडलेश्वर के पास खड़ा हो गया। यह वीरपुर का सामंत था। उसने धीरे से मंडलेश्वर से पूछा—महाराज तैयार हैं?

'किसलिए?'

शव की ओर संकेत करते हुए वह बोला—मैंने आपसे क्या नहीं कहा था? मेरे आदमी सब तैयार हैं, यदि आपको स्वीकार हो तो इनके रिक्त स्थान को आप पूर्ण करें।

मंडलेश्वर भीतर ही भीतर हँसकर बोले—विजयमल्लजी पाटन का राजा अब जयदेव है; दूसरा कोई नहीं।

विजयमल्ल ओंठ काटकर और आँखों से घूर कर वहाँ से हट गया। कुछ देर पश्चात् लोग कर्णदेव का शव श्मशान ले गये। संपूर्ण राज्य की प्रजा अपने प्रिय राजा के साथ-साथ श्मशान तक गई। शोभा के लिए, राजा भला था इसलिए और भविष्य के भय से बहुतों ने आँसू बहाये। राजा की दाहक्रिया के बाद सब लोग वापस लौट आये। सबसे आगे जयदेव कुमार और देवप्रसाद चल रहे थे। शत्रु बने हुए दोनों भाइयों को एक साथ देख लोगों में भाँति-भाँति के विचार उठने लगे। सब राजगढ़ पहुँचे, और रो-धोकर थके-माँदे अपने-अपने घर गये। मंडलेश्वर और त्रिभुवन भी अपने घर पहुँचे। थोड़ी ही देर बाद जोरावर आकर बोला—बापू द्वार पर राजा मदनपाल खड़े हैं। वे अन्नदाता से एकान्त में मिलना चाहते हैं।

मंडलेश्वर—आज सब लोगों को हो क्या गया है? सभी षड्यंत्रकारी हो गये हैं। अच्छा, बुला लाओ।

मदनपाल भीतर आये। वे साठ वर्ष के राजपूत, जमाना देखे

हुए राजपूत थे। वे कर्णदेव के मामा होते थे। मुंजाल ने उनकी सत्ता घटाने के लिए उन्हें कर्णावती के दुर्गपाल का मानपूर्ण पद दे दिया था। सभी जानते थे कि मदनपाल के मस्तिष्क में कोई न कोई षड्यंत्र की रचना हो रही है। पर उनकी आकांक्षा क्या है, यह कोई भी नहीं जानता था।

'मंडलेश्वर ! कहिये कोई नई बात ?' जरा हँसते हुए मदनपाल ने पूछा। उनके वृद्ध पर तीक्ष्ण नेत्र देवप्रसाद के हृदय की बात जानने का प्रयत्न कर रहे थे।

'जो आप कहें।'

'अब कुछ करना-धरना है या योंही बैठे रहेंगे ?'

'क्या करें ? कल उठौना है, प्रथा के अनुसार नये राजा का राजतिलक होगा। तत्पश्चात् नवीन परिवर्तन कुछ होगा, तब देखेंगे कि क्या करना है ? अभी तो पाटन में बैठे हैं।'

यह सुन कुछ क्रुद्ध होकर मदनपाल बोले—मंडलेश्वर ! यह क्या कम मूर्खता आप कर रहे हैं ? आप सामंतों के मुकुट रूप हैं; फिर भी इतने तटस्थ होकर बैठे हैं ! लज्जा नहीं आती ?

मदनपाल के मन का भाव जानने के लिए कृत्रिम उपेक्षा से देवप्रसाद ने उत्तर दिया—करें क्या ? बहुत होगा तो मेरी देहस्थली तो है ही, वहाँ जाकर निश्चिन्ततापूर्वक राज्य करूंगा।

'मीनल क्या जाने देगी ? महाराज ! प्रत्येक क्षण अमूल्य है।'

'देहस्थली जाने से मुझे कौन रोकेगा ? कैसी पागलपन की बात कर रहे हो ?'

'मंडलेश्वर ! आप भले हैं, भोले हैं। इस रानी की धूर्त्तता को पा नहीं सकते।'

'तब करें क्या ?'

'मैं यही विचार करने के लिए आया हूँ। मेरा मंडल छोटा-सा है,

मुझे इसने कर्णावती में सड़ने के लिए भेज दिया है। कल ही मेरे मंडल को नष्ट करने में इन्हें कितनी देर लगेगी ?'

देवप्रसाद ने देखा कि मदनपाल कोई युक्ति सोचकर आया है, अतः उसे जान लेना आवश्यक समझ कर पूछा —तब आप कौन-सा मार्ग बताते हैं ?

'मैं यही आपसे पूछने के लिए आया हूँ। जब तक मीनलदेवी के हाथ में लगाम है, तब तक मंडल कभी भी निर्भय नहीं रह सकते।'

'चाची क्या रास्ते का कंकड़ हैं कि उठाकर फेंक दिया जायगा ?'

'नहीं, पर माँ-बेटे अलग किये जा सकते हैं।'

चौंककर देवप्रसाद ने पूछा —एँ ! कह क्या रहे हो ? कैसे ?

'आपको साहस चाहिये। आज रात्रि में यहाँ से जयदेव कुमार को उठा ले जायें एवं परसों कर्णावती में उसका तिलक कर दें।'

देवप्रसाद को वृद्ध के साहस पर आश्चर्य हुआ। जयदेव को कर्णावती में गद्दी पर बैठाकर यहाँ से शासन करना ! यह युक्ति बड़ी ही अच्छी थी। वह सोचने लगा कि राजनीति क्या क्या कराती है ?

'पर जयदेव को ले जाना सरल नहीं है।'

'बिना प्रबन्ध किए मैं कुछ नहीं कहता।'

'मदनपाल जी ! आपने कैसे जान लिया कि मैं इसमें सम्मिलित हो जाऊँगा ?'

'मंडलेश्वर ! मेरी अपेक्षा आपकी स्थिति अधिक खराब है और होगी।'

'मामा ! मुझे दुःख की अपेक्षा टेक अधिक प्यारी है और रहेगी।'

'राजनीति में अधिक टेक रखियेगा तो नष्ट हो जाइयेगा। सामने मीनल एवं मुंजाल दो कपट प्रकट हुए हैं। यहाँ तो 'शठे प्रति शाठ्यं कुर्यात्' की नीति बरतनी चाहिये।'

'इतने वर्ष हो गये, ये हाथ जो अनीति से दूर रहे उन्हें क्या दूषित करूं ? राजपूत वीर की शूरता के सिवा दूसरा मार्ग मैं कभी भी ग्रहण नहीं करूँगा ।'

'भैया ! यह समय वैसा नहीं है । अभी भी विचार कर लें ।'

'इसमें विचार क्या करना है ? एक लुटेरे के समान छिपकर रात्रि में पाटन के अधिपति को उठा ले जायँ और उसे अपने अधिकार में रखकर शासन चलाऊँ । इसकी अपेक्षा अपनी सेना ले जाकर पाटन को सर क्यों न करूँ ? वीरता तो इसमें है !'

पान लेकर उठते हुए मदनपाल ने कहा—मंडलेश्वर ! अपनी वीरता आप जानें, किंतु किसी से कहियेगा मत ।

'बहुत ठीक !'

'वचन दीजिये ।'

'हां, वचन देता हूँ । क्या करूँ ? मेरा मन यह स्वीकार नहीं करता, नहीं तो आपकी योजना में अवश्य साथ देता ।'

* * *

देर तक मुंजाल मंत्री राजतंत्र को ठिकाने रखने का प्रयत्न करते रहे । अब तक के किए परिश्रम से यह कार्य उन्हें बहुत सरल लगा; प्रत्येक पक्ष की क्या चालढाल है, कौन-कौन मंडलेश्वर सिर उठा सकते हैं, पाटन में किसके जासूस घूम रहे हैं, यह सब पता उन्होंने लगा लिया और प्रत्येक स्थान पर विश्वासपात्र व्यक्ति हैं या नहीं, इसका पता लगाकर संपूर्ण महल में कड़ा पहरा बैठा दिया । पश्चात् वे रनिवास में गये ।

'माताजी के सिर में अत्यधिक पीड़ा है, सबेरे मिलने से क्या काम नहीं चलेगा ?' एक दासी ने पूछा ।

मुंजाल सिर दुःखने का बहाना सुनकर हँसा । उसे सूचना मिल चुकी थी कि अब तक मीलनदेवी शांतिचंद्र एवं यति के साथ मंत्रणा

कर रही थीं। 'कोई नवीन प्रयोग हो रहा है।' ऐसा उन्हें संदेह हुआ। यही जानने के लिए वे यहाँ इस समय आये थे। 'नहीं, इसी समय! मुझे अत्यावश्यक काम है।'

दासी भीतर से हो आकर बोली—आइये, माताजी बैठी हैं। स्वस्थ चित्त धारण कर मुंजाल भीतर गया। मीनलदेवी का वैधव्य देख उनका हृदय फटने लगा। काला वस्त्र पहने हुए डबडबायी हुई आँखों से मीनलदेवी बैठी थीं; पर उनमें मुंजाल को कुछ अद्भुत मोहकता दीख पड़ी। खिन्न हृदय को दबाकर कर्त्तव्य को आगे रख दबे हुए स्वर में उसने कहा—देवी! इस समय आने के लिए क्षमा करें। कल प्रातः उठौना के समय कुमार को तिलक करने के पश्चात् क्या-क्या आदेश प्रचारित करने हैं?

मीनल ने क्लेश से ऊपर देखा। मुंजाल समझ गए कि वह ढोंग कर रही है।

'इस समय तो कोई बात होना असम्भव है, मेरा तो सिर घूम रहा है। अभी जैसे चल रहा है वैसे ही चलने दो।'

'देवी! अभीतक शांतिचंद्र एवं यति के साथ बातें करने में सिर नहीं घूमा? देखिये, एक कदम भी उलटा पड़ने पर सब किये कराये पर पानी फिर जायगा।'

यह सुनकर रानी को काठ मार गया, वह बोली—पीछे सब बातें निश्चित होकर करूँगी।

गर्व से सिर ऊंचा कर मुंजाल बोले—मीनलदेवी राज्य की बातों से ऊब जांय, यह इतने वर्षों बाद मैंने आज ही देखा। खैर, मुझे कोई परवाह नहीं। पर इतना स्मरण रखियेगा कि मुंजाल सदृश निःस्वार्थ राय कोई नहीं देगा।

'यह क्या मैं नहीं जानती?'

अश्रद्धा से सिर हिलाकर 'ठीक है' कह मुंजाल बाहर निकल गये

एवं विचार में लीन अपने कक्ष की ओर चले। इतने में एक जासूस ने आकर उनके कान में कुछ कहा।

उनके कमरे में आनंदसूरि उनकी बाट जोहता हुआ बैठा था। उसे देख मंत्री ने निराशा दबाकर स्वस्थ विजयी भाव धारण किया। जरा कठोरता से उसने पूछा—कहिये यतिजी ! इस समय कैसे ?

'आप श्रावक-श्रेष्ठ हैं, बुद्धिशाली हैं। आपसे एक विनती करने आया हूँ।'

भवें चढ़ाकर मुंजाल ने पूछा—क्या है ?

'इस समय पाटन की स्थिति बहुत खराब है, उसे सुधारना आपके ही हाथ में है।'

तीक्ष्ण दृष्टि यति पर डालते हुए मुंजाल ने पूछा—कैसे ?

'आप दंडनायक बन जायँ तो स्थिति सुधर सकती है।'

इतनी सरलता से मुंजाल चंगुल में आनेवाला नहीं था उसने शांतिपूर्वक उत्तर दिया—यह क्या मेरे हाथ में है।

'क्या मीनलदेवी से नहीं कहा जा सकता ?'

बनावटी विरक्ति से मंत्री ने कहा—इसकी मुझे तनिक भी अपेक्षा नहीं है। करने-धरने वाली देवी हैं। उनका आदेश शिरोधार्य है।

'आपकी राजनीति से तो वे थक गई हैं।'

कुछ कठोरता से मुंजाल ने पूछा—क्या यही कहने के लिए देवी ने आपको इस समय यहाँ भेजा है ?

यति ने दांत पीसा। मुंजाल को परास्त करने की आशा उसने छोड़ दी, वह बोला—देखिये, मंत्रीजी ! आप जैसे राज्य के मित्रों को सोच समझ कर काम करना चाहिये।

मुंजाल ने उसपर तिरस्कारपूर्ण दृष्टि डाली, पर वे कुछ बोले नहीं।

'यदि आप जैन सत्ता के प्रतिनिधि बन जायँ तो तुरंत दंडनायक हो सकते हैं।'

शांतिपूर्ण, हृदय भेदक सात्विकता से मुंजाल ने कहा —यति जी ! राज शासन करने की शिक्षा, मुझे वर्तमान समय के किसी भी महान् व्यक्ति से नहीं लेनी है। मैं किसी एक का नहीं समस्त गुजरात का प्रतिनिधि हूँ। पाटन का चक्र समस्त प्रजा के लिए होगा एवं जयदेव कुमार संपूर्ण देश के महाराज होंगे किसी दल विशेष के साथ मेरा कुछ भी संबंध नहीं है।

'यह मैं कह कहाँ रहा हूँ ?'

मुंजाल—'कहो या मत कहो, यति ! अभी तुम बालक हो। मुंजाल अपने विचारों के अनुसार शासन चलावेगा, नहीं तो हट जायगा, समझे ? जिसने तुम्हें भेजा हो उससे कहना कि मुंजाल पर पुनः शासन करने का साहस न करे। लोगों के प्रेम एवं अपनी बुद्धि से मैं इस पद पर हूँ। इसे कौन छीन लेने का साहस करता है उसे मैं देख लूँगा। तुम भी, जैसा मैंने सोचा था, तुच्छ बुद्धि वाले ही निकले। कोई चिंता नहीं, पधारिये।'

मुंजाल के नेत्रों से तलवार की धार के समान तीक्ष्ण तेज निकला। उसके बंद अधरों पर अडिगता की छाप थी, यति निराश हो गया। उसने निराशा में भी मंत्री की प्रशंसा की।

'जैसी आपकी इच्छा।' कहकर आनंदसूरि वहां से चला गया।

'देवी ! देवी ! क्या कर रही हो ?' बड़बड़ाता हुआ मुंजाल बहुत देर तक विचार में लीन इधर से उधर घूमता रहा।

साम्राज्य बनाने का उसका स्वप्न इस समय नष्ट होता दीख पड़ा। बचपन से ही विमल मंत्री की बुद्धि को वह विनाशकारी समझता था। उसकी अपेक्षा मुंजाल में सत्तावान बनने का उत्साह अधिक था। भीमदेव की अपेक्षा कर्णदेव अधिक अशक्त एवं प्रमादाधीन था; इसीलिए चंद्रावती बसाने में उसे अधिक समय न लगता किंतु ये उसके मत से तुच्छ बुद्धि के विचार थे। उसकी अपेक्षा पाटन की सत्ता दृढ़ कर,

संपूर्ण देश को प्रभावशाली बनाने की ओर उसकी दृष्टि गई। सद्भाग्य से जब वह चंद्रपुर गया तब मीनल कुँवरि की मैत्री प्राप्त करने में समर्थ हुए। घोर परिश्रम कर उसे पाटन की रानी बनाया। अब तक सब कार्य ठीक-ठीक चलता रहा; पर अब सब आशाओं का महल गिरने लग गया। मुंजाल अभिमानी था, सत्ता का प्रेमी था। साथ ही भारतखंड में पाटन का डंका स्वयं बजाये; ऐसी उसकी आकांक्षा थी। जब ये सब आकांक्षायें निरर्थक हो जाती हुई दीख पड़ीं तब उसे भयंकर आघात लगा। वर्षों से स्वीकृत दासता, रानी के आदेश से वर्षों से संतप्त की हुई बहन, निष्कारण उपेक्षित भानजा—इन सब की मूर्ति नेत्रों के सामने आकर खड़ी हो गई। किसलिए यह सब किया? रानी के द्वेष से तड़प-तड़प कर मारी गई पत्नी भी कितने वर्षों बाद स्मरण हो आई। प्रभावशाली मनुष्य की दृढ़ता से इन विचारों को उसने दूर किया। 'अब क्या करना चाहिये?' यह विचार उत्पन्न हुआ। विद्रोह करके पाटन को हथिया कर रानी को क्या परेशान किया जाय? नहीं, नहीं। देवी को तो देवी ही मानना चाहिये। महत्त्वाकांक्षा तो जाती रही, पर इतने वर्षों के स्नेह को तोड़ना उसे नहीं रुचा। चाहे जो भी हो, इस समय चुपचाप देखते रहना चाहिए और समय आने पर ऐसा हाथ दिखाना कि जिससे अपना स्वप्न भी सच हो जाय और रानी का स्नेह भी न टूटे। प्रातः क्या होगा, इसे वह ठीक-ठीक नहीं समझ सका।

'जो होगा देखा जायगा' ऐसा निश्चय कर वह सो गया।

१२

प्रातः काल से ही राजगढ़ के मैदान में लोगों की भीड़ एकत्र होने लगी। थोड़ी दूर एक चबूतरे पर नगर की स्त्रियों का समूह एकत्र हो आक्रंद करने लगा। प्राचीन समय में राजा नगर का पिता समझा जाता और प्रजा भी पुत्र जैसा भाव रखती थी। राजगढ़ के बृहद् आँगन में लोग खड़े थे; जागीरदार एवं सामंत गण, मंडलेश्वर एवं साहूकार, सब लोग वहाँ बैठ गये। थोड़ी देर पश्चात् देवप्रसाद आये और वे भी द्वार के पास बैठ गये। बाद में मुंजाल आये। सूर्योदय होते ही जयदेव कुमार, आनन्दसूरि, शान्तिचंद्र एवं राजपुरोहित आये और सब लोग जलदर्शन के लिए चले। कांतिमान कुमार, यति और राजपुरोहित के साथ सबसे आगे चल रहे थे। उनके पीछे दो व्यक्ति चल रहे थे—सिंह के समान भयंकर वक्षःस्थल से वीर देवप्रसाद एवं स्वस्थ, तेजस्वी, सौन्दर्यवान मुंजाल। सभी पाटन निवासी इन दोनों को देख रहे थे। मंडलेश्वर से ले के इतर जन महामंत्री को पूजते थे। चाहे जो कुछ भी हो जाय मुंजाल पर उनका विश्वास अचल था। उनकी उपस्थिति से उन्हें किसी प्रकार का भी भय नहीं था।

संपूर्ण जन समूह चुपचाप जलदर्शन कर वापस लौट आया एवं कुमार तथा सामंत आदि पुनः वेदी पर बैठ गये। ऊपर खिड़कियों की जालों से कुछ स्त्रियाँ झाँक रही हों ऐसा मालूम पड़ रहा था। सब लोग आँखें खोलकर देखने लगे कि अब क्या होता है। सदा से पाटन के राजाओं का प्रथम राज्याभिषेक इसी प्रकार होता था; पश्चात् द्वितीय शोभा के लिए कुछ दिनों के बाद होता था। वेदी के बीच में सिंहासन सजा हुआ था; उसपर जयदेव कुमार बैठ गये। पास ही में राजपुरोहित खड़े थे। दूसरी ओर नगर-सेठ

मुंजाल ओंठ पर ओंठ बैठाये हुए सत्ता के अवतार के समान खड़े थे। उनका मोहक रूप इस समय अधिक मोहक लग रहा था। उनके नेत्रों से दुर्जय स्थिर किरणें फूट रही थीं। राजपुरोहित ने जयदेव कुमार को तिलक किया और कर्णदेव की तलवार उसके हाथ में दी। राजपुरोहित के हटते ही आनंदसूरि तिलक करने आते हों इस प्रकार आगे बढ़े। देवप्रसाद किचकिचा उठे। क्योंकि यह नवीन रीति केवल जैनों के लिए ही मानपूर्ण थी। लोग चौंके। क्योंकि राजपुरोहित के पश्चात् तिलक करने का अधिकार नगर-सेठ का था। पर यति के सिंहासन के पास पहुँचने के पहले ही मुंजाल आगे बढ़ आये। स्थिरता से यति के हाथ का चंदनपात्र ले लिया और धीरे से जयदेव को तिलक कर दिया। ओंठ दबाकर घबड़ाया हुआ यति पीछे लौट गया। कितने ही सामंतों ने ठहाका लगाया। तिलक करने के पश्चात् मुंजाल ने जय-घोष किया—जयदेव महाराज की जय! लोगों ने भी जय घोष किया।

लोगों की आवाज शांत पड़ते ही एक भाट ने कवित्त पढ़ा। पश्चात् जयदेव ने मन्द स्वर में कहा—मुझे दो एक परिवर्तन करना है।

चारों ओर सन्नाटा छा गया। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में कुछ न कुछ विचार उत्पन्न हुआ। जयदेव रटे हुए शब्द बोलने लगा—'मेरे परम पूज्य पिता श्री के स्वर्गवास से राज्य सूना हो गया है। मैं अभी बालक हूँ जिससे कुछ नवीन प्रबंध करना आवश्यक हो गया है। अपने विश्वासी एवं कार्यदक्ष मंत्री मुंजाल को मधुपुर और चंद्रावती की सेना का नायक बनाता हूँ।'

बेसमझ लोग यह सुनकर प्रसन्न हो गये। मुंजाल चाल समझ गया और तिरस्कार से मुस्कुराता हुआ खड़ा रहा। उसके शत्रु प्रसन्न हो उठे। यति ध्यानपूर्वक मुंजाल को देखने लगा।

'और अपने वृद्ध मंत्री शांतिचंद्र को पाटन के दुर्गपाल का पद

देता हूँ, साथ ही अनेक वर्षों से रिक्त दंडनायक का पद भी इन्हें सौंपता हूँ।' कहकर जयदेव ने अपनी तलवार शांतिचंद्र के हाथ में दे दी।

मुंजाल को छोड़ सभी लोग ऐसे चौंके मानो बिजली गिरी हो। चालीस वर्ष बाद दंडनायक! वह भी लोकप्रिय मुंजाल नहीं, बल्कि श्रावकों का कट्टर नेता शान्तिचंद्र को बनाया गया! पाटन की जनता भी चंद्रावती को तुच्छ दृष्टि से देखती थी, और उस पक्ष के मंत्री को दंड-नायक बनाया हुआ देख चकित हुई। पर इस रहस्य कोई अच्छी तरह समझ नहीं सका। तुरंत बंदीजनों ने स्तुति गाना प्रारंभ कर दिया और घबड़ाये हुए भेड़ों के झुण्ड के समान सब लोग चले गये। सामंत-गण प्रसन्न हुए क्योंकि मुंजाल से सभी डरते थे और उनकी सत्ता छिन जाने से उनका भय आधा हो गया। देवप्रसाद के क्रोध का ठिकाना न रहा। सिर पर किसी का दंडनायक बना रहना उसके गर्व को पसंद नहीं आया। तथापि शान्तिचंद्र का आना उसे लाभप्रद जँचा क्योंकि मुंजाल के चले जाने से अब सरलता पूर्वक अपना हाथ श्रावकों को दिखा सकेगा। अपमानित होते हुए भी आशा का पुल बाँधता हुआ वह अपने महल में आया।

घर पर त्रिभुवन उसकी राह देख रहा था, उसने पूछा—पिताजी! क्या सोच रहे हैं?

'कुछ नहीं, अपनी सेना की सहायता से शांतिचंद्र को सीधा रखना तो एक साधारण सी बात है। अब वह वृद्ध कर ही क्या सकता है। शत्रु ने अभी तक तो मुँह की ही खाई है।'

'पिताजी! एक दूसरा समाचार भी आपने सुना?'

'क्या?'

'आज दोपहर को बारह बजे पाटन के फाटक बंद होने वाले हैं।'

आँखें फाड़ कर देवप्रसाद ने पूछा—क्या कहते हो? कहाँ सुना?

अपनी सत्ता का प्रदर्शन करते हुए रानी ने पूछा—अच्छा, मधुपुर जाकर क्या करोगे ?

'जो दण्डनायक की आज्ञा होगी।'

'इस प्रकार क्यों बोल रहे हो ? ठीक-ठीक बताओ न ?'

'क्या बताऊँ ? सेवकों की भाषा जीभ पर चढ़ाना इतना सरल नहीं है, तथापि यथाशक्ति बोलने का प्रयत्न कर रहा हूँ।'

'इस समय तुम बिलकुल ही बेकार से हो रहे हो।'

मुंजाल चुप रहा। रानी को भी नहीं सूझा कि क्या बात करे।

शांतिपूर्वक मुंजाल ने पूछा—तब आज्ञा है ?

चिढ़ कर रानी बोली—जी हाँ, पधारिये ! मेरा दुर्भाग्य कि इस समय यहाँ कोई विश्वासपात्र भी न रहा।

मुंजाल ने एक भयंकर, तीक्ष्ण, सार्थक दृष्टि डाली। वह कुछ तन-कर खड़ा हो गया और धीमे स्वर में बोला—देवी ! क्या आपको विश्वासी मनुष्य को रखना आता है ? खैर एक बात कहे जाता हूँ; यदि रात्रि में इस महल में रहियेगा तो षड्यंत्रकारी जयदेव कुमार को उठा ले जायँगे।

रानी इन शब्दों का अर्थ समझे एवं इन शब्दों की भयंकरता का अनुभव करे; इसके पूर्व ही मुंजाल वहाँ से चला गया। घबड़ाई हुई रानी को कुछ नहीं समझ पड़ा कि क्या करे। माथे पर हाथ देकर वह बैठी रही; इस समय यदि मुंजाल उपस्थित होता तो रानी विनय की मर्यादा छोड़ रो देती। अकेली, मंत्रणाविहीन, उलझन में पड़ी हुई रानी विचार-मग्न हो गई। झूले से उतर कर उसने खिड़की खोली। थोड़ी देर तक वहाँ खड़ी रही। थोड़े से रिसाला के साथ उसने मुंजाल को जाते हुए देखा और एक आह भरी। अपनी नियोजित रचना जैसी सोचा था वैसी सरल नहीं प्रतीत हुई।

तुरंत उसे एक विचार आया। 'अरे हाँ ! उसे दूसरे ठिकाने

छिपाऊँ। मुंजाल भी संभव है विरोध कर बैठे। वह तो मेरा ब्रह्मास्त्र है। अब तो दोहरा अर्थ सिद्ध होगा।' कह कर वह भीतर के खंड में चली गई।

मुंजाल तेजी से मोंढेरी दरवाजा की ओर बढ़ा। मध्याह्न को अभी दो-तीन घड़ी की देर थी। व्यापारियों की जय गोपाल स्वीकार करता हुआ मंत्री बाजार से चला जा रहा था। नगर में इनके जाने का निश्चय सुनकर भय उत्पन्न हो गया था। लोगों का समूह जगह-जगह पर एकत्र हो काना-फूसी कर हड़ताल करने का विचार कर रहा था। इतने में पास ही की गली से एक दूसरा रिसाला निकला। देवप्रसाद एवं त्रिभुवन भी चार-पाँच अनुचरों के साथ मोंढेरी दरवाजा जा रहे थे। तंग मार्ग में दोनों रिसालों का सामना हो गया और कौन आगे जाय यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ। प्राचीन काल में यह प्रश्न सदैव ऐसे समय उठ जाता और प्रायः झगड़ा हो जाया करता तथा खून-खराबी होती। देवप्रसाद स्वभावतः उग्र था और ऐसे मामलों में बड़ा ही हठी भी। उसने मूँछ पर ताव दिया, तलवार की मूँठ पर हाथ रखा और ऐंड़ मारकर अपना घोड़ा आगे किया; उसके पीछे तुरंत त्रिभुवन जा पहुँचा। मुंजाल ने घूम कर देखा, वह हठी राजपूतों का मतलब ताड़ गया और उसने भी पीछे आने वाले सवार से तलवार माँग लिया। लोग दूकान पर खड़े होकर देखने लगे।

'भीमदेव का प्रपौत्र पहले जायगा।' गर्व से देवप्रसाद बोला और मूँछ मुरेड़ने लगा।'

मुंजाल के सेवक भी लड़ने के लिए तत्पर हो गये।

मुंजाल ने शांतिपूर्वक मंडलेश्वर की ओर देख कर कहा। 'पाटन में पाटन का नगरसेठ ही पहले जायगा।'

क्षण भर तक दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे। ऐसा लग रहा था कि वनराज केसरी गरुड़राज के तेजस्वी नयनों की ओर अपनी

विकराल दृष्टि गड़ाये हो। लड़कपन के कट्टर शत्रु आज आमने-सामने मिल गये थे। वैर, द्वेष, दबे हुए विरोधी भाव उछल पड़े; वर्षों का अविस्मृत विद्वेष आज ताजा हो गया।

देवप्रसाद ने तलवार म्यान से निकाल कर कहा—देखता हूँ कि कौन पहले जाता है?

'मंडलेश्वर! क्या यह समय कट मरने का है?' मुंजाल ने धीमें स्वर में पूछा। वह वीर साथ ही चतुर भी था।

जरा हँसकर देवप्रसाद बोला—बनिया!

यह सुनते ही मुंजाल की त्योरियाँ चढ़ गई। वह बोला—सोलंकी! मुंजाल के साहस से सारा संसार परिचित है।

त्रिभुवन बीच में आकर बोला—पिताजी! सोलंकी पहले जाँय या नगरसेठ इसका निर्णय तो बाद में होगा; पर इस समय साले-बहनोई एक साथ जायँगे। इस विस्मृत सम्बन्ध को अचानक सुन दोनों चौंक पड़े। उनके मुख पर ग्लानि छा गई, दोनों पीछे हटे। तलवार पर से हाथ भी हट गया और दोनों ही त्रिभुवन की ओर देखने लगे। दोनों ने उसके मुख में उसकी माँ की सुंदर रेखायें देखीं। त्रिभुवन दीनता से देखता रहा। साले-बहनोई द्रवित हो उठे।

पास जाकर देवप्रसाद बोला—मुंजाल! तुम्हारे अत्याचार ने मेरा समस्त जीवन नष्ट कर डाला।

उसने दुःख से सिर हिलाया। भोला होने से देवप्रसाद ऐसे अवसरों पर वैर तुरंत भूल जाया करता था।

खेदयुक्त आवाज में मुंजाल ने कहा—मंडलेश्वर! संसार में भूल किससे नहीं होती? इस समय देख रहा हूँ कि मेरे जैसा हताश दूसरा कोई नहीं है।

मंत्री का मोह उतर गया था। धीरे-धीरे उसके विचारशील मस्तिष्क में अपनी भूलें स्पष्ट दिखाई दे रही थीं; उसने अपने पापों का

प्रायश्चित्त करना प्रारंभ कर दिया। दोनों के मन के समक्ष एक ही रम्य मूर्ति खड़ी थी।

देवप्रसाद ने घोड़ा थोड़ा आगे बढ़ाया, मुंजाल भी साथ हो लिया। भीड़ से कुछ दूर हटकर मंडलेश्वर ने धीमे स्वर में पूछा—हंसा क्या सचमुच न रही?

मुंजाल का चेहरा अधिक फीका पड़ गया; उसके अधर दुःख से क्षणभर के लिए काँप उठे। साहसी मुंजाल की आँखें डबडबा आईं। वह बोले—भैया! किसी समय मैंने हंसा को तुमसे छीन लिया था। आज उसे लौटाता हूँ; वह जीवित है।

'कहाँ है?' आतुरता से मंडलेश्वर ने पूछा। उसका हृदय धड़क रहा था।

'राजगढ़ में ईशान कोण की पिछली खिड़की है न? उसी के सामने वाले कमरे में।'

देवप्रसाद ने दृढ़ता से कहा—'ऐं! तब मैं वहाँ हो आऊँ।'

'आपको पता है न कि पाटन का फाटक दोपहर में बंद हो जायगा?'

'हाँ, अभी दो घड़ी की देर है, इतनी देर में तो मैं लौट आऊँगा।'

'अच्छा, मैं तो जाता हूँ।'

'मुंजाल! जैसे आज मिले वैसे ही यदि पहले मिल गये होते तो!'

'गुजरात का भाग्य लौट आता। पर विधि के विधान को कौन मिटा सकता है? अब भी हम बहुत कुछ कर सकते हैं।'

'हाँ, मुंजाल! मैं तैयार हूँ। तुम्हारी और मेरी दोनों की ग्रहदशा फिलहाल अच्छी नहीं है। बोलो कहाँ मिलोगे?'

'शहर से दो कोस पर बाघेश्वरी माता का मंदिर है। वहाँ पर कल सूर्योदय के समय मिलना। वहीं और बातें करूँगा।'

'तब कल प्रातः तक के लिए राम-राम !' जोर से देवप्रसाद ने कहा। उन्हें ज्ञान नहीं रहा कि आस पास खड़े लोग भी उनकी बातें सुन रहे हैं।

मुंजाल तेजी से रिसाले के साथ नगर के बाहर चला गया।

अब तक विनयी त्रिभुवन दूर खड़ा था। उसकी ओर मंडलेश्वर घूम कर बोले—बेटा ! अभी मध्याह्न होने में थोड़ी देर है। मैं राजमहल से होकर अभी आता हूँ।

त्रिभुवन कुछ-कुछ समझ गया; बोला—पिताजी ! कहिये तो मैं भी आऊँ। शायद कुछ काम पड़ जाय।

'नहीं जी, मैं अभी आता हूँ।' कहकर देवप्रसाद ने घोड़े को ऐंड़ मारी। उनका खून गरम होने पर वह सब कुछ करने में समर्थ थे। पानीदार घोड़ा भी स्वामी का विचार समझ गया, और बात की बात में राजगढ़ पहुँच गया। वहाँ श्मशान जैसा सब शून्य लग रहा था। राजगढ़ के ईशान कोण की खिड़की एक उजाड़ भाग में पड़ती थी। देवप्रसाद ने सांकल खड़खड़ाई; पर किसी ने उत्तर नहीं दिया। अधीर होकर अधिक जोर से खटखटाने पर कवच आदि से युक्त एक द्वारपाल ने खिड़की खोली।

द्वार से आधा सिर निकाल कर उसने पूछा—कौन ?

'क्यों ? यह राजगढ़ है या बंदीखाना ? खोल !'

'यहाँ किसी को आने देने की आज्ञा नहीं है। क्षमा कीजिये मंडलेश्वर ! आना हो तो बड़े फाटक से आइये।' यह कह कर द्वारपाल दरवाजा बंद करने लगा। पर मंडलेश्वर को समझाना साधारण बात न थी। दरवाजा आधा बंद हुआ ही था कि उसने जोर से लात मारी। संपूर्ण गुजरात के महाबाहु के अप्रतिम बल ने द्वार खोल दिया। द्वारपाल मुँह के बल जमीन सूँघने लगा। और मण्डलेश्वर ने भीतर प्रवेश किया। वह भीतर महल की ओर दौड़ा। उसे स्मरण हो

आया कि परसों रात्रि में इसी स्थान पर हंसा को उसने अन्तर्धान होते देखा था। क्षण-भर में वह सीढ़ी तक पहुँच गया। धूल झाड़ता हुआ द्वारपाल पीछे पीछे दौड़ता हुआ आया और बोला—प्रभु ! अन्न-दाता ! महारानी की आज्ञा............!

'क्या जान से हाथ धोना है?' कहकर देवप्रसाद ने तलवार निकाल ली। द्वारपाल भय से पीछे हट गया। तेजी से देवप्रसाद सकरी सीढ़ी से ऊपर चढ़ गया। उसकी भृकुटी चढ़ी हुई थी: आँखें चमक रही थीं।

'हंसा ! हंसा !'

पर कमरे से कुछ प्रत्युत्तर नहीं मिला। कमरे में एक ही द्वार था। वह भी भीतर से बंद। उसे पीटा पर कुछ भी उत्तर नहीं मिला। देवप्रसाद के तीसरी लात पर साँकल टूट गया और दरवाजा खुल गया।

वह भीतर घुसा। पर वहाँ कोई भी नहीं था। केवल इधर-उधर दो-एक श्वेत वस्त्र और जमीन पर एक माला पड़ी हुई थी। वह किसी स्त्री का निवास स्थान लग रहा था। निर्जन शांति की केवल गूँजती हुई प्रतिध्वनि ने ही उसके 'हंसा-हंसा' का उत्तर दिया। वह तेजी से भीतर दौड़ा। सभी जगह निर्जनता व्याप्त थी। दो तीन खण्ड पार कर गया पर कहीं किसी का नामोनिशान भी दिखाई न पड़ा। देवप्रसाद के आतुरता की सीमा न रही। पल पल पर मध्याह्न पास आता जा रहा था। 'हंसा ! हंसा !' वह फिर जोर से चिल्लाया।

'कौन है?' एक परिचित स्वर ने उत्तर दिया। देवप्रसाद चौंक कर खड़ा हो गया। दूसरे ही क्षण मीनलदेवी वहाँ आकर उपस्थित हो गई। मंडलेश्वर लज्जित हो गये।

कठोरता से मीनल ने पूछा—कौन? मंडलेश्वर ! क्या बात है जो इतने घबड़ाये हुए दौड़ आ रहे हो?

'चाची ! चाची ! मेरी हंसा मुझे लौटा दो।' विनती करते हुए, श्वाँस रुँध रहा हो, इस प्रकार मंडलेश्वर बोले।

'अभी भी तुम्हारा पागलपन दूर नहीं हुआ ?'

'पागलपन नहीं है, चाची ! मुझे क्यों व्यर्थ कष्ट देती हैं ? मेरी प्रियतमा लौटा दो। मुझे कुछ नहीं चाहिये जो चाहे ले लो पर मेरी प्राणेश्वरी लौटा दो।'

शांतिपूर्वक मीनल ने पूछा— इस प्रकार क्या मृत भी कभी जीवित हुआ है ? बोलो क्या देने के लिए तैयार हो ?

'क्या चाहिये ?'

'देहस्थली का मंडल और मेरल के पास पड़ी हुई सेना ! यह दोनों मेरे स्वाधीन करो और इस समय गढ़ में नजरबंद रहो।'

देवप्रसाद ने शर्त सुनी, उसके उग्र मस्तिष्क की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। हंसा को प्राप्त करने की उनकी इच्छा प्रबल थी। बड़े परिश्रम से शांत रहकर वे बोले—चाची ! आपका हठ ज्यों का त्यों बना हुआ है। लीजिये, मंडल देता हूँ; मुझे दंडनायक बनाइये। आपकी पहली शर्त मुझे स्वीकार है।

'वह समय गया, पत्नी चाहते हो तो यही मार्ग है।'

'तब स्वयं अपने और हंसा को अपमानित करने की अपेक्षा मुझे वियोग ही अधिक प्रिय है।' दाँत पीस कर भयंकर आँखें मीनल पर एकाग्र करते हुए वे बोले—चाची, राक्षसी चाची ! देखना, तुम मेरा भी हाथ। अब तक मैं पाटन के कारण मरने के लिए भी तैयार था। अब देखना कि पाटन का गढ़ कब तक टिका रहता है ?'

मीनल चुप खड़ी रही। इतने में गढ़ का चौघड़िया प्रारंभ हुआ। मध्याह्न हो रहा है, इसका स्मरण मंडलेश्वर को आया। साथ ही यह भी स्मरण आ गया कि मध्याह्न होते ही मैं बंदी हो जाऊँगा।

'चाची ! अब मैं जाता हूँ। फिर यमराज के यहाँ भेंट होगी।' कह कर मंडलेश्वर लौट पड़े और शीघ्रता से पिछली सीढ़ी उतर कर राजगढ़ में पहुँचे। मध्याह्न की चौघड़िया गड़गड़ा रही थी। इधर-उधर देखे बिना देवप्रसाद घोड़े को ऐंड मारकर चलता बना।

———

१४

मीनलदेवी ने मुंजाल की शिक्षा को ठुकरा कर यति द्वारा दिखाया हुआ मार्ग ग्रहण किया, इसके अनेक कारण थे। एक तो मीनल प्रतीक्षा करते-करते थक गई थी। उसे ज्ञान न था कि राजसत्ता एकाएक जमा देना कितना कठिन काम है। एक दूसरा हेतु भी था जिसे वह स्वयं अपने आप से भी स्पष्ट शब्दों में कहने में लज्जा का अनुभव करती। लड़कपन से ही मुंजाल के प्रति उसे अत्यधिक स्नेह एवं मान था। तथापि उसकी बुद्धि, राजनीतिज्ञता एवं लोकप्रियता उसे सालती रहती। राज्य में अब तक मुंजाल के कारण ही मीनल का अस्तित्व था। इस परतंत्रता से छुटकारा पाकर, जो मुंजाल नहीं कर सका उसे थोड़े दिनों में कर दिखाना, मुंजाल पर अपनी महत्ता सिद्ध करना भी एक कारण था। यति की शिक्षा और उसका धार्मिक उत्साह उसे इतना उत्तम जँचा कि उसकी सहायता से अपना हेतु सिद्ध करने के लिए उसने यह कदम उठाया।

मुंजाल को इस प्रकार मधुपुर भेजने से वह खीझ उठेगा, विरोध करेगा और स्वयं वह उसे मनायेगी। वह अपने मन में ऐसी ही आशा कर रही थी। पर इस गौरव के बीच में मुंजाल ने पर्दा डाल दिया, वह इससे घबड़ा उठी। तेरह वर्ष पश्चात् मुंजाल का पाटन से निकल जाना एक नया प्रसंग था। उसके मन में, मुंजाल ने कैसे पाटन

छोड़ा, यह विचार आया करता; कठिनाई से घिरा हुआ शूरवीर जिस प्रकार अधिक शौर्य दिखाता है उसी प्रकार मानल भी अपनी स्थिति का गंभीर विचार करने लगी। स्थिति तो अभी बहुत अच्छी मालूम पड़ रही थी। देवप्रसाद पाटन में बंदी हो जायगा और उसकी सेना मेरल में पड़ी रहेगी जिससे इस ओर से वह निश्चित थी। मुंजाल मधुपुर जाकर कुछ कर-धर नहीं सकेगा, साथ ही मेरल की सेना वश में रहेगी। कुछ समय तक ऐसी व्यवस्था चलने के पश्चात् दोनों सेना लेकर मुंजाल को मालव राज पर चढ़ाई करने के लिए भेज दिया जायगा एवं पाटन में पड़े हुए मंडलेश्वर को अपने कौशल से वश में करना होगा। चन्द्रावती से थोड़ी सेना और मंगाई गई है। वह देह-स्थली में जा बैठेगी जिससे देवप्रसाद भी ठिकाने आ जायगा। अन्यथा उसे पाटन में बंदी बना कर बंद रखना कोई कठिन बात न होगी। रानी को यह युक्ति इतनी सरल प्रतीत हुई एवं सत्ता का स्वाद इतना रसमय लगा कि अपना स्वप्न सत्य होता मालूम पड़ने लगा। पर मुंजाल ने जाते जाते क्या कहा था ....?

दासी ने आकर विचार माला तोड़ते हुए कहा—माँ जी ! शांति-चन्द्र सेठ आये हैं।

'अच्छा, आइये शांतु मेहता ! क्या बात है ?' शांतिचन्द्र के मुख पर चिंता का चिह्न देख रानी ने पूछा। शांतिचन्द्र वृद्ध, विश्वासी, भद्र एवं धर्मिष्ठ मंत्री थे; अत्यधिक धनोपार्जन किया था एवं पाटन के कोष की रक्षा की थी। जीवन में दूसरी ओर दृष्टि उन्होंने शायद ही कभी डाली तथापि पाटन के पुरखों से मंत्री चले आ रहे थे एवं चन्द्रावती में शांतिचन्द्र सेठ देवता का अवतार समझे जाते थे।

शांतिचन्द्र—कुछ नहीं, माँ जी ! कुछ नहीं, पाटन का फाटक अब बंद हो गया होगा एवं प्रत्येक द्वार पर अपने विश्वासी पहरेदार बैठ गये हैं।

'बहुत ठीक, निश्चिंत हुई।'

'अवश्य, पर देवप्रसाद पकड़ा जाय तब निश्चिंतता हो।'

'वह तो पकड़ ही गया होगा।'

'जी हाँ, अभी सूचना आती ही होगी।'

'क्यों, आपको भय लग रहा है कि वह भाग जायगा? आप इस प्रकार डरते-डरते क्यों बोल रहे हैं?'

'जी नहीं, डर किस बात का, पर मण्डलेश्वर बड़े सुदक्ष हैं।'

'हाँ, यह तो ठीक है। आपको कुछ कहना है! क्या कहना है, कहिये न!'

'नहीं, नहीं, कोई खास बात नहीं है।' दंडनायक क्षुब्ध था।

'खास न हो, तब भी कह डालिये न।'

'कुछ नहीं, केवल यही कि मुंजाल मेहता एवं देवप्रसाद मोती चौक में मिले थे। और तो कुछ नहीं पर माँ जी! वहाँ झगड़ा हुआ कि पहले कौन जाय?'

चिंतातुर हो मीनल ने पूछा—फिर क्या हुआ?

'फिर झगड़ा शांत पड़ गया एवं कल प्रातःकाल मिलने की कुछ बातचीत हुई है।'

यह सुनकर मीनल देवी कुछ घबड़ा उठीं, उनकी चिंता बढ़ गई। रानी ने अधीरता से पूछा—तब कहते क्यों नहीं? कहाँ मिलने वाले हैं? क्या बातचीत हुई? वे आपस में लड़े या नहीं?

'लड़े तो बिलकुल ही नहीं आपस में समाधान हो गया, फिर तुरंत ही मंडलेश्वर लौट आये।'

रानी ताड़ गई। मुंजाल ने ही बताया होगा। इसीसे देवप्रसाद यहाँ आये। पश्चात् वह जल्दी से चला गया, इससे उन्हें अवश्य ही ज्ञात होगा कि फाटक दोपहर को बंद होने वाला है। यह सब मुंजाल ही का काम है।

उसने पूछा—पीछे आपने क्या किया

'और क्या करता ? तीरंदाजों से कह आया हूँ कि देवप्रसाद को किसी भी प्रकार से बाहर न जाने दें। मण्डलेश्वर क्या करते हैं, इसकी सूचना अभी आवेगी।'

'यह तो ठीक ही है कि वह जायगा कहाँ ? पर हमें कोई और भय तो नहीं है ?'

'कैसा भय ? माँ जी ! हमारे विश्वासी सैनिक राजगढ़ का चौबीसो घंटे पहरा दे रहे हैं।'

'मैंने सुना है कि कोई षड्यन्त्र रचा जा रहा है।'

कुछ घबड़ा कर शान्तिचन्द्र बोले—नहीं, नहीं, माँ जी ! भला ऐसा किसे साहस है ?

'माँ जी ! भीतर आ सकता हूँ ?' बाहर से एक आवाज आई।

'कौन? वैद्यराज! आइये, इस समय कैसे? इतना हाँफ क्यों रहे हैं ?'

वैद्यराज दुपट्टा से मुँह पोंछते हुए बोले—माँ जी ! मेरा जामाता वाचस्पति एक आवश्यक समाचार ले आया है, विश्वास नहीं होता पर आपसे कह देने के लिए आया हूँ। सेठजी के सामने कहने में कोई बाधा तो नहीं है ?

'नहीं, आप कहिये।'

'माँ जी ! कुछ मंडलेश्वर महाराज जयदेव को कर्णावती उठा ले जाने का विचार कर रहे हैं।'

शान्तिचंद्र सेठ घबड़ा कर बोल उठे—ऐं !

रानी शांतिपूर्वक बोली—मैं जानती हूँ।

उसने देखा कि इस समय साहस खोने से कोई लाभ नहीं। स्वस्थता पर ही सत्ता निर्भर है।

'ऐं ! आप भी जानती हैं ?' शांतिचंद्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

'जी हाँ ! और दंडनायक होते हुए आप नहीं जानते ! अच्छा, किस प्रकार, कहाँ, यह भी कोई जानता है ।'

'जी नहीं, माँ जी ! यह पता नहीं ! यदि मुंजाल मेहता होते तो सब पता चल जाता ।' लीलाधर वैद्य ने दबी जबान से उत्तर दिया ।

रानी को जरा क्रोध आ गया कि जो कुछ उसके मन में था वही वैद्यराज ने कह दिया । अपने हृदय की बात कोई दूसरा जान ले, यह भला किसे अच्छा लगेगा ?

रानी ने पूछा—तब यहाँ सब लोग कर क्या रहे हैं ?

'माँ जी ! मैं वृद्ध हूँ, दवा कूटते कूटते मेरा संपूर्ण जीवन बीत गया । अतः मैं क्या जान सकता हूँ ? पर इतना तो सभी पाटन-निवासी कह रहे हैं कि मुंजाल मेहता को यहां से निकाल कर अच्छा नहीं किया ।'

'पाटन निवासियों से कह दीजिये कि वे अपना काम करें । मुझे अपने कर्तव्य का ज्ञान है ।'

'यह कौन अस्वीकार करता है ? पर माँ जी ! कोई भयंकर स्थिति आ उपस्थित हुई तब ?'

रानी ने गर्व से कहा—उपस्थित हुई तो आपके रानी को आपकी चिंता है !

पसीना पोंछते हुए वैद्य ने साहस कर कहा—माँ जी ! तीन पीढ़ी से सोलंकियों का सेवक हूँ जिससे यदि मुंह से कुछ अनुचित निकल जाय तो क्षमा कीजियेगा । पर इसका परिणाम अच्छा नहीं होने वाला है ।

'बहुत ठीक, देखते जाइये, सब ठीक हो जायगा ।'

दासी ने आकर कहा—माँ जी ! आनंदसूरिजी पधारे हैं ।

आतुरता से रानी ने कहा—भेज, भेज ! उन्हीं की जरूरत है ।

कवच पहने हुए राजपूत वेश में एक पुरुष अंदर आया । उसका

मुँह साफा से ऐसा बँधा हुआ था कि एकाएक उसे कोई पहचान नहीं सकता था।

रानी ने आश्चर्य से पूछा—कौन आनंदसूरि जी !

मुँह पर से साफे का बँधना हटाते हुए आनंदसूरि ने कहा—जी हाँ, मैं ही हूँ। प्रसंगवशात् वेश बदलना पड़ता है।

शांतिचंद्र एवं लीलाधर यति को इस वेश में देख चकित हुए।

वह उतावली से बोला—माँ जी ! अपना वार खाली गया।

तीनों एक साथ बोल उठे—क्यों, क्या हुआ ?

'आपके यहाँ मंडलेश्वर आये, उसी समय मैंने सुना कि उसमें एवं मुंजाल में कोई मंत्रणा हुई है जिससे यह वेश धारण कर मैं तैयार हो गया। मंडलेश्वर के नीचे उतरते ही मैंने उनका पीछा किया। उन्होंने घोड़ा दौड़ा दिया, मैंने भी अपना घोड़ा दौड़ाया। मोंढेरी दरवाजा जाने के पूर्व चाँपानेरी दरवाजा आया। उसे बंद देख वे चौंके एवं मोंढेरी दरवाजा जाने का विचार उन्होंने छोड़ दिया। आगे दीवाल कुछ नीची थी वहीं से घोड़े को कुदाकर वे नगर कोट को लाँघ गए।

'क्या ! क्या ! क्या !' तीनों एक साथ बोल उठे।

'लंबी-चौड़ी हम बातें करते ही रहे और मंडलेश्वर निकल गये।' चारों व्यक्ति एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

यति को संबोधन कर रानी बोलीं—अब ये और मुंजाल अवश्य मिलेंगे।

'माँ जी मैंने तो पहले ही कहा था !'

'अब यह कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं है।'

'अब करना क्या ? कल ये दोनों मिल गये और मधुपुर तथा मेरल की सेनायें मिल गईं तब तो सब चौपट हुआ।'

'त्रिभुवनपाल का क्या हुआ ?' शांतिचन्द्र ने यति से पूछा।

'उसके तो यहीं होने की अधिक आशा है।'

'तब उसे पकड़ना चाहिये।'

सबको यह बात जँची।

'हाँ, पर जैसे भी हो इन दोनों को मिलने नहीं देना चाहिये।' रानी, मुंजाल और देवप्रसाद के बारे में ही सोच रही थी।

'यह कैसे संभव है?' शांतिचन्द्र ने पूछा।

'एक मार्ग है, आप और जयदेव मधुपुर जायँ तो मुंजाल रुक सकता है।' यति ने सुझाव दिया।

शांतिचन्द्र—पर माँ जी का जाना उचित होगा?

यति—मैं हूँ न? चन्द्रावती की सेना मेरे साथ है। फिर तीन दिन हुआ मैंने चन्द्रावती को लिखा है, दूसरी सेना भी तैयार हो रही है, वह आकर उसमें मिल जायगी।

वैद्य—ठीक है, पर यदि पाटन निवासियों को मालूम हो गया तब? अभी ही नगर में हलचल मच गई है।

'संध्योपरांत ही निकलने से यह हो सकेगा।'

'आनंदसूरि जी! आपका ही कहना ठीक है। इस समय हमने दो व्यक्ति अपने हाथ से निकल जाने दिया। इन दोनों के मिलने ही अपना खेल समाप्त हो जायगा। इसे रोकने का मार्ग एक ही है जो आपने बताया, इससे एक दूसरा लाभ भी है।' रानी ने कहा।

शांतिचन्द्र—क्या?

रानी—जैसा वैद्यराज ने बताया यदि वैसा कोई षड्यंत्र रचा जाता हो तो उससे भी बच जायेंगे; पर पाटन का क्या होगा?

यति—पाटन में शांतिचन्द्र सेठ तो हैं ही!

वैद्यजी अपना भय प्रकट करते हुए बोले—माँ जी! यह याद रखियेगा कि पाटन निवासियों पर अधिक विश्वास करना ठीक नहीं।

यह सुनते ही रानी की आंखें लाल हो गईं। उनमें से चिनगारियाँ-

सी निकलने लगीं। वह बोलीं—क्या करेंगे पाटन निवासी ? वैद्यराज ! आप लोगों को बहुत डर लगता है !

वैद्य—मान लें यदि मंडलेश्वर ने मेरल की सेना लेकर आक्रमण कर दिया तब ?

यति—आक्रमण कर देगा तो क्या ? शांतिचन्द्र सेठ क्या दो दिन भी पाटन की रक्षा नहीं कर सकेंगे ?

शांतिचन्द्र—आप भूल रहे हैं यति जी ! सोलंकी के आ जाने पर दो दिन तो क्या दो घड़ी भी पाटन निवासी फाटक बंद रहने नहीं देंगे।

'अच्छी बात है मैं विचार करूँगी। शांतु मेहता ! आप जाइये और त्रिभुवनपाल को समझा बुझा कर ले आइये।'

'जैसी माँ जी की आज्ञा।'

'वैद्यराज ! आप भी घर न जायँ, शायद आपका भी काम पड़ जाय।' रानी अस्थिर हो उठी थी।

'कोई बात नहीं, यहीं बैठा हूँ।'

तीनों व्यक्तियों के चले जाने पर रानी अकेली रह गई। उसका चित्त भ्रांत हो गया था। चारो ओर से एक साथ ही विपत्ति घहरा आई; इस समय मुंजाल होता तो कैसा अच्छा होता ? दूसरे ही क्षण विचार उत्पन्न हुआ कि क्या मुंजाल की सहायता बिना चल ही नहीं सकता ? हाथ पर सिर रखे हुए बहुत देर तक मीनलदेवी सोचती रहीं।

अब तक सब कुछ सुचारु रूप से चलता जा रहा था। चक्रवर्ती बनने के लिए उसने होली सुलगाई थी। अब उस होली की आग अपने ही घर में सुलगती हुई-सी दीख पड़ने लगी। कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? किससे पूछूँ ? क्रमशः विचार की विडंबना में से हेतु स्पष्ट हो गया। किसी प्रकार मंडलेश्वर दो-तीन दिनों तक शांत पड़ा रहे ! न वह पाटन की ओर बढ़ने पाये और न मुंजाल के साथ मिल सके,

बस ! क्या करे ? अंधकार में बिजली चमके, घनघोर घटा में सूर्य की प्रथम किरण प्रवेश करे, उसी प्रकार एकाएक मीनल की आँखें चमक उठीं, मुख पर एक भयंकर क्रूर हास्य नाच उठा।

'अच्छा, मैं अपना ब्रह्मास्त्र तो भूल ही गई।' कहकर मीनल उठ खड़ी हुई और भीतर गई। उसके पूजा घर के पीछे एक कमरा था जिसके बंद द्वार को उसने पीटा। किसी का पदचाप सुनाई दिया। अर्गली खुली और मीनलदेवी भीतर गई।

१५

अर्गली खोलने वाली तीस वर्षीया स्त्री थी। उसका श्वेत वस्त्र, उसके क्षीण और विशाल चेहरे का रंग, स्थिर और भावहीन पड़ गई बड़ी-बड़ी आँखें, ऐसा प्रदर्शित करती थीं मानो वह एक चलता-फिरता शव हो। फिर भी श्वेत वस्त्र के भीतर, अत्यन्त दुर्बलता के कारण निकली हड्डियों की शववत भावहीनता में भी अद्भुत लालित्य था। चाल में, आँखों की गढ़न में, अंगों के गठन में एक विचित्र मोहकता थी। ऐसा लगता कि मानुषी छवि, दैवी आकाश-तत्व से बनी हुई है। दर्शक के मन में संशय उत्पन्न हो जाता कि यह जीवित है या प्रेतलोक में भूल से जाकर लौटी हुई देवांगना है ? यदि उसमें क्षीणता तथा भावहीनता न होती तो यह रमणी कैसी लगती ? किंतु दैव-दुर्विपाक से बहुत थोड़े लोग ही उसे देख पाते।

थोड़ा हँसते हुए मीनल ने पूछा—कैसी हो हंसा ?

हंसा के वृहद् लोचन भावहीन स्थिरता से मीनल की ओर देख रहे थे। वह पागल जैसी लग रही थी।

'बोलती क्यों नहीं ? मुझपर बहुत क्रुद्ध हो क्या ?'

'कोई काम है क्या ?'

स्वर कभी मधुर रहा होगा; किंतु इस समय सदैव मौन रहने से बोलते समय आवाज कठिनता से निकलती थी।

'काम ? काम हो तभी आऊँ ?'

कठोरता से हँसकर हंसा बोली—नहीं तो कोई क्यों मेरे पास आयेगा ? इतने वर्षों तक तो किसी ने मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा।

'हंसा ! एक खुशखबरी है। तुम जल्दी ही मुक्त होगी।'

तिरस्कार से हंसा बोली—मुझसे कोई मतलब निकालना होगा।

'मुझे तुम इतनी स्वार्थी समझती हो ? यह तुम्हारी भूल है।'

'स्वार्थी ! क्यों छेड़ती हो ? इसमें कोई सार नहीं है। कभी अपने साथ मेरे भाई को तो लाई होती ?'

कटुता से मीनलदेवी बोलीं—तुम्हारा भाई तो जाता रहा, वह भी मुझसे बिगड़ गया।

हंसा का भावहीन चेहरा अधिक कठोर हो गया। वह बोली—इसमें नवीनता ही क्या है ? मैं पहले से ही जानती थी। तुम आई और मेरे सहोदर मुंजाल ने, जो क्षण-मात्र के लिए अपनी आँख से ओझल नहीं करता था, मुझे भुला दिया। मुझे इस प्रकार सड़ने दिया और चला गया। तुमने उसे छीन लिया, वह भी तुम्हारे स्वार्थ से ऊब गया होगा।

'तुम मुझे बहुत ही नीच समझती हो ? मैंने तो तुम्हें मुंजाल के चंगुल से निकाल कर मोक्ष का मार्ग दिखाया और तुम्हीं ऐसा कह रही हो ?'

थक गई हो इस प्रकार हंसा बोली—किसका मोक्ष ? इस प्रकार तीव्र मनोव्यथा, संताप सहन करते हुए, विवश होकर जिनराज प्रभु की भक्ति करने से मोक्ष मिलेगा ? एकांत में विचार करने का मुझे

पर्याप्त समय मिला है, मीनलदेवी ! तुम्हारे स्वार्थ के कारण ही आज मैं यहाँ सड़ रही हूँ । प्रभु मौत भी नहीं देता कि इस कष्ट से छुटकारा मिल जाय ।

दुर्बलता के कारण हंसा की आँखों से आँसू भी न निकले !

'हंसा ! हंसा ! इस प्रकार क्यों बोल रही हो ? अभी तो तुम जैसी परमार्थ-परायणा स्त्री को न जाने क्या-क्या करना है ?'

'परमार्थ-परायणा ! किसने कहा ?'

'मैं, कहती हूँ ।'

हंसा पुनः कठोरता-पूर्ण कृत्रिमता से हँसी ।

'हम सब की अपेक्षा तुम्हारे में दैवी अंश अधिक है ।' कहकर मृदुता से मीनलदेवी ने हंसा के कंधे पर हाथ रखा ।

अग्निस्पर्श के समान चमक कर हंसा दूर जा खड़ी हुई और बोली—रानी ! व्यर्थ क्यों खुशामद करती हो ? अपना काम निकालने के लिए व्यर्थ स्तुति कर रही हो ?

'स्तुति कर रही हूँ ?' मानो झूठा आरोप किया गया हो ऐसा ढोंग करते हुए मीनल ने पूछा । उसका मस्तिष्क इस निराश स्त्री को वश में करने का उपाय सोच रहा था ।

'और क्या ? मेरे में ईश्वरी अंश है, इसीसे पंद्रह वर्षों से मेरे भाई ने मुझे जीवित जलाया ! और इसी ईश्वरीय अंश के कारण ही आज पंद्रह वर्षों का समय व्यतीत हो गया पर किसी के मुख से प्रेमपूर्ण मीठा शब्द नहीं सुना ।'

उसका स्वर तीव्र हो गया, नेत्रों में कुछ तेज आने लगा, प्रबल भावना के जोर से उसके अधर और हाथ थर-थर काँपने लगे ।

आश्वासन देती हुई मीनल बोली—इस विलाप से लाभ ? थोड़ा धैर्य रखो ।

काँपती हुई आवाज से हंसा ने कहा—धैर्य ! धैर्य ! कैसी क्रूरतापूर्वक

कह रही हो ? क्या तनिक भी लज्जा नहीं आती ? तुम स्वतंत्र हो, पति था, पुत्र है, मेरे भैया जैसा तुम्हारा दास है। तुमने कितना धैर्य रखा ? धैर्य ! धैर्य ! पंद्रह वर्ष के कोमल वय में प्रभु जैसा पति यदि तुमसे छीन लिया गया होता, फूल जैसा सुकुमार तड़पता हुआ बालक तुम्हारी गोद से खो गया होता, अकेले बिना किसी के सहारे हृदय को टूक-टूक कर देनेवाले क्रंदन करते हुए दिन व्यतीत किया होता तब तुम्हें पता चलता कि धैर्य कैसे धारण किया जाता है ?

रानी ने दाँत तले उँगली दबा ली। कुछ नम्रता से कहा—बहन ! बीती सो बीती। अब तो मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ।

मीनल के शांत हृदय में दूसरों के लिए अधिक स्थान न था।

पुनः तिरस्कार पूर्ण आवाज में हंसा बोली—हाँ, यह कहो ! मैं पहले से ही जानती थी कि क्यों तुम मुझे पुरानी बातों का स्मरण दिलाकर चंग पर चढ़ा रही हो। बोलो, अब तुम्हारा मतलब क्या है ? तुम मुझसे चाहती क्या हो ?

'बहन ! तुम जरा शांत हो। देखो ! राजा गये, जयदेव अभी बालक हैं और सोलंकियों का राज्य जाना चाहता है। इसकी रक्षा करना अब तुम्हारे हाथ है।'

'मेरे हाथ ! वह कैसे ?'

'तुम्हारा भाई क्रुद्ध होकर मधुपुर चला गया है और देवप्रसाद—!'

हंसा चौंक पड़ी, उसके शव सदृश सफेद गाल के पतले चमड़े में कुछ लाली आती हुई-सी जान पड़ी, उसका शरीर और भी अधिक काँपने लगा।

चिंतातुर आवाज में रानी आगे बोली—देवप्रसाद मेरल की सेना लेकर पाटन को ध्वंस करने के लिए आ रहे हैं, कल प्रातः काल यहाँ पहुँच जायेंगे। इस राज्य का—गुजरात का तब क्या होगा ?

'आयेंगे ? भले ही आवें रानी ! तुम्हारे दिन पूरे हो गये हैं।'

'तुम भी ऐसा कहती हो ? जिस राज्य के नगरसेठ की तुम बहन हो, जिसकी छाया के नीचे तुम्हारे पूर्वजों ने सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया, उस राज्य के लिए तुम ऐसा कहती हो ?'

'जिस राज्य ने मेरे मंडलेश्वर को इतना-इतना दुःख दिया, जिस राज्य ने उनकी पत्नी को बंदी बनाया, उसके पुत्र को रुला-रुला कर मार डाला, उस राज्य को इससे अच्छा उपहार क्या मिल सकता है ? मैं उनके साथ हो जाऊँ तब तुम्हें पता चले; सौ दिन सास का तो एक दिन पतोहू का भी आता है।'

'हंसा ! हंसा बहन ! जिसने तुम्हें इतने दिनों तक सड़ने दिया, जिसने तुम्हारी कुछ खोज खबर तक नहीं ली और आज कितनी ही स्त्रियों के साथ भोग-विलास कर रहा है उसके प्रति तुम्हारे मन में यह निश्चल प्रेम बना हुआ है ?'

हंसा तनकर खड़ी हो गई, उसकी सतेज होने वाली निस्तेज आँखें कुछ बड़ी हो गई। वह बोली—रानी ! सती को तो एक स्वामी होता है, वह भी एक अवतार में ही नहीं बल्कि चौरासी लाख योनि में। कैसे जान लिया कि उन्होंने सड़ने दिया ? कैसे जाना कि खोज खबर नहीं की ? यह यदि सत्य हो भी तो क्या ? वे स्वामी हैं। मैं तो उनके चरणों की रज मात्र हूँ।

इस प्रकार बातचीत से कोई अर्थ सिद्ध होते न देख कर बात बदलते हुए मीनल बोली —हाँ, पर सेना लेकर वह यहाँ आ रहे हैं।

विरक्ति से हंसा ने कहा —आवें, तब मैं क्या करूँ ?

'तुम जाओ और उन्हें किसी प्रकार यहाँ आने से रोको।

भयंकर भ्रूभंग कर हंसा ने पूछा—क्यों करूँ ? मुझे क्या पड़ी है ?

'हंसा ! तुम्हीं जब ऐसा कहोगी तो क्या होगा ? राज्य के लिए क्या तुम इतनी सेवा भी नहीं करोगी ?'

'बार-बार मुझसे क्यों कहलाती हो ? राज्य ने मेरे लिए क्या

किया ! पति के पास से चोरी कराके, निरपराध बंदीगृह में बंद कर रखा। अब मेरा तुम्हारे राज्य से क्या संबंध ?'

'ऐसा ही यदि प्रत्येक व्यक्ति कहने लगे तब राज्य का क्या हो ?'

'थोड़े व्यक्तियों के लाभार्थ यदि राज्य हो तब दूसरों से मतलब ?'

'धनपाल नगरसेठ की पुत्री के मुँह को क्या यह शोभा देता है ?'

'न जाने कौन-सा अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए तुमने मुझे बंदी बनाया है, क्या यह तुम्हें शोभा देता है ? इस समय तुम अपने खुशामदियों के पास जाओ जिन्हें खिला-पिला कर तुमने सुख दिया हो। मैं तो अपने मंडलेश्वर की हूँ, जिनकी इच्छा ही मेरे लिए सब कुछ है, समझीं !'

ब्रह्मास्त्र व्यर्थ हो गया, भीतर ही भीतर क्रोध से मीनल जली जा रही थी; तब भी दीनता से बोली—हंसा मेरे लिए क्या इतना भी नहीं कर सकती ? इतना कर दोगी तो लोग तुझे कितना आशीर्वाद देंगे ! पाटन निवासी तुम्हारी देवी समान पूजा करेंगे। तुम्हारी कीर्ति अमर होगी, तुम संपूर्ण गुजरात की जनेता बन जाओगी।

कठोरता से हँसते हुए हंसा बोली—रानी ! रानी ! हंसा ने एकांत में बहुत कुछ सीखा है। अब तुमसे धोखा नहीं खा सकती ! मेरा मंडलेश्वर आयेगा तो लोगों को क्या ? तुम्हारे बदले में लोगों को प्रेम-पूर्ण हृदय वाला वीर नर मिलेगा; पाटन निवासी हार लेकर उसका स्वागत करने के लिए आगे जायँगे। यह क्यों नहीं कहती कि तुम्हारी सत्ता, तुम्हारा आनंद-विलास जाता रहेगा !

रानी चकित हो बोली—क्या तुम जानती नहीं कि अपना देश छोड़ गुजरात के लिए ही महाराज से विवाह किया।

'यह क्यों नहीं कहती हो कि चंद्रपुर में किसी सामंत के साथ ब्याह होता ! इसके विपरीत गुर्जर देश की रानी बनकर एक-चक्र राज्य कर रही हो !'

'हंसा ! तुम बहुत बढ़-बढ़ कर बातें कर रही हो !'

हंसा की चाटुक्ति करना रानी को बहुत बुरा लग रहा था।

'क्यों न करूँ ? जितना तुमसे हो सका तुमने कष्ट दिया, तब क्यों न बोलूँ ? मेरे बाप-दादा के परिश्रम से तुम्हारा राज्य खड़ा हुआ है, मेरे पति के बाहुबल से तुम्हारे आदेशों का पालन होता है; मेरे भ्राता की बुद्धि से तुम्हारी सत्ता टिकी हुई है। तब मैं क्यों न बोलूँ ? इन सबके परिश्रम का मुफ्त में फल चखने वाली ! तुम क्या मुँह लेकर मुझसे बातें करती हो ?'

मीनल की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। बहुत सी बातें जो कोई भी कहने का साहस नहीं कर सकता, जो शायद ही कभी उसके स्वार्थी हृदय में स्फुरित होतीं, उन्हें हंसा ने आज कठोरतम शब्दों में स्पष्टरूप से कह डाला। दृष्टि के समक्ष अपनी स्वार्थपरता खड़ी हो गई। इस कुटुंब के उपकार के बदले उसको कितना दुःख दिया, इसका उसे ख्याल आया। साथ ही यह भी विचार आया कि हंसा उसका कहना मानने वाली नहीं। उसे कोई दूसरा मार्ग नहीं दिखाई पड़ा। क्या उपाय करे? प्रत्येक क्षण मंडलेश्वर मरण की ओर बढ़ता जा रहा होगा। किसी प्रकार इस दुःखपूर्ण विचार को उसने दूर किया। इस विपत्ति से छुटकारा पाने की ओर ही उसकी दृष्टि थी। उसने लालच देते हुए कहा—हंसा ! क्या अपने मंडलेश्वर के साथ रहने की तुम्हारी इच्छा नहीं है ?

'है क्यों नहीं ? इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में। किन्तु इस समय उसके पास तुम क्यों भेज रही हो, यह नहीं समझ पड़ता; जब तक कुछ समझूँ नहीं तब तक मैं कुछ करने-धरने वाली नहीं। तुम्हारी भलमनसाहत का बहुत फल चख चुकी।'

इतना कहते-कहते उसका श्वास रुंधने लगा, आँखों के नीचे

अँधेरा छा गया; उसने अपना सिर पकड़ लया। उसके अशक्त शरीर के लिए इतने बोलने का परिश्रम भी अधिक था।

इतने में नीचे राजगढ़ के पीछे के चौक में भयंकर कोलाहल सुन पड़ा। मीनल के लिए यह अपरिचित था। जिस कमरे में वह थी उसकी सब खिड़कियाँ बंद थीं; केवल लकड़ियों की दो जाली नीचे के चौक में पड़ती थी। उस जाली से मीनल ने नीचे देखा। चौक में चबूतरे पर जयदेव नंगे सिर खड़ा था, उसके हाथ से रुधिर बह रहा था। एक सैनिक उसमें पट्टी बाँधने की तैयारी कर रहा था। वह घाव तीर का मालूम पड़ता था। उसकी छोटी तलवार पैर के पास पड़ी थी। सामने दानेश्वर कर्ण का भव्य सौंदर्य एवं वीरता प्रदर्शित करता हुआ एक युवक हाथ में नंगी तलवार लिये हुए खड़ा था। उसकी आँख में उग्रता, चेहरे पर सत्ता थी। दस-पंद्रह सैनिक उसे पकड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। अकेले, कुछ-कुछ अभिमन्यु का स्मरण दिलाते हुए, वह सभी को दूर रखे हुए था। रानी ने उसे तुरंत पहचान लिया। हंसा के मुख की गढ़न से युवक का चेहरा बिलकुल मिल रहा था। यह त्रिभुवनपाल था।

त्रिभुवन को देखते ही रानी की भृकुटी चढ़ गई। उसके मनमें विद्युत के समान एक विचार दौड़ गया। चिंतातुर हृदय में एक हर्षांकुर फूटा। वर्तमान भयंकर विडंबना से छुटकारा पाने के लिए तत्पर उसकी स्वार्थ बुद्धि मार्ग शोध निकालने में समर्थ हुई। अच्छे विचार दूर हो गये, उनका स्थान राक्षसी हृदय की शक्ति ने ले लिया। वह हंसा की ओर घूमी।

———

१६

पाठक ! अब देखना चाहिये कि त्रिभुवनपाल वहाँ पहुँचा कैसे ?

त्रिभुवनपाल मोंढरी दरवाजा के पास, अपने रिसाला के साथ मंडलेश्वर की प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा था। वे राजगढ़ वापस क्यों गये, मुंजाल के साथ क्या बातें हुईं, यह सब जानने के लिए वह उत्कंठित हो रहा था। पर लड़कपन से ही आदेशानुसार चलने का स्वभाव पड़ जाने से, दरवाजा बंद होने तक वह वहाँ खड़ा रहा। पश्चात् धीरे धीरे वह राजगढ़ की ओर बढ़ा। चौक में हुल्लड़ मचा हुआ था। दूकानें बंद करना या नहीं, इसपर व्यापारीगण एकत्र हो विचार कर रहे थे। कितने तो जोर-जोर से राज्य की स्थिति के संबंध में बातें कर रहे थे। दो-एक व्यक्तियों से पूछ-ताछ करने पर त्रिभुवन को पता चला कि मंडलेश्वर राजगढ़ से वापस आये और कूदकर कोट को घोड़े सहित पार कर गये। घोड़ा दौड़ाकर तुरंत वह वहाँ गया। उस स्थान पर चार-पांच सौ व्यक्ति एकत्र होकर आपस में बातें कर रहे थे और जिस स्थान को पार कर देवप्रसाद बाहर गये थे उसे एक दूसरे को दिखा रहे थे। त्रिभुवन को देख सभी लोग शांत पड़ गये और उँगली से उसकी ओर संकेत करने लगे। त्रिभुवन चाँपानेरी दरवाजा गया और द्वारपाल को दरवाजा खोलने के लिए कहा। द्वारपाल ने अस्वीकार कर दिया। निराश हो त्रिभुवन ने कोट की ऊंचाई एवं अपने घोड़े की ओर देखा और एक निःश्वास ली। पाटन का कोट तो उसका पिता ही फांद सकता था। वह वहाँ से तुरन्त राजगढ़ आया और पिछला द्वार खुला देख भीतर गया। पहरे वालों ने उसे रोका।

'मीनल माँ से मैं मिलना चाहता हूं, मुझे पहचानते नहीं ? मैं

मंडलेश्वर का पुत्र त्रिभुवनपाल हूँ। जाओ मैं यहां खड़ा हूँ, कोई जाकर पूछ आओ।'

एक पहरे वाला मीनल देवी से संदेशा कहने गया। त्रिभुवन घोड़े पर से उतर कर वहाँ खड़ा हो गया। एक ही वस्तु की ओर उसकी दृष्टि थी, बाहर जाकर अपने पिता से मिलना। यह बल से होना असंभव था अतः उसने कल से करने का निश्चय किया।

आनंदसूरि ने आकर कहा—माताजी नहीं मिल सकतीं। क्या काम है ?

'आपसे मतलब ? क्यों नहीं मिलेंगी ? मुझे बहुत आवश्यक काम है, मेरे लिए ठहरना कठिन है।'

'मिलना है तो ठहरना पड़ेगा।' कहकर यति चला गया।

अधीरता से व्याकुल त्रिभुवन वहाँ खड़ा रहा। ऊपर जाने की उसकी इच्छा हुई, प्रत्येक क्षण उसके लिए बहुमूल्य था।

इतने में सामने बरामदे में उसने जयदेव को जाते हुए देखा। त्रिभुवन उस ओर दौड़ पड़ा।

'चाचा—जयदेव कुमार—महाराज।'

गौरव से चलता हुआ बाल गुर्जरेश रुक कर खड़ा हो गया। जरा भृकुटी चढ़ाकर उसने त्रिभुवन की ओर देखा।

'चाचा ! मुझे पाटन से बाहर जाने की आज्ञा दीजिये। द्वार बंद हो गये हैं और चाची काम में हैं। किसी से मिलती भी नहीं।'

इतने वर्षों तक पाटन के बाहर जीवन-यापन करने से जयदेव त्रिभुवन के संसर्ग में बहुत काम आया था; उसके संबंध में उसकी जानकारी भी बहुत कम थी। परन्तु दो दिन पूर्व सामल भाट के यहाँ मीनल माँ का साहस पूछते हुए इसे देखा था। इसके सिवा यह कौन है तथा चाचा पुकारने का कैसे साहस करता है, यह उसे पता न था।

सत्तादर्शक स्वर में जयदेव ने पूछा—तुम कौन हो ?

'मुझे पहचानते नहीं ? मैं मंडलेश्वर का पुत्र त्रिभुवनपाल हूँ। जयदेव ! जयदेव ! पिताजी के साथ मुझे जाना है। मुझे फाटक के बाहर जाने देने की आज्ञा दीजिये।

जयदेव ने अपनी माँ की शिक्षा ग्रहण की थी। पर मीनल जितनी साहसी थीं उतना ही यह भीतर से डरपोक था। त्रिभुवन का रूप, और शौर्य देख कर उसमें द्वेष-बुद्धि का प्रादुर्भाव हुआ; देवप्रसाद के प्रति जो विष मीनल में था उसका कुछ अंश उसमें आ गया; सामलभाट के समक्ष कहे हुए शब्द उसे स्मरण हो आये; वह लाड़-प्यार से उद्दण्ड हो गया था; खुशामद ने उसे सत्ता का शौकीन बना दिया था।

वह तिरस्कार से बोला—तुम परसों कह रहे थे कि मीनल देवी का क्या साहस है ? अब चखो मजा !

'जयदेव ! क्या यह आपको शोभा देता है ? मैं भी भीमदेव के कुल का हूँ और याचना करता हूँ।'

गुजरात के बालराज ने हँसी उड़ाते हुए कहा—तुम्हारा बाप तो योद्धाओं का सिरताज कहा जाता है और तुम भिक्षा माँगते हो ?

त्रिभुवन की आँखें कुछ कठोर हो गईं। उसने अपना मन कठिनता से शांत रखते हुए कहा—महाराज ! बड़े लोगों की बात बड़े लोग जानें, मुझे तो केवल पाटन के बाहर जाना है।

अविचारी कुँवर ने हँसते हुए पूछा—क्यों, वैर-साधन करना है क्या ?

गौरव से त्रिभुवन बोला—जयदेव महाराज ! सोलंकियों को वैर-साधन करने में देर है। मैं प्रार्थना कर रहा हूँ क्योंकि आप राजा हैं और मैं सामंत हूँ। पर इससे यह मत ख्याल कीजिये कि मैं आपकी कटूक्ति सहन करने के लिए आया हूँ।

सैनिकों के साथ वह लड़ रहा है। हंसा! अपने पुत्र की जान बचानी है? अभी ये सैनिक उसका काम पूरा कर देंगे। देखो, दो-एक घाव भी उसे लग गये। बचानी है? तो वचन दो कि तुम मंडलेश्वर के पास जाकर उन्हें पाटन पर चढ़ाई करने से रोकोगी। दो दिन भी रोक रखोगी तो बहुत है। बोलो, क्या कहती हो?'

हंसा की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वह घबड़ा गई—'मेरा बेटा! मेरा देव जैसा त्रिभुवन! पंद्रह वर्ष के बाद मिला भी तो मृत्यु देखने के लिए! मीनलदेवी! इसे बचाओ, बचाओ!'

क्रूरता से रानी बोली—क्यों? वचन दो, समय नहीं है, देखो गया।

छातीपर हाथ दबाते हुए हंसा बोली—कैसा केसरी के समान लड़ रहा है! मेरा त्रिभुवन!

'तुम्हारा त्रिभुवन यह गया। दो-चार पल में जमीन सूँघने लगेगा। देखो और लोग आ गये। मान जाओ, वचन दो।'

हंसा ने पागल के समान इधर-उधर देखा। उसकी आँखें अश्रुपूर्ण थीं। उछलती हुई छाती को उसने हाथ से दबा रखा। पुत्र की ओर देखा; उसके सुंदर मुखारविंद को वीरता की सुनहली किरण से प्रकाशित देखा। वह सिंह के समान सैनिकों पर आक्रमण कर रहा था। जिससे अपनी रक्षा के लिए सैनिकों को भी बाध्य होकर शस्त्र का प्रयोग करना पड़ता था।

'बोलो, बोलो हंसा! इसका बचना कठिन है।'

'राक्षसी! चाण्डालिनी! प्राण ले-ले; पर मेरे पुत्र को बचा। मेरे कुल का संहार करने के लिए ही तू यहाँ आई है।'

'वचन? अपने पति की शपथ?'

'हाँ हाँ—अरे-रे! देखो उस बिचारे को! हाय-हाय! रानी बचाओ।' इतना कह वह चीख उठी।

वचन लेने के पश्चात् रानी दौड़कर आगे के कमरे में पहुँची।

उसकी खिड़कियाँ खुली थीं। उसमें से नीचे देखकर उसने चिल्ला कर कहा—कल्याण! कल्याण! शांति, ठहरो, शांति! मीनलदेवी की ध्वनि गूँज उठी। कोलाहल में भी यह ध्वनि सबने सुनी। सबने रानी को देखा और रुक गये। त्रिभुवन को काफी आघात लगा था। उसकी शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही थी। आँखों के नीचे अँधेरा छा रहा था। केवल आवेशवश वह लड़ रहा था। उसने भी तलवार रोक दी और क्षणभर के लिए खड़ा हो गया।

आँखों के सामने पर्दा-सा पड़ता हुआ उसे मालूम पड़ा। एक स्त्री आई। उसे पहचान कर वह बोला—मीनल काकी!

वह इतना ही कह पाया, उसका गला सूख गया था।

उसके पीछे दूसरी स्त्री आई, त्रिभुवन ने उसे बहुत वर्षों से देखा नहीं था। वह परिचित-सी जान पड़ी। वह इतनी दुबली-पतली क्यों थी? वह जीवित थी या मृत। यह विचार कर ही रहा था कि उसे सब वस्तु घूमती हुई मालूम पड़ने लगी। वह स्त्री दौड़कर त्रिभुवन से लिपट गई।

त्रिभुवन का उन्माद उतरने लगा था। अंग-अंग टूट रहा था। यह स्त्री कौन है? उसे कुछ शांति मिली। इस नवागंतुका स्त्री ने उसका चुंबन किया और उसका सिर ऊपर उठाया।

त्रिभुवन को हँसी आई। मुझे तो अभी लड़ना है फिर इस लाड़-प्यार से मतलब? इतने ही में एक दूसरी युवती आ पहुँची। यह कौन है? पहचानता था, कहाँ देखा था? दूसरी स्त्री की ओर वह घूमा। वह उसका हाथ अपने कंधे पर रख कर उसे ले जा रही थी। त्रिभुवन सोलंकी को भी स्त्री की सहायता की आवश्यकता हो? त्रिभुवन हँसा। ये सब चल फिर क्यों रहे हैं? अँधेरा क्यों लग रहा है। यह स्त्री कह क्या रही है—'मेरा लाल!'

त्रिभुवन पुनः हँसा। उसकी माँ तो मर गई है। मुंजाल मामा ने

मार डाला है। 'आप कौन हैं ?' त्रिभुवन ने पूछने का प्रयत्न किया।

'मैं—हंसा—' जैसा कुछ सुनाई दिया। त्रिभुवन के मस्तिष्क में अंधकार बढ़ने लगा। इतना अंधेरा क्यों है ? उसने नवागंतुक स्त्री का सहारा लिया—उसे जमीन खिसकती हुई-सी जान पड़ी—खिसक गई—पूर्णरूप से अंधकार छा गया।

* * *

त्रिभुवन ने आँखें खोलीं तो देखा कि वह एक कमरे में चारपाई पर पड़ा हुआ है। उसके दुःखित हृदय पर हाथ रखे हुए वही नवीन पर परिचित-सी स्त्री बैठी थी। त्रिभुवन को जान पड़ा कि उसने इस स्त्री को स्वप्न में देखा है। धीमे स्वर में त्रिभुवन ने पुकारा—माँ !

यह सुन स्त्री चौंक उठी। उसने त्रिभुवन की ओर देखा। उसके नेत्रों से सतत अश्रुधारा बह रही थी। उसने पुनः त्रिभुवन को कलेजे से लगा लिया। त्रिभुवन पुनः मूर्च्छित हो गया।

पीछे मीनलदेवी आकर खड़ी थीं। उसने निश्चल आवाज में कहा—हंसा ! इस प्रकार तो तुम यहीं पड़ी रहोगी। समय बीता जा रहा है। अब तुम जाओ।

'असंख्य धन पास में भरा है; तथापि मुझ निर्धन की कौड़ी भी क्षणभर के लिए पास में रहने नहीं दे सकतीं ?' हंसा ने दीनता से कहा।

कठोर शांति के साथ मीनलदेवी हंसा की ओर देखती रहीं। वह बोली—यह भला कैसे संभव है ? मंडलेश्वर मेरल पहुँच गये होंगे; सब प्रबंध कर दिया है। यति आनंदसूरि तुम्हारे साथ जायँगे। चलो, उठो।

'क्षणभर, रानी ! एक क्षण !' कहकर हंसा ने रानी की ओर ऐसी करुणापूर्ण दीनता से देखा कि मीनल का कठोर हृदय भी पिघल गया।

'अच्छी बात है, मैं पालकी तैयार कराती हूँ। तुम तैयार हो।' कहकर ईश्वरी सत्ता की अचल भावहीनता से मीनलदेवी चली गईं।

हंसा के मस्तिष्क की स्थिति की कल्पना करना कठिन है। इन पंद्रह वर्षों के बीच उसके जीवन का हर एक रसबिन्दु सूख गया था। पति एवं पुत्र से बिछुड़ी, कोमल हृदय वाली हंसा ने एकांत में अश्रुपात कर अपने बहुमूल्य मनोरथों पर तिलांजलि दे दी थी। जो स्वतंत्र हैं, सगे संबंधी एवं स्नेहियों के साथ सदैव घूमते-फिरते हैं, वे कारागृह के एकांत वास की भयंकरता का अनुमान कर ही नहीं सकते। आज पल भर में पति से मिलने की आशा उठ खड़ी हुई। पहले मृत मन ने उसे स्वीकार नहीं किया; दूसरे ही क्षण जिस पुत्र को उसने मृत समझ रखा था उसकी रक्षा के लिए पति से मिलने की बात को अस्वीकार करके भी स्वीकार कर लिया। हंसा की विचार करने की शक्ति जाती रही। पुत्र को देखा; उसका रूप, शौर्य देख हृदय ठंढा किया; उसका हृदय किसी भी प्रकार उसे छोड़ने को राजी न था। हंसा दूसरे के आधीन होकर रहने की स्वभाव वाली थी; कोई कठोर प्रसंग आ पड़ने पर कोमलता से सिर नीचा कर सब कुछ सहन कर लिया करती तथापि इस समय मीनल के वशीभूत होना असह्य प्रतीत हुआ। त्रिभुवन मूर्च्छित हो गया था। उसका मुख कुम्हला गया था। इस दशा में उसे छोड़ जाना? बारंबार उसने पुत्र का मुख चूमा।

पीछे एक परछाईं पड़ी। सहसा चौंक कर सिर ऊपर उठाया तो सामने हंसा को पंद्रह सोलह वर्ष की एक बाला दीख पड़ी।

बाला ने पूछा --क्या आप त्रिभुवन की माँ हैं?

'हाँ बेटी! तुम कौन हो?'

'मैं मीलनदेवी की भतीजी होती हूँ।'

'अच्छा!' कहकर हंसा जरा काँप उठी और त्रिभुवन की ओर देखा।

त्योरी चढ़ाकर मीनल बोली—बहुत बोलने लगी है, क्यों ?

प्रसन्न ने देखा कि दृढ़ता दिखाये बिना काम नहीं चलेगा। अतः वह बोली—जी नहीं, जब तक ये अच्छे नहीं होंगे तब तक मैं यहीं रहूँगी।

सच्ची बात का कुछ संदेह होने से मीनल ने पूछा—इसके साथ तेरा क्या सम्बन्ध है ?

कुछ अधिक साहस कर प्रसन्न बोली—सब कुछ है, यही तो मेरे सिरमौर हैं।

रानी ने उग्रता से पूछा—ऐसा ? मालवा नहीं रुचा जो इसपर मोहित हो गई ?

'बूआजी ! क्यों अधिक छेड़ती हैं ? मैं नहीं चाहती आपका मालवा।'

'अर्थात् मेरी सब योजनाओं पर तू पानी फेरना चाहती है, क्यों ? छोकरी ! तेरी जैसी को सीधा करने में मुझे जरा भी देर नहीं लगेगी। समझती है ! संध्या समय के पूर्व तैयार हो जा; नहीं होगी तो तेरे साथ मुझे जबरदस्ती करनी पड़ेगी। अच्छी तरह सुन ले ! समझी।'

कहकर क्रोध से पैर पटकती हुई रानी वहाँ से चली गई।

प्रसन्न मीनल देवी से बहुत डरती थी। उसे नहीं सूझा कि वह क्या करे। उसने त्रिभुवन को देख कर सोचा कि इन्हें इस स्थिति में छोड़कर कैसे जाऊँ ? पर यदि बूआजी ने दृढ़ निश्चय कर लिया है तो वह बलपूर्वक भेज देंगी, इसका उसे पूर्ण विश्वास था। वह उठी और शीघ्रता से ऊपर जाकर सामल भाट से मिली और उससे सब समाचार कह उसने नीचे आकर त्रिभुवन के पास बैठने के लिए कहा। यह वृद्ध ने स्वीकार तो किया, पर उसने कहा—बेटी ! आँखों के बिना मैं क्या करूँगा ? किसीको मेरे साथ कर दो।

'किसे बुलाऊँ ? अच्छा, मात्रा के पति को बुला दूँ ?'

'कौन, वाचस्पति ? ठीक तो है। मुझे नीचे पहुँचा कर पंडित जी से कह आ।'

काँपते हुए स्वर में प्रसन्न बोली—भाट जी ! मेरा चाहे जो हो, इनकी सेवा ठीक से करियेगा।

'इतना घबड़ाती क्यों है ? कल तक त्रिभुवन ठीक हो जायगा; मैं भी छोटा-मोटा वैद्य हूँ। देखो उस आलमारी में एक डिब्बा है उसे निकाल लाओ।'

प्रसन्न ने डिब्बा लाकर दे दिया। उसे लेकर सामल भाट प्रसन्न के साथ नीचे गये। उन्हें पहुँचा कर प्रसन्न वाचस्पति को बुलाने गई।

वाचस्पति एकांत में बैठा हुआ किसी संस्कृत पुस्तक का पाठ कर रहा था। प्रसन्न ने जाकर उसे उठाया और त्रिभुवन को सौंपा। पंडित दौड़ता हुआ त्रिभुवन के पास आया और भाट द्वारा बताया हुआ उपचार करने लगा।

संध्या तक प्रसन्न की किसी ने खोज खबर नहीं ली। संध्या समय एक नौकर भोजन करने के लिए उसे बुलाने आया। मीनल-देवी के कमरे में तीन व्यक्तियों के लिए भोजन परसा हुआ था। एक आसन पर जयदेव बैठा हुआ दाहिना हाथ घायल होने से मुँह बिचकाये हुए बाएँ हाथ से भोजन कर रहा था; दूसरे आसन पर रानी बैठने जा रही थी। क्रोध से तीसरी थाली प्रसन्न को दिखाते हुए मीनल ने कहा—खा ले !

इस छोटी-सी बात के लिए किसी को क्रुद्ध न करने के तात्पर्य से प्रसन्न भोजन करने बैठ गई। इतनी जल्दी भोजन करने का अर्थ प्रसन्न की समझ में नहीं आ रहा था। उसने थोड़ा-बहुत खाया। वह भी भारी मालूम पड़ा। प्यास अधिक थी। वह भोजन करके त्रिभुवन के पास चली गई। उसे कुछ बेचैनी सी लगी। आँखें दूर

रही थीं। कुछ देर तक उसने समझा की थकावट से आँखें झँप रही होंगी। वह झूले पर बैठी, फिर उसी पर लेट गई। अर्द्ध निद्रा में विचार आया कि कुछ नशा तो नहीं चढ़ा है ? पर शीघ्र ही वह गहरी नींद में सो गई।

१८

रात्रि हुई, राजगढ़ में सर्वत्र शांति थी। पर शहर में अभी भी चंद्र प्रकाश में कहीं-कहीं चबूतरे पर बैठे हुए लोग गप्प मार रहे थे। वातावरण में कुछ भय-सा प्रतीत होता था। किस बात का भय, यह कोई मुख से न कहता था तथापि घर का गहना रुपया ठिकाने रखकर लोग हथियार घिसने में लग गये थे।

मध्य रात्रि के समय राजगढ़ के पीछे तीन लंबे व्यक्ति खड़े थे। उनके मुँह पर आवरण था। थोड़ी ही दूर पर चार मजबूत घोड़े वृक्ष से बँधे हुए थे। ऐसा मालूम होता था कि तीनों व्यक्ति किसी की प्रतीक्षा कर रहे हों। थोड़ी देर में एक घोड़े पर सवार चौथा व्यक्ति आया। वह शस्त्र से सुसज्जित था। दोनों आँखों को छोड़ उसका भी पूरा चेहरा ढका हुआ था। वह घोड़े पर से उतर कर, जहाँ पर ये तीनों व्यक्ति खड़े थे, वहाँ आया। उन तीनोंने उसे आतुरता से देखा; नवागंतुक जरा हँसा।

'सब ठीक हो गया, हमारे पहुँचते ही तुरंत द्वार खुल जायगा।' नवागंतुक ने कहा।

'तब चलिये महाराज ! व्यर्थ विलंब क्यों किया जाय ?'

'ठीक है चलो। रायमल जी ! आप घोड़े के पास रहिये, हम तीनों जाते हैं।'

'ठीक, पर मुझे भी साथ ले चलते तो अधिक अच्छा होता।'

'अभी बहुत समय है, घबड़ाने की बात नहीं है।'

यह कह कर नवागंतुक वृक्षों की छाया में होकर राजगढ़ के कोट के पास गया और पास ही की एक खिड़की खोलने का उसने प्रयत्न किया।

वह बोला—रत्नसिंह कुछ गड़बड़ मालूम पड़ रहा है।

'क्या ?'

निराश स्वर में दाँत पीसते हुए वृद्ध बोला—यह खुली रखने के लिए कहा था किंतु यह तो बंद है।

'चलिये, लौट चलें।'

विकराल दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए वृद्ध ने कहा—क्यों ? यदि तुझे प्राण अत्यधिक प्यारा हो तो तू चला जा। या तो हम अपनी इच्छित वस्तु उठा कर ले जायँगे या जीवन अर्पण कर देंगे। पागल हो गया है क्या ? साहस के कार्य क्या इसी प्रकार आसानी से हो जायंगे ?

बेचारा रत्नसिंह लज्जित हो कर पीछे हट गया।

'तब करेंगे क्या ?' एक ने पूछा।

'इतना बड़ा राजगढ़ है। कोई खिड़की-दरवाजा तो खुला होगा ही।'

यह उत्तर दे वृद्ध ऊपर दृष्टि किये हुए घूमने लगा। बहुत देर तक कुछ दिखाई नहीं दिया। थोड़ी दूर आगे जाने पर रत्नसिंह ने वृद्ध का हाथ पकड़ कर एक बरामदे में से लटकता हुआ रस्सा दिखाया। तीन दिन पूर्व जिस रस्से द्वारा त्रिभुवन ऊपर गया था उसे राजा की मृत्यु की गड़बड़ी में प्रसन्न खोलना ही भूल गई थी। वृद्ध की आँखें हर्ष से नाच उठीं। उसने ऊपर देखा, सिर का फेंटा ठीक किया और छलांग मारकर रस्सा पकड़ लिया और सरसर चढ़कर वह बरामदे में पहुँच गया। उसके पास कुल्हाड़ी मौजूद थी जिससे उसने दरवाजा फाड़ कर

अलग कर दिया। चुपचाप तीनों व्यक्तियों ने भीतर प्रवेश किया और मीनलदेवी के निवास की ओर चल पड़े। संपूर्ण महल शांत था और ऐसा मालूम पड़ रहा था मानो सब लोग सो रहे हैं।

वृद्ध आगे इस प्रकार बढ़ता हुआ चला जा रहा था मानो उसे सब कुछ पहले से ही मालूम है। थोड़ी देर में रानी के शयनागार में लोग पहुँचे। बाहर एक दासी घोर निद्रा में पड़ी सो रही थी। द्वार आधा खुला हुआ था। वृद्ध ने उसे ढकेला। हर्ष के आवेश से उसका हृदय उछल रहा था। कमरे में पैर रखते ही पहला पलंग जयदेव कुमार का था। उस ओर बढ़ा; मच्छरदानी उठाते ही वह चौंक उठा। उसके भीतर कोई था ही नहीं! अंधकार में भी उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही हों ऐसा मालूम पड़ा। उसने अपने आस-पास देखा, सब शांत था। कुछ देर तक वह खड़ा रहा। उसे कमरे में विचित्र शांति जान पड़ी। धीरे से वह दूसरे पलंग के पास गया। कान लगा कर सुना, नीचे झुक कर देखा और तब उसने मच्छरदानी उठायी। उसमें भी कोई नहीं था! वृद्ध घूमा, दूसरे दोनों व्यक्ति खड़े थे। वृद्ध बोला—रत्ना! दोनों भाग गये।

'ऐं!'

'हाँ, मालूम होता है हमारी योजना खुल गई। अब यहाँ से भाग जाने के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है। चलो।'

धीरे से यह कहकर उसने दोनों को दरवाजे की ओर ढकेला; पर उन्होंने देखा कि दरवाजा बंद है। जोर से खींचने पर पता चला कि बाहर से बंद है। 'मर गये!' वह कुछ देर तक विचार में लीन खड़ा रहा। पीछे दोनों व्यक्तियों के हृदय की धड़कन उसे सुनाई पड़ रही थी। वह घूमकर तेजी से दूसरे द्वार की ओर गया। पर वह भी बाहर से बंद था।

'रत्ना! बेटा! फँस गये!'

'खिड़की से भाग नहीं सकते ?' रत्नसिंह ने सुझाव रखा।

'जिसने द्वार बंद किया उसने खिड़की को खुला छोड़ दिया होगा क्या ?' कहकर वृद्ध ने खिड़की खोली। कोट के बाहर खिड़कियाँ इतनी ऊँचाई पर पड़ती थीं कि वहाँ से भाग निकलना असंभव-सा था। दूसरी ओर की खिड़कियाँ बाहर चौक में पड़ती थीं। नीचे पाँच-सात प्रहरी नंगी तलवार लिए पहरा दे रहे थे। एक के हाथ में धनुष-बाण भी थे।

'महाराज ! चारों ओर से फँसे ! अब ?'

'देखा जायगा। संपूर्ण रात्रि विचार करने के लिए पड़ी है। कोई न कोई रास्ता निकल ही आयेगा। रत्ना ! ये सब द्वार भीतर से बंद तो कर दे।'

रत्ना ने आज्ञा पालन किया, कुछ देर तक कोई नहीं बोला।

'देखो, एक मार्ग है। इस झूले की डोर छत तक पहुँचती है। उसपर चढ़ कर कुछ खपरे काट कर अलग कर दी जायँ तो शायद निकलने का मार्ग मिल जाय।'

पर इस योजना को कार्य रूप में परिणत करने के पूर्व ही छत पर कुछ मनुष्यों के चलने का पदचाप स्पष्टतः सुनाई दिया जिसे सुनकर वृद्ध बोला—चलो, यह भी समाप्त हो गया।

दोनों व्यक्ति आगे बढ़े। रत्नसिंह ने पूछा—तब मदनपाल जी ! अब क्या करना है ?

बाहर की ज्योत्स्ना के आभास में भयानक दीखता हुआ मदनपाल बोला—मैं भी यही विचार कर रहा हूँ। यदि पकड़ गये तो मानलदेवी हाथी के पैर के नीचे कुचलवा देगी। अब दो ही रास्ता है।

दोनों बोल उठे—क्या ?

'एक तो यह कि खिड़की से कूदकर, नीचे जो लोग हैं उन्हें मारते हुए उस दरवाजे तक पहुँचा जाय। अथवा सबेरे जो पकड़ने आयें, उनका सामना करते हुए रास्ता बनाया जाय।'

'चाचा जी ! ये दोनों मृत्यु के मार्ग हैं। मैं एक अच्छा मार्ग बताता हूँ। कल प्रातःकाल पकड़े जाने पर मीनलदेवी के पैर पड़ क्षमा याचना करें। शायद हम बच जायँ। बहुत होगा तो हमसे हमारी जागीर छिन जायगी; पर इस प्रकार कहने से जान तो बच जायगी।'

'बच्चा ! मदनपाल चावडा झुकेगा ? पागल हुआ है ?'

'तब क्या इस कच्ची उमर में इस प्रकार हम जान दे दें ? आपका तो अंतिम चरण है।' रत्नसिंह से न रहा गया।

दाँत पीसते हुए वृद्ध बोला—तुम्हारी बातें बहुत सुन चुका। तुम्हारा रास्ता मुझे पसंद नहीं। अब तो केसरिया ही करना होगा। जरा भी इससे डिगे तो पहले तुम्हें ही साफ करूँगा, याद रखना।

दोनों युवक कुछ भयभीत हो गये; वृद्ध के नेत्रों में भयंकर दृढ़ता दिखाई पड़ रही थी। उन्हें निश्चय हो गया कि कुछ बोलने से वृद्ध उन्हें अवश्य ही मार डालेगा। अतः वे चुप हो गये।

खोखली आवाज में मदनपाल बड़बड़ा रहा था—मैं मीनलदेवी से क्षमा माँगू ? मैं महाराज भीमदेव का साला। यह होती कौन है ? ठीक, अब यही रास्ता है। कल मुझे अपना हाथ दिखाना है, और रानी से भी कहूँगा कि देख लो !

मदनपाल ने घूमकर देखा तो दोनों निद्रित से जान पड़े। वास्तव में दोनों ढोंग कर सोये हुए थे क्योंकि ऐसी स्थिति में मदनपाल क्या कर बैठे, कुछ कहा नहीं जा सकता था। सबेरे क्या होगा इस विचार में रात भर वे जागते रहे। मदनपाल इधर से उधर घूमता और पूरी रात कुछ न कुछ बड़बड़ाता ही रहा। अरुणोदय के समय बाहर कुछ खड़खड़ाहट सुनाई दी। मदनपाल ने आकर दोनों लेटे हुए युवकों को लात मार कर कहा—लड़को उठो ! सोते हुए लज्जा नहीं आती ? इसी समय तो क्षत्रियत्व दिखाने का समय आया है।

दोनों युवक उठे और विनती करते हुए बोले—चाचा जी !

अब भी मान जाइये; हमें क्षमा मिल जायगी, ऐसी मूर्खता मत कीजिये।

'चाण्डाल! कुत्ते! इसकी अपेक्षा तो यदि तेरी माँ ने पत्थर जना होता तो अधिक अच्छा था। चल, उठ! नहीं तो पहले तुझे ही यम के घर पहुँचाता हूँ।'

वृद्ध ने तलवार खींच ली। काँपते हुए हाथ से दोनों युवकों ने भी तलवार खींची और धड़कते हुए हृदय से द्वार के पास खड़े हो गये। मदनपाल विकराल दृढ़ता की सीमा पर पहुँच गये थे। क्रोधा-वेश से उनका संपूर्ण अंग काँप रहा था; एकाग्रचित्त हो वे दरवाजा खुलने की या टूट कर गिरने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

बाहर से अर्गला खुली, किसी ने दरवाजा ढकेला। भीतर से बंद होने से दरवाजा उतारने की योजना होने लगी। मदनपाल की अधी-रता बढ़ने लगी। वह मरने-मारने के लिए तड़प रहा था। उसने भी एकाएक अर्गली उठा दी। बाहर के दबाव से दरवाजा खुल गया। बाहर कितने मनुष्य हैं, कौन-कौन हैं, इसपर मदनपाल ने ध्यान नहीं दिया। मशालें और तलवारें देख वह विकराल बाघ के समान कूद पड़ा। वह चिल्ला उठा—'जय सोमनाथ!'

बीस-पचीस सैनिकों की नंगी तलवार से वह अकेले जूझ पड़ा। पीछे दोनों युवक कायर के समान खड़े रहे। मदनपाल में राक्षसी जोश था; उसे रोकना या घायल करना कठिन था। वह तलवार से रास्ता बनाता हुआ आगे बढ़ा। उसका शरीर क्षत-विक्षत हो गया और उसमें से रक्त की धारा निकल पड़ी। आँख के नीचे अँधेरा छा गया; वह सीढ़ी तक पहुँचा, सीढ़ी उतर भी गया। पर नीचे दूसरे सैनिक उसका स्वागत करने के लिए खड़े थे। विष्णु के सुदर्शन की त्वरा से उसकी तलवार उसके सिर के चारों ओर घूम रही थी। कोलाहल सुन और लोग भी आ गये। चारों ओर मशालें जल उठीं।

मदनपाल दरवाजे की ओर दौड़ा। दैव-योग से पैर फिसला और वह वहीं गिर पड़ा; पंद्रह तलवारों की धार ने उसका शरीर बिंध दिया।

वह समाप्त हो गया। सभी घबड़ा उठे। रानी क्या कहेंगी? ऊपर शांतिचंद्र हाथ में तलवार लिए हुए खड़े थे। बाजार में बात उठी कि मीनलदेवी और जयदेव कुमार रात्रि में पाटन छोड़ कर चले गये। सैनिकों में घबड़ाहट बढ़ी; सभी भीतर से काँपने लगे। क्या होगा?

शांतिचंद्र ने राजगढ़ के फाटकों पर कड़ा पहरा बैठा दिया।

१६

प्रसन्न को आँखें खोलने में बड़ा कष्ट मालूम पड़ा। सिर में वेदना-सी उसे जान पड़ी। ऐसा लगा मानो वह झूलते हुए बिछौने पर पड़ी है। उसने आँखें खोलीं। चारों ओर अंधकार दिखाई दिया। क्रमशः उसने समझा कि वह एक बंद पालकी में अकेली पड़ी हुई है; और मीनलदेवी कोई नशीली वस्तु देकर अचेत कर कहीं भेज रही हैं। कहाँ? मालवराज के यहाँ तो नहीं? कान लगाकर ध्यान से सुनने पर उसे यह भी पता चला कि साथ-साथ कुछ घोड़े भी चल रहे हैं। उसने करवट लेकर पर्दा उठाने का प्रयत्न किया। पर वाहक जान न जायँ, इस भय से उसने नहीं हटाया।

इतने में सब लोग रुके। प्रसन्न की पालकी जमीन पर रखी गई। आगे क्या होता है इसकी प्रतीक्षा करती हुई वह पड़ी रही। उसने मसाल के साथ किसी को अपनी ओर आते हुए देखा। कौन है? और क्या रहस्य है, यह जानने के लिए वह ऐसी पड़ गई मानो गहरी निद्रा में हो। किसी ने पर्दा हटाया और झुक कर उसकी ओर देखा।

अधखुली आँखों से प्रसन्न ने भी देखा। आँखें खोलकर देखने जा ही रही थी पर रुक गई।

'कौन? बूआजी! यहाँ! इस समय! शोक या मर्यादा का विचार किये बिना गुजरात की रानी यहाँ?'

प्रसन्न जरा भी हिली-डुली नहीं। पर्दा गिरा कर मीनलदेवी चली गईं। आँखें खोलकर वह विचार करने लगी।

'पाटन छोड़ कहाँ भागी जा रही हैं?' त्रिभुवन वहीं पड़ा-पड़ा छटपटा रहा होगा। या बूआजी उसे भी अपने साथ लिवा ले जा रही हैं। अब क्या करना चाहिये?'

उसे एक ही विचार आया कि पाटन वापस कैसे लौटे? पाटन से इस समय वह कितना दूर है, इसका भी उसे ज्ञान न था। साहस कर जरा पर्दा हटा कर उसने बाहर देखा। थोड़ा दूर पर पालकी उठाने वाले कहार बैठे हुए बातें कर रहे थे। क्या होगा, इसका विचार किये बिना पेट के बल बाहर निकली और पास ही एक पेड़ की आड़ में जाकर खड़ी हो गई।

इतने ही में दूर से उसने मीनलदेवी को आते हुए देखा। उसके साथ में आनंदसूरि एवं मुरारपाल सामंत थे। वे सैनिक तथा कहारों के पास से होते हुए प्रसन्न की ओर आये; वह भय से काँप उठी—'पकड़ जाने पर क्या करेगी?' वे तीनों व्यक्ति गंभीर बात में फँसे हुए थे, जिससे उसपर किसी की दृष्टि नहीं पड़ी।

मुरारपाल कह रहा था—पर माताजी! पाटन में उत्पात हुए बिना रहेगा नहीं। आपके चले जाने की सूचना मिलते ही पाटन निवासी कुछ न कुछ अवश्य कर गुजरेंगे।

मीनलदेवी क्रोध से बोलीं—लीलाधर यही कह रहा था, मुंजाल यही कहते थे और आप भी वही बात कह रहे हैं। किंतु पन्द्रह वर्ष में मैंने तो कुछ देखा नहीं। क्या रानी नगर के बाहर जाये ही नहीं?

'क्षमा कीजिये! कर्णदेव के नाम से समस्त पाटन जो कुछ कहिये करने के लिए तैयार था और आज भी आपके नाम से करने के लिए तैयार है; किन्तु जहाँ उन्हें यह ख्याल आया कि आप कोई ऐसा कार्य करने जा रही हैं जिससे पाटन के गौरव पर आँच........!'

कठोरता से रानी बोल उठीं—आप सब लोगों को इस प्रकार बोलने की बहुत आदत पड़ गई है ?

'क्षमा कीजिये, अब कुछ नहीं कहूँगा !'

मीनलदेवी कुछ नम्र होकर बोलीं—नहीं-नहीं, मुरारपाल यह बात नहीं है। हमें ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये जिससे पाटन में उपद्रव खड़ा हो जाय। मैं मधुपुर की सेना को हाथ में ले तुरंत वापस लौट आऊँगा।

यति—मुरारपाल जी ! आप संदेशा कहने के लिये पाटन जा ही रहे हैं, अतः यह अधिक अच्छा हो यदि आप परसों तक वहीं रहें; इस बीच में देवी मुंजाल को वश में कर और चंद्रावती की सेना को देवप्रसाद का सामना करने के लिए भेजकर कुछ मनुष्यों के साथ पाटन पहुँच जायँगी ?'

'परन्तु मैं वहाँ क्या करूँगा ?'

रानी—क्या करोगे ? तुम चाँपानेरी दरवाजे की खिड़की की यह कुंजी ले जाओ। भगवान न करे, यदि कोई उपद्रव खडा हो जाय तो खिड़की की यह कुंजी काम आयेगी। परसों संध्या समय हमारी प्रतीक्षा करना। साथमें मैं कुछ मनुष्यों को भी लाऊँगी ताकि कोई बाधा उपस्थित न हो।

'जैसी महारानी की आज्ञा ! भगवान करे सब कार्य कुशलतापूर्वक पूरा हो जाय।'

'ठीक, तब हम जाते हैं, यदि हो सका तो मधुपुर की थोड़ी सेना

पाटन भेज दूँगी ताकि समय पर काम आये। मधुपुर में पड़ी पड़ी क्या करेगी ?'

यह कह कर रानी लौट पड़ीं और दोनों व्यक्ति उसके पीछे-पीछे चले।

प्रसन्न अब पुनः भय से काँप उठी; यदि मीनलदेवी उसकी पालकी देखने जाँय तो तुरंत उसके भाग जाने का पता चल जायगा और लोग खोजने दौड़ पड़ेंगे। पर सौभाग्य से कुछ हुआ नहीं।

मीनलदेवी अत्यधिक चिंतित थीं जिससे प्रसन्न की ओर उनका ध्यान गया ही नहीं। रानी अपनी पालकी में बैठ गईं। कहार उठ खड़े हुए, घुड़सवारों ने घोड़ा थपथपाया और सब-लोग वहाँ से चले गये। क्रमशः मसालें अदृश्य हो गईं।

* * *

चाँदनी में अकेला मुरारपाल घोड़े पर हाथ रखे हुए खड़ा था। उसे युद्ध का बड़ा शौक था। अब तक थांड के उपद्रवी प्रदेश में सरदारी कर उसने अपनी चतुरता दिखाई थी जिससे युद्धस्थल छोड़कर पाटन लौटना उसे नहीं रुचा; विवश हो मीनलदेवी की आज्ञा उसे स्वीकार करनी ही पड़ी।

एकाएक उसकी विचार-माला टूट गई: उसके समक्ष देवांगना के समान एक सुंदर बाला आकर खड़ी थी। मुरार ने आँखें मलीं। स्वप्न तो नहीं है ?

'राजपूत राज! इस उम्र में अधिक विचार मत कीजिये।'

मुरार ने हाँफते हुए इधर उधर देखा। कुछ डाइन का शक हुआ। उसका तलवार पर हाथ भी गया। वह थांड से अभी-अभी आया था; जिससे रानी की लावण्यवती भतीजी को न पहचान सका। उसने पूछा—कौन ?

प्रसन्न खिलखिला कर हँस पड़ी, बोली—इतनी उद्दण्डता से पूछा

जाता है ? धांड के भीलों को वश में करते-करते क्या क्षत्रियत्व भी खो दिया ?

मुरार का भय जाता रहा। आश्चर्य बढ़ा। वह बोला—कौन हो बहन ! इस समय अकेले यहाँ कहाँ से ?

मुस्कराते हुए प्रसन्न बोली—आपके साथ पाटन चलूँगी। चलिये, अब घोड़े की लगाम खींचिये। नहीं तो बात में ही रात बीत जायगी।

'पर आप हैं कौन ?'

'एक निराधार बाला।'

'यह तो बिना कहे हुए ही मालूम पड़ रहा है।'

'तब चलिये।'

'जब तक मुझपर विश्वास कर सब हाल कहती नहीं तब तक मैं कुछ करने वाला नहीं। अभी घोड़े पर बैठाने जाऊँ और आप अदृश्य हो जायँ तो कहाँ ढूँढ़ता फिरूँगा।'

रूपगर्विता बाला को देख उसका मन ललच गया था। एकांत स्थल, रमणीय ज्योत्स्ना की आह्लादजनक-मादकता, प्रसन्न के तेजस्वी मुख का आकर्षण ! मुरार इन सबको छोड़कर विरागी बनने वाला साधु न था।

'राजपूत ! अकेली चलने के लिए तैयार हूँ, इतना विश्वास क्या कम है ?'

मुरारपाल परिहास करते हुए बोला—नहीं तो यहाँ करोगी क्या ! मेरे साथ चले बिना छुटकारा भी तो नहीं है। इससे ऐसा क्यों कहती हो ? अच्छा ! यदि नहीं बताना चाहती तो न सही। पाटन में जाना कहाँ है ?

'बुरा न मानिये, समय आने पर सब बताऊँगी। इस समय पाटन ले चलिये तो बड़ी कृपा होगी।'

घोड़े की लगाम खींचते हुए मुरार ने कहा—अच्छी बात है, तो आइये बैठा दूँ।

प्रसन्न को उड़ाने की बात से उसका हृदय उछल पड़ा।

'मुझे बैठना आता है!' कहकर प्रसन्न घोड़े पर बैठ गई।

पश्चात् मुरार भी उसके आगे बैठा। घोड़ा पाटन की ओर दौड़ पड़ा।

मुरारपाल ने पूछा—आप क्षत्रिय हैं?

'हाँ, क्यों?'

'विवाह हो गया है?'

'जी नहीं!' कहकर प्रसन्न खिलखिलाकर हँस पड़ी।

२०

देवप्रसाद उठे तब उनमें एक बालक जैसा उत्साह एवं आह्लाद था। जहाँ तक षड्यंत्र एवं मुंजाल की अस्पृश्य राज्यनीति का संबंध था वहाँ तक उन्हें स्पष्ट मार्ग न दिखाई पड़ता था। अब रणसिंगे का नाद प्रारंभ हो गया था। सामने लड़ने का प्रसंग आ गया था। यह देवप्रसाद को अत्यधिक रुचा। उनके हाथों में सहस्र-गुण बल आ गया। अपना दुःख एवं अपने पर किये गये अत्याचार वे सब कुछ भूल गये।

वे अँधेरे-मुँह ही उठे। मंडुकेश्वर के रुद्रमहालय में वे ठहरे थे, जहाँ जाकर महादेवजी को बिल्वपत्र चढ़ाया, पूजा की और शस्त्र लेकर तैयार हो गये। सूर्योदय के समय मुंजाल के साथ बातचीत करने के लिए वे जाने वाले थे। सब तैयारी हो चुकी थी। नीचे

घोड़ों की हिनहिनाहट होने लगी। उनके साथ में जानेवाले सामंतगण भी घोड़े पर सवार होकर नीचे एकत्र होने लगे।

देवप्रसाद का विचार मुंजाल के साथ मंत्रणा कर दोनों सेनाओं को हो सके तो एकत्र कर पाटन के पास पड़ाव डालने का था। चंद्रावती की सेना का जब तक वहाँ पड़ाव था तब तक शांति से कोई काम निकलना कठिन था। मुंजाल की सहायता से या तो चंद्रावती की सेना अपने साथ रहेगी या वापस हो जायगी ऐसा उसका विश्वास था। तब पाटन के पास पहुँचना सरल हो जायगा। इससे मीनलदेवी परेशान होकर थककर कुछ न कुछ समझौता करने पर विवश होंगी और बिना रक्तपात के ही उसकी मन-माँगी मुराद पूर्ण होगी। मुंजाल के अपने पक्ष में आ जाने से वह एक प्रकार से निश्चिन्त हो गया था। मुंजाल सब सोच-विचार कर करेगा। मुंजाल के रहने से उसे कुछ भी परिश्रम न करना पड़ेगा।

मंडलेश्वर सुसज्ज होकर नीचे उतरे। द्वार के पास दस-बारह सामंतगण अपने रिसाले के साथ खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

मूँछों पर हाथ फेरते हुए मंडलेश्वर ने पूछा—गंभीरमल जी, पाटन के लिए हम कब कूच करेंगे ?

गंभीरमल देवप्रसाद का सहायक सामंत था। वह बोला—प्रभु ! वल्लभसेन मेरल से रवाना होने की तैयारी कर रहे हैं। आप मुंजाल से मिल आइये तो हम लोग कल कूच कर दें।

'देखना, वल्लभ चन्द्रावती की सेना से लड़ न पड़े।'

'नहीं जी, लीजिए आपकी घोड़ी आ गई। उजाला भी हो चला। चलिए नहीं तो देर हो जायगी।'

देवप्रसाद की घोड़ी आगे आई और स्वामी को देखकर हिनहिनाई। वह श्वेत रंग की और सुन्दर थी।

'क्यों, बेटा रूपा !' कहकर हर्ष के आवेग में उसके पास जाकर

देवप्रसाद ने उसे थपथपाया। नमकहलाल घोड़ी नाच उठी। देवप्रसाद ने उसको उँगलियों से सहलाया और चढ़ने के लिए घोड़ी की गर्दन पर हाथ रखा!

उसी समय उषःकाल में सामने से पाँच-सात सवार मशाल लिये हुए आते दिखाई दिये! उनके साथ पालकी थी। सामंतों के घोड़े हिनहिना उठे। देवप्रसाद आश्चर्य से घोड़ी के पास से हट गये। सामने आने वालों में से एक सवार आगे आया। देवप्रसाद भी कुछ आगे बढ़े।

मंडलेश्वर ने कठोरता से पूछा—कौन? वस्तुचन्द! क्या है?

'प्रभु! मीनलदेवी ने आशीर्वाद कहलाया है।'

अधीरता से देव प्रसाद ने पूछा—बहुत ठीक, और कुछ?

'साथ ही यह उपहार भेजा है।'

'क्या?' देवप्रसाद पालकी की ओर देखते रहे। कौनसा परिहास मीनल ने किया है, यह देखने के लिए वह आतुर हो गया। पालकी आगे आई। सामंतों का व्यूह, जो वहाँ था, पास आ गया। मशालची आगे आये। एक शांत भयंकर क्षण बीत गया—पालकी का पर्दा वस्तुचंद ने हटा दिया। उसमें से हंसा निकलकर खड़ी हो गई। देवप्रसाद ने उसे देखा। इतने शूरवीरों के विकराल मुख के समक्ष उसने कुम्हलाई हुई रमणी का चिरस्मरणीय मुख देखा। आपाद मस्तक वह काँप उठा। उसका सिर घूमने लगा। भावना के प्राबल्य से आँखें मींच लीं और हाथ से सीना दबाया।

पुनः सिर उठाकर ऊपर देखा। थोड़ी ही दूर पर उसकी प्रियतमा खड़ी थी। पंद्रह वर्षों के पश्चात् आज उसे देखा। उसके गले से एक शब्द भी न निकल सका।

पन्द्रह वर्ष की मुग्धा हंसा अपने पैर के नाखून की ओर देख रही थी; उसका पैर थरथर काँप रहा था। आँखों से अश्रुधारा बह

रही थी। पास में खड़ा जन-समूह दिग्मूढ़ बना देख रहा था। आखिर मंडलेश्वर बोले—कौन, हंसा?

हंसा ने उधर देखा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में अकल्प्य प्रेमका तेज स्फुरित हुआ। उसने बोलने का प्रयत्न किया, अचानक उसके हाथ ऊपर उठ गये। उसका ज्ञान जाता रहा, और वह गिर पड़ी। दौड़कर मंडलेश्वर ने उसे उठा लिया और अपने अतृप्त हाथों में दबा लिया। चबूतरे पर खड़े पुजारी से कहा—महाराज! जाइये अपनी पत्नी को बुलाइये। जल्दी जाइये! यह कह हंसा को उठाकर वे भीतर ले गये। रुद्रमहालय में तहलका मच गया। 'क्या है? कौन है?' इसका विचार न कर सभी दौड़ने लगे। देवप्रसाद चिल्लाने लगे। और सब लोग हंसा को होश में लाने का प्रयत्न कर रहे थे।

सूर्यनारायण की किरणों ने आकाश को दीप्त कर दिया। गंभीरमल ऊपर आये और मंडलेश्वर को बुला कर बोले—महाराज! समय बीता जा रहा है।

'कैसा?'

'क्यों? मुंजाल प्रतीक्षा करते होंगे। सूर्योदय हो गया....'

दाँत पीसकर मंडलेश्वर बोले—होने दो, क्या करें?

उनका मन मूर्च्छित हंसा में लगा हुआ था।

'महाराज! मुंजाल से आपके मिलने पर ही हम सबका भविष्य निर्भर है। माँ जी अभी होश में आ जायँगी, आप चलें।'

देवप्रसाद क्रोध से पैर पटक कर बोले—चूल्हे में जाय हम सबका भविष्य! गंभीरमल, आपका राजपाट मुझे नहीं चाहिये। मेरी हंसा के आगे यह सब तुच्छ है। आप लोगों को जहाँ जाना हो चले जायँ।

'महाराज! इतनी अधीरता किस काम की? मुंजाल मंत्री से क्या यहीं चले आने के लिए कह आवें?'

'उन्हें आना हो तो आवें, घर उनका है।'

यह कह देवप्रसाद भीतर चले गये।

गंभीरमल ने देखा कि बात बिगड़ गई। मण्डलेश्वर अब यहाँ से टलने वाले नहीं हैं। नीचे खड़े सामंतगण खीझ उठेंगे एवं मेरल की सेना बिना सेनापति निर्वीर्य हो जायगी। उन्होंने दुःखी मन से नीचे उतर कर सामंतों से कहा कि देवप्रसाद ने मुंजाल को बुला लाने के लिए कहा है। गंभीरमल ने जो सोचा था वही हुआ। सभी निराश हो गये।

हंसा की सेवा में इतने मनुष्यों का लगा रहना मंडलेश्वर को नहीं रुचा। अतः सबको विदा कर दिया। दरवाजा बन्द कर अर्गली चढ़ा दी एवं अकेले ही हंसा का उपचार करने लगे।

धीरे-धीरे हंसा की मूर्च्छा भंग हुई। उसने आँखें खोलीं; अपरिचित कमरे में वह लेटी हुई थी; सिर चारपाई की पाटी पर रखे हुए एक अपरिचित पुरुष जमीन पर बैठा था। उसे सब कुछ स्मरण हो आया। अपरिचित मस्तक की प्रत्येक रेखा उसके जीर्ण हृदय-पट पर अंकित थी। उसने मंद स्वर में पुकारा—नाथ!

उछल कर मंडलेश्वर ने हंसा को हृदय से लगा लिया, चुम्बनों से हंसा का गला रुंधने लगा। 'हंसा, मेरी हंसा! प्रिये!' सुख की घड़ी में सब कुछ भूलकर निर्बलता की असहायावस्था में हंसा ने मंडलेश्वर के सिंह जैसे सिर पर हाथ फेरा। एक घड़ी तक प्रेमपिपासा छिपाते हुए दो में से किसी ने भी कोई बात नहीं की। पश्चात् देवप्रसाद को स्मरण आया। उन्होंने पूछा—तुम्हें मीनल चाची ने भेजा? सचमुच, कितनी भली हैं?

'महाराज! कुछ कहिये मत! न जाने कौन-सा प्रपंच रचने के लिए मुझे यहाँ भेजा है।'

'प्रपंच कैसा?'

मंडलेश्वर के गाल पर हाथ फेरते हुए हंसा बोली—नाथ ! इस समय आप क्या करने जा रहे थे ? मेरे भोले राजा ! अभी भी आप जैसे के तैसे ही बने रहे।

'मैं ? मैं तो तुम्हारे भाई से मिलने जा रहा था।'

'हाय हाय !'

'क्या ?'

'अवश्य ही कोई षड्यंत्र इसने रचा होगा। मुझसे तो कह रही थी कि भैया उससे रुष्ट हो गये हैं। अब मेरी समझ में आया। आप दोनों मिल न सकें, इसीलिए मुझे यहाँ भेजा है। अब मीलनदेवी की और भी बन आयी।'

देवप्रसाद के भी कुछ-कुछ समझ में आया। वे बोले—क्या करेगी ? अधिक से अधिक दो दिन देर होगी और क्या होगा ? गंभीरमल को भेजा है। वे अभी मुंजाल को लेकर आते ही होंगे। तू तो वैसी ही डरपोंक बनी रही !

'क्या करूँ ? यदि आपकी छाया अहर्निश बनी रहती तो साहस रखती। देखिये, इतना ख्याल रखिये कि मेरे कारण से अपनी प्रतीज्ञा भंग न कीजियेगा। मेरे लिए कुछ खो मत बैठियेगा।'

हंसा को दबाते हुए देवप्रसाद बोले—पागल हुई है ! अब तुझे जाने दूँगा ? हंसा ! इस छोटे से जीवन में बहुत समय तक विलग रहे। अब जिसका जो होना हो, हो। अब तो हम दोनों जीवित रहेंगे तो साथ-साथ, यदि मरेंगे तो भी साथ-साथ।

'पर हमारा पुत्र, अपनी देहस्थली ! मेरे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है। मेरे कारण कुछ हो न जाय। उस राक्षसी का मुझे बड़ा डर लगता है।'

'हंसा ! घबड़ाती क्यों है ? सबको ठिकाने कर दूँगा। अपना त्रिभुवन भी सिंह का बच्चा है।'

'मैंने स्वयं उसे लड़ते हुए देखा है। नाथ! हूबहू वह आपका प्रतिबिंब रूप है।'

'कहाँ देखा? कुशलपूर्वक तो है?'

हंसा ने त्रिभुवन के घायल होने का सब समाचार बताया।

'जहाँ भी रहे, आनंदपूर्वक रहे। यह लड़की कौन है? मैं अनुमान कर रहा था कि उसके चुपचाप पाटन आये-दिन जाने का अवश्य ही कुछ कारण है। होगा! आप कहाँ मला था?'

'आपको याद है, जहाँ सर्वप्रथम हम मिले थे। भीमनाथ महादेव में।'

नीचे झुक कर चुम्बन करते हुए देवप्रसाद बोले—क्यों नहीं? हंसा! तुम्हें पौत्र देखने का भी सौभाग्य प्राप्त होगा।

'जैसी भगवान् की इच्छा! पर इस प्रकार पड़े रहियेगा तो अवश्य ही कुछ विरक्ति आ घहरायेगी।'

'प्रिये! अब जिसका जो होना हो वह हो।'

'क्या यह उचित है?'

'अवश्य ही है। पाटन का, गुजरात का, मेरी प्रतिज्ञा का जो कुछ होना होगा, हो। पंद्रह वर्षों तक तुम्हारे लिए छटपटाया, अब मुझे किसी की परवाह नहीं है।'

'नाथ! ये शब्द आपको शोभा देते हैं? दुनिया क्या कहेगी?'

देवप्रसाद ने हंसा की गोद में सिर रखते हुए कहा—हंसा! यह बात जाने दो। दुनिया की मुझे क्या दरकार है? तुम्हारी गोद ही मेरे लिए दुनिया है।

सुख-सागर में डुबकी लगाती हुई हंसा ने हृदय की भयंकर चेतावनी को दूर कर दिया। उसने अश्रुप्लुत नेत्रों से मंडलेश्वर की ओर देखा। उसके सुंदर नेत्रों से इतने वर्षों का दबा हुआ प्रेम

निकला पड़ता था। दोनों ने बाल-प्रणयी के सदृश एक दूसरे को हृदय से लगा लिया।

कठोर सूर्यनारायण आगे बढ़े जा रहे थे। सृष्टिक्रम की नियमितता भयंकर रीति से यथावत चली जा रही थी। प्रणयीद्वय एक दूसरे का हाथ पकड़े पड़े हुए थे।

* * *

रात्रि हुई, चंद्रमा धीरे-धीरे आकाश में आ गया। दो पागल प्रणयी को देख जरा हँसा; उसने अपनी अमृतमयी ज्योत्स्ना में ज्वाला प्रेरित कर उन्हें अधिक विक्षिप्त बना दिया था।

हंसा ने पूछा—नाथ! संपूर्ण दिन बीत गया पर भैया नहीं आये। सेना का क्या होगा?

'जो होना हो, सो हो प्रिये! हमारा प्रेम अमर रहे।'

अत्याचारी चंद्र सृष्टि पर अपने साम्राज्य की अचलता देख पुनः मुस्कुराया।

२१

यति की चतुराई अब पूर्ण रूप से प्रकट होने लगी। चंद्रावती की नवीन सेना की टुकड़ियाँ जगह-जगह पर मिलती गईं और रानी समझने लगीं कि अब यथार्थ रूप में मैं सत्तावान हुई। बराबर आनंदसूरि अपने प्रबन्ध की चर्चा किया करता था। 'मधुपुर की सेना में थोड़ी-बहुत सूचना पहुँचा दी गई है, नवीन सेना का थोड़ा-सा भाग थोड़ी दूर पर पड़ाव डाले पड़ा हुआ है एवं मुंजाल पर भी निगरानी रख छोड़ा है।' दूत थोड़ी-थोड़ी देर पर सब समाचार आकर कह जाया करते थे।

ब्राह्ममुहूर्त्त के समय प्रथम टुकड़ी मिली जिसने सब समाचार कह

सुनाया। संपूर्ण सेना यति की प्रतीक्षा कर रही थी। मुंजाल के पक्षवालों पर कड़ी किंतु गुप्त निगरानी रखी गई थी। परंतु रानी मुंजाल की गति-विधि जानने के लिये आतुर थी। इतने में खबर आई कि प्रातःकाल होते ही मुंजाल कुछ आदमियों को लेकर वाघेश्वरी माता के मंदिर की ओर जाने वाले हैं। वहाँ वे अवश्य देवप्रसाद से मिलेंगे। रानी का हृदय क्षुब्ध हो उठा। 'उसका मुंजाल ऐसा द्रोह करे? इतने वर्षों तक उसकी दासता की फिर भी वह शत्रु से जा मिला।'

अपना किया हुआ अन्याय मीनलदेवी भूल गई।

'क्या करना चाहिये? एक छोटी टुकड़ी लेकर, वाघेश्वरी होते हुए मधुपुर जायँ एवं हो सके तो रास्ते में ही मुंजाल को रोकें? मुंजाल कैसा दिखाई पड़ेगा? इस प्रकार पकड़े जाने पर क्या कहेगा?' रानी पर पुनः सत्ता का भूत सवार हो गया। 'उसे पकड़कर अपने अधीन करूँगी। उसे भी दिखा दूँगी कि मीनलदेवी स्वयं अपने हाथ से सत्ता प्राप्त कर सकती है।'

उसने पूछा—यति जी! वाघेश्वरी माता होते हुए मधुपुर चला जाय तो कैसा?

'माँ जी! इस रास्ते से अत्यधिक देर लगेगी।'

'कोई चिंता नहीं।'

यति ताड़ गया. धर्म के विग्रह में मनुष्य अपनी निजी इच्छायें किस प्रकार लाते हैं, यह देख उसके मनमें तिरस्कार उत्पन्न हुआ। उसने देखा कि इस संबंध में रानी के साथ वाद-विवाद करना व्यर्थ है। अतः स्वीकार करते हुए वह बोला—तब जयदेव कुमार को पालकी में से निकाल कर घोड़े पर बैठाना चाहिये। इसके बिना लोगों में जोश नहीं आयेगा।

'बहुत ठीक' कहकर रानी ने जयदेव को जगाकर घोड़े पर सवार कराया। जयदेव को सेना के साथ जाना बहुत अच्छा लगता था,

जिससे वह भी प्रसन्नतापूर्वक घोड़े पर सवार हो गया एवं डंका-निशान की शोभा के साथ लोग आगे बढ़े।

अरुणोदय हुआ, धीरे-धीरे प्रकाश बढ़ने लगा और मधुपुर बिलकुल पास आ गया; इतने में दूर से घोड़ों के टाप की आवाज सुनाई पड़ी; रानी का हृदय धड़क उठा; वह दाँत पर दाँत बैठाये हुए पालकी में बैठी रही। कुछ ठहर कर यति को बुलाकर उसने पूछा—यति जी! यह घोड़ों के टापों की आवाज कैसी है?

'मुंजाल मंत्री मंडलेश्वर से मिलने जाते होंगे! क्या आज्ञा है?'

'यहीं रोकिये और क्या!'

'जैसी आज्ञा!'

जरा सत्तावाही स्वर में रानी ने पुनः कहा—लेकिन देखना मुंजाल का बाल बाँका न होने पाये।

अदृष्ट तिरस्कारपूर्ण स्वर में यति ने उत्तर दिया—इसकी चिंता मत कीजिये।

सामने आने वाले घुड़सवार कुछ-कुछ दिखाई पड़ने लगे। उनकी दौड़ से चारो ओर धूल के बादल उड़ रहे थे। आकाश में बढ़ने वाले सूर्य के प्रकाश में प्रभाहीन मशालों का प्रकाश धूल के बीच से क्रमशः पास आता हुआ दीख पड़ा। रानी ने सबसे आगे सफेद घोड़े पर सवार चमकते हुए कवच से सुशोभित मुंजाल को देखा और वह काँप उठी।

'यह मेरा विजयी मुंजाल मेरे विपक्ष में!'

यति ने अपनी सेना को रास्ते के चारो ओर फैला दया था। मुंजाल ने उन्हें देखकर कठोरता से कहा—सामने से हट जाओ, क्यों रास्ता रोक कर खड़े हो?

एक नायक—यहाँ से कोई भी नहीं जा सकता।

ंजाल ने एक तीक्ष्ण दृष्टि में अपनी एवं विपक्षियों की शक्ति समझ

लिया। उनके साथ लगभग बीस सैनिक थे और विपक्ष में पचास साठ थे। उसने तिरस्कार से नायक की ओर देखकर कहा—क्यों नहीं जा सकता? तू कौन है?

'मैं चंद्रावत का नायक हूँ।'

'क्या तू मुझे पहचानता नहीं?'

'जी नहीं।'

'मैं चंद्रावती की सेना का अधिपति हूँ। हटो रास्ता छोड़ो।'

नायक ने हँस कर हाथ की नंगी तलवार हिलाई। मुंजाल के नेत्रों से अग्नि निकलने लगी। हाथ में लिए हुए भाले को उठा कर बिजली की त्वरा से नायक का हृदय बिंध दिया, घूम कर अपने सैनिकों को देखकर उच्च स्वर में ललकारा—जय-जय सोमनाथ!

जवाब में उसके सैनिकों ने भाला सँभाला और सामने की टुकड़ी पर आक्रमण करने के लिए वे उद्यत हुए। यति यह खेल देख रहा था। उसे इस समय धर्मोन्माद ने अंधा बना दिया था। उसकी दृष्टि में धर्म के विजय में दो काँटे दीख पड़े—मुंजाल और देवप्रसाद। उसका वश चलता तो एक बाण में मुंजाल को ठिकाने कर देता: पर वह रानी को पहचान गया था। उसे विश्वास हो गया कि यदि मुंजाल को कुछ भी हुआ तो रानी सब कुछ त्याग उसपर क्रुद्ध हो जायगी और सब किये कराये पर पानी फिर जायगा। अतः जब मुंजाल आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था ठीक उसी समय जयदेव को साथ लेकर वह आगे आया और पुकार उठा—'जयदेव महाराज की जय!' सैनिकों ने भी उसका साथ दिया।

मुंजाल ने यति को देखा, जयदेव को पहचाना और विपक्षियों के संबंध में उसके मन में कुछ संशय उत्पन्न हो गया। तुरंत घोड़ा रोककर भाले की नोक उसने नीची कर दी। उसके सब सैनिकों ने भी ऐसा ही किया।

बहुत धीमे स्वर में मुंजाल ने उत्तर दिया—देवी ! पाटन की गद्दी पर या तो जयदेव बैठेंगे या पाटन नष्ट हो जायगा; इसके अतिरिक्त मेरे जीवित रहते दूसरा कुछ नहीं हो सकेगा। पर आपकी मति भ्रष्ट हो गई है।

रानी ने अभिमान से सिर उठा कर देखा। वह क्रोध से आग-बबूला हो गई। अपने गौरव को सुरक्षित रखने का ख्याल कर उसने क्रोध दबा रखा था पर अब वह आपे से बाहर हो गई। वह सब कुछ भूल गई, सत्ता के नशे में केवल इतना ही स्मरण रहा कि मैं रानी हूँ। वह बोली—मुंजाल ! मुंजाल ! बनिया की गति पर चले ही गए ? मेरे साथ यह व्यवहार ? इतने दिनों तक छूट देने का यही अर्थ है ? तुम जानते हो मैं कौन हूँ ?

मुंजाल भयंकर रूप से हँस पड़ा। वह स्वस्थ एवं शांत था। 'आप ! राजमाता हैं। क्षमा कीजिये, मुझे भूलने का स्वभाव नहीं है। आप मेरे सामने उत्पन्न, मेरे परिश्रम से दक्ष बनी हुई चंद्रपुर की कुमारी; मेरी युक्ति से आई एवं मेरी बुद्धि से पूज्य बनी हुई पाटन की रानी; और इस समय—इस समय बताऊँ ?' नीचे झुक कर मुंजाल ने मीनलदेवी के कान में कहा—'सोलंकियों के राज्य को भस्मसात् करने के लिए उत्पन्न योगमाया, और मेरे मत से कृतघ्न, अविश्वासी, भावहीन एवं स्नेहविहीन—' मुंजाल अंतिम शब्द खा गया 'और कुछ कहना है ?'

मीनलदेवी दो-तीन क्षण तक इस प्रकार देखती रहीं मानो किसीने चाबुक मार दिया हो। क्रोध को वश में करना कठिन हो गया ! एक ही विचार उसे आया—किसी प्रकार मुंजाल को दबाना—उसने इधर-उधर देखा। यति एवं दूसरे सैनिक हथियार बंद खड़े थे। मुंजाल सचेत हो गया। किसी भी प्रकार इस पीड़ा से वह छूटना चाहता था, क्योंकि अब स्थिति में सुधार होना असंभव-प्राय था।

उसने हाथ का भाला एवं कंधे से लटकता हुआ धनुष उठाकर जमीन पर फेंक दिया और जयदेव कुमार को संबोधन कर कहा—महाराज ! यह मेरा शस्त्र लीजिये। इनका सदुपयोग कीजियेगा तो संसार में अमर हो जाइयेगा। मुझे अब इनकी आवश्यकता नहीं रही। आनंद-सूरि जी ! मुझे कैद कीजिये।

सब दिग्मूढ़-से देखते रहे। किसी को नहीं सूझा कि क्या करे।

मीनलदेवी बोल उठीं—हाँ, आनंदसूरि जी ! मुंजाल को गिरफ्तार कर लो। सभी द्रोहियों को उचित शिक्षा दी जायगी।

यति बहुत देर तक खड़ा रहा। पश्चात् आगे आकर घोड़े की लगाम जिसे मुंजाल ने छोड़ दिया था पकड़ ली।

रानी—अब जल्दी मधुपुर चलो, दिन कितना चढ़ गया !

धीरे-धीरे लोग आगे बढ़े। थोड़ी देर बाद रानी ने यति को बुलाकर कहा—यति जी ! यह काम तो पूरा हुआ। अब दूसरा रह गया। अब आप थोड़े-से सैनिकों को लेकर मंडुकेश्वर के मार्ग को रोकें। अब किसी प्रकार से भी मंडलेश्वर को वहीं रोक रखना है ताकि वह वल्लभसेन के पास संदेशा न भेज सके। ऐसा होने पर वह भी थक कर इधर-उधर हो जायगा।

'बहुत ठीक, तब मैं तीस सैनिकों को लेकर जाता हूं।'

'हो सके तो दो-एक दिन तक मंडलेश्वर को बाहर मत निकलने दें। इतने में यहां से मैं पाटन की ओर प्रयाण प्रारंभ कर दूँगी।'

'जैसी आज्ञा ! हमारा सेनाधिपति मधुपुर की सीमा पर आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। वह आपकी सभी आज्ञाओं का पालन करेगा। पड़ाव तो खिचराट के पास ही डालियेगा ?'

'हाँ उस स्थान पर सेना रहेगी तो पाटन के पास भी रहेगी और दूर भी। यदि वल्लभसेन मिल जाय तो निश्चित हो जाऊं।'

'जाइये, जल्दी कीजिये।' यह कह रानी मधुपुर की ओर एवं यति मंडुकेश्वर की ओर चल पड़े।

२२

पाटन में संपूर्ण रात्रि उदा मारवाड़ी गंभीर विचार में लीन अपने घर की खिड़की में बैठा रहा। गत रात्रि में उसके घर के सामने स्थित चाँपानेरी दरवाजे से दो पालकियाँ गईं। ऐसे भयंकर समय में जब पाटन के दरवाजे से एक चींटी भी नहीं जा सकती, उस समय कौन गया। उसने सोचा कि पाटन के इतिहास में यह स्वर्ण अवसर आ गया है, इसका लाभ उठाने से उसका भाग्य खुल जायगा। कितने ही वर्षों से वह अपने भाग्य के खुलने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे अत्यधिक चिंता यह हुई कि यह समय भी कहीं असावधानी से निकल न जाय।

उसे अपने में दृढ़ श्रद्धा थी। सत्रह वर्ष की उम्र में अनाथ उदा मारवाड़ी एक उजाड़ ग्राम से कंधे पर एक झोला रख चल पड़ा था। उसके पास शरीर के वस्त्र को छोड़ एक धोती और लोटा मात्र था पर उसका साहस अपूर्व था। उसके मस्तिष्क में अनेक विचार आते। वह सोचता कि संपूर्ण संसार में बुद्धि नहीं है क्योंकि कोई परमार्थ में, कोई अभिमान में तो कोई उदारता में अपना समय व्यर्थ नष्ट कर रहा है। बहुमूल्य जीवन व्यर्थ नष्ट क्यों किया जाय। यदि शुद्ध वैराग्य से ही स्वार्थ-साधन होना होता तो अवश्य ही मनुष्य संसार के शिखर पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता। पर इस तत्व-ज्ञान का निपटारा करने का अवसर भूखे-प्यासे उदा को प्राप्त न हुआ।

रास्ते की धूल छानता और पैर घसीटता हुआ वह नवीन स्थापित होने वाली कर्णावती में जा पहुँचा। तीन दिन से एक दाना अन्न से भी

उसकी भेंट न हुई थी। उसकी आँखों के नीचे अँधेरा छा गया और वह मूर्च्छित हो गिर पड़ा। होश आने पर उसने अपने को एक अच्छे घर में लेटा हुआ पाया। एक उदार, धर्मप्रेमी श्रावक विधवा लाखी उसे अपने घर उठा ले आई थी। पास में एक यति बैठा हुआ नाड़ी देख रहा था। उदा का भाग्य लौटा; लाखी ने उसे पुत्रवत् रखा। उसने देखा कि अब अपने पूर्व विचारों को अनुभव-सिद्ध करने का समय आ गया है। वह नम्रता की मूर्ति, स्वभाव से सरल, निःस्वार्थी पर चंचल-बुद्धि था। अब अपनी स्थिति से यथाशक्ति लाभ उठाने लगा। उसके सम्बन्ध में भविष्य-वेत्ताओं का अभिप्राय उच्च था; साथ ही लाखी का धन उसके हाथ में था जिससे कोई उसे असंतुष्ट करने का साहस नहीं करता था।

लाखी की मृत्यु के पश्चात् उसे कर्णावती में रहना उचित नहीं प्रतीत हुआ। नए शहर में, मदनपाल जैसे की सत्ता के नीचे, भाग्य का पासा सीधा पड़ना उसे असंभव-सा लगा। उसने कर्णावती का घर बेच दिया एवं पाटन में छोटा-सा मकान लेकर अपना व्यापार प्रारंभ किया। उदा धन का अत्यधिक लोभी न था। वह सत्ता चाहता था। मुंजाल नगरसेठ अथवा शांतिचन्द्र जैसे प्रतिष्ठित, धनी एवं सत्तावान श्रावकों को देखकर वह प्रायः जल-भुनकर खाक हो जाता। पाटन में उसे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। अपनी बुद्धि का निर्मल स्वार्थ भी उसे अधिक लाभ-प्रद नहीं लगा। पाटन के जन-समाज की प्रणालिकायें एवं राजशासन ऐसा स्थिर था कि बहुत ही कम व्यक्ति धनी हो पाते। साथ ही आश्रयहीन व्यक्ति के लिए कोई लाभ प्राप्त होना कठिन था। इसी प्रकार चिन्ता में मग्न उदा दिन और रात व्यतीत करने लगा।

बड़े कुटुम्बों में प्रवेश पाना अति कठिन कार्य था जिससे उसने शान्ति से धीरे-धीरे कार्य प्रारंभ किया। वह धैर्यवान था। उसने देखा कि पाटन में कभी न कभी उत्पात अवश्यंभावी है। उस समय

नये मनुष्यों को अवश्य ही लाभ होगा। इस अवसर से लाभ उठाने के लिए उदा पहले से ही प्रबंध करने में लग गया; निर्धन एवं समय पर काम आनेवाले राजपूत एवं राज-सेवकों को ऋण देने लगा। प्रत्येक बड़े आदमियों का पूरा जीवन-इतिहास पूछ-ताछ कर तैयार करना शुरू किया एवं यथाशक्ति महापुरुषों को प्रसन्न करने के छोटे-बड़े प्रयत्न का आश्रय ग्रहण किया; राजगढ़ और नगर में उसके मित्र थे, यतियों की उसपर कृपा थी; राजपूत उसकी मीठी खुशामद से प्रसन्न रहते। शांतिचन्द्र, मुंजाल, मीनलदेवी, कर्णदेव तक धीरे-धीरे समझने लगे थे कि यह अच्छा एवं विश्वासपात्र गरीब व्यापारी है, किन्तु कोई नहीं जानता था कि उसके मस्तिष्क में क्या-क्या विचार उठ रहे हैं।

कर्णदेव की मृत्यु के पश्चात् उदा ने कान फड़फड़ाये; घर के सब जवाहिरात, चाँदी-सोना जमीन में गाड़ दिये और चौकन्ना हो बैठ गया। मुंजाल मधुपुर गये और देवप्रसाद कोट फांद कर निकल भागे। इससे उसे विश्वास हो गया कि अब समय आ गया। रात्रि में दो पालकियों को जाते हुए देख वह विचार करने लगा कि कौन गया? इसी विचार में उसकी समस्त रात्रि व्यतीत हो गई और उषःकाल का समय हो आया; इतने में चाँपानेरी दरवाजे की खिड़की खुली। बाहर बातचीत हुई और दो व्यक्ति भीतर आये। एक पुरुष एवं दूसरी बाला। अस्ताचलगामी चंद्र के प्रकाश में उन्हें वह ठीक-ठीक पहचान नहीं सका। कनटोप पहन कर और बंडी का बंद बाँध वह नीचे उतरा और दरवाजे में ताला लगा कर चल पड़ा। उसने पुरुष को पूछते हुए सुना—आप मेरे यहाँ चलियेगा?

बाला ने हँस कर उत्तर दिया—जी नहीं।

बाला का स्वर उदा को परिचित-सा जान पड़ा; कहाँ सुना है?

भावावेग के कारण प्रकंपित स्वर में पुरुष ने पूछा—इस समय अकेली तब कहाँ जाइयेगा?

'पाटन तो मेरा घर है। यहाँ अकेली कैसी ? आप राजगढ़ जाइये, मैं चली जाऊँगी।'

'कहाँ चली जाइयेगा ?'

बाला ने हँस कर उत्तर दिया—कह नहीं सकती। इतना विश्वास किया तो थोड़ा और नहीं कर सकते ?

उदा चौंक उठा। प्रसन्न का स्वर पहचान कर अधिक ध्यान से कान लगा कर सुनने लगा।

'आप तो विश्वास नहीं करतीं, मुझसे विश्वास करने के लिए कहती हैं ! अच्छा, एक वचन देती हैं ? फिर मिलियेगा ?'

'बस इतना ही ? स्वीकार है। और कुछ ?'

'है तो बहुत कुछ ! किसी दिन कहूँगा।'

प्रसन्न हँसी, कुछ दूर तक दोनों चुपचाप चलते गये, पीछे-पीछे उदा भी मंसूबे बाँधता हुआ चला। सब राजगढ़ के चौक में पहुँच गये।

'मुरारपाल जी ! अब जाइये।'

'यदि गढ़ बंद हुआ तब ?'

'वचन का पालन कीजिये। बहुत लुब्ध मत होइये !' कहकर प्रसन्न राजगढ़ के पीछे की ओर अकेली चली गई। मुरारपाल कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा। प्रकाश अधिक हो रहा था जिससे एक निःश्वास ले वह घर की ओर चल पड़ा।

उदा प्रसन्न के पीछे जाते-जाते मन में सोच भी रहा था कि यह भेद क्या है ? यह बाला यहाँ कहाँ से आ गई ? उसके मस्तिष्क में कुछ प्रकाश हुआ। 'मीनलदेवी ही तो रात में पालकी में नहीं थीं क्या ? यदि ऐसा है तो अवश्य ही उत्पात होगा।'

प्रसन्न ने बहुत से दरवाजों को खटखटाया किंतु किसी से भी कोई उत्तर न मिला। शांतिचंद्र सेठ की कड़ी आज्ञा होने से किसी ने

भी प्रत्युत्तर देने का साहस नहीं किया। प्रसन्न घबड़ाई कि अब क्या करें? जब तक मुरारपाल के साथ थी तबतक साहस बना हुआ था किंतु किसी बड़े की सहायता या मंत्रणा बिना वह घबड़ा उठी।

'कहिये प्रसन्न बहन! इस समय कहाँ?'

प्रसन्न ने जरा हर्ष से पूछा—कौन, उदा? कहाँ जा रहे हो?

'मैं तो दर्शन करने जा रहा था किंतु आप इस समय कहाँ? कोई साथ में भी नहीं है!'

'उदा यह बात जाने दो! तुम्हारा घर कहाँ है? अपने घर मुझे ले चलोगे? इस समय कोई देख लेगा तो बुरा-भला कहेगा।'

उदा तो यही चाहता था। बोला—अवश्य, मेरा धन्यभाग्य! अवश्य चलिये। मेरा घर पास ही है। किंतु इस समय आप यहाँ कहाँ? यदि कोई विपत्ति आ पड़ी हो तो मुझसे कहिये। दास सदैव सेवा के लिए तैयार है।

प्रसन्न उदा को पहचानती थी और यह भी जानती थी कि वह बड़ा ही विश्वसनीय व्यक्ति है। वह बोली—उदा! मैं इस समय सचमुच बड़ी मुसीबत में पड़ी हूँ। बूआजी के पास से भाग आई हूँ।

बात जानने के लिए चतुराई से उदा ने पूछा—वे तो पाटन से बाहर गई हैं न?

'तुमने कैसे जाना?'

'मुझे भला पता न हो? मैं चाँपानेरी दरवाजा के सामने ही तो रहता हूँ। मैंने रात में जाते हुए देखा था किंतु आप भाग क्यों आई?'

'तुम मेरा दुःख क्या समझोगे?'

धीरे से बात टालते हुए उदा ने कहा—बहन! आप भाग आईं, अच्छा किया! नहीं तो पाटन की नाक कट जाती।

नाक कैसे कट जाती, इसका उसे पता नहीं था; पर दूसरों को खुश कर बात निकलवाने में वह बड़ा ही चतुर था।

'हाँ बूआजी को भी क्या सूझी है? अवन्ति की अपेक्षा हमारा पाटन क्या बुरा है?'

कुछ समझते हुए वह बोला—ठीक है पाटन तो पाटन ही है। भरत खंड का शिखर है। मीनल माँ को न जाने यह क्या सूझी?

विश्वास के आवेश में आकर प्रसन्न कहने लगी—हाँ, ऐसे समय भला पाटन से जाना था? उदा! उदा! क्या कहूँ? हमारे सामल भाट ठीक कहते हैं कि पाटन की प्रभुता तो जाती रही। बूआजी पाटन छोड़ मधुपुर की ओर गईं, कितना बुरा किया?

उदा अप्रकट बात समझने का प्रयत्न करने लगा। वह राज्य में चलने वाले कपट-प्रबंध से थोड़ा बहुत परिचित था जिससे एक शब्द सुनते ही संपूर्ण बात समझने में उसे देर नहीं लगी। वह बोला—ठीक तो है, पाटन की महारानी पाटन के विरुद्ध जायँ? श्रावक तो मैं भी हूँ। तो क्या इससे अपना पाटन भूल जाऊँ? किंतु किया क्या जाय, 'राजा कालस्य कारणम्!'

'क्या कहा? राजा कालस्य कारणम्! तुम्हारे पाटन निवासी सब चूड़ी पहन कर बैठे हैं; नहीं तो चंद्रावती का वश ही क्या चल सकता है? और यहाँ शांतिचन्द्र पाटन का दंडनायक बने!'

'क्या करें बहन! लीजिये, घर आ गया। बहन! समय बड़ा बुरा है, पाटन में कोई ऐसा है नहीं जो कुछ कर सके। मुंजाल मेहता जरा भी तन जायँ तो पाटन का डंका संसार में बजने लग जाय।'

'मुंजाल को तो पहले से ही निकाल बाहर किया। मंडलेश्वर—अरे हाँ! बातचीत में मूल बात तो भूल ही गई। उदा! त्रिभुवनपाल घायल होकर राजगढ़ में पड़े हैं। प्रातःकाल होने के पूर्व उनका समाचार ले आओ तब मुझे कुछ शांति मिले।'

उदा ने सोचा कि यह बाला मंडलेश्वर के पुत्र के संबंध में क्यों इतनी चिंता रखती है। वह बोला—बहन ! अवश्य। यह दाँतुन-पानी कीजिये। सूर्योदय होते ही मैं जाऊँगा किंतु सवेरा होते ही लोगों को मालूम हो जायगा कि रानी चली गईं ?

'नहीं जी, शांतिचन्द्र सेठ कड़ा पहरा रखेंगे; इससे कौन जानेगा ? दूसरे संभव है कल रात तक वे आ भी जायँ।'

दूसरे की इच्छा परखने की उदा में अद्भुत शक्ति थी। उसने धीरे से पूछा—अरे, यह समाचार तो हवा के साथ फैलेगा। अच्छा, मैं अपनी दूकान जरा खोल कर मंदिर भी होता आऊँ। साथ ही त्रिभुवनपाल की खबर भी लेता आऊँ। कुछ कहना-कहलाना है ?

'हाँ लीलाधर वैद्य से कहना कि मैं यहाँ हूँ। वैद्य जी से यह भी कह देना कि पूछने पर त्रिभुवनपाल से भी मेरे बारे में बता दें। मेरा काम हो तो मैं आ जाऊँगी। देखना, जो मैंने कहा है किसी से कहना मत।'

'नहीं-नहीं। यह भी कहने की बात है ? निश्चिंत रहिये।' यह कहता हुआ वह नीचे उतर गया।

उदा को भविष्यवेत्ताओं का वचन स्मरण आ गया। इस अवसर का लाभ यदि मैं उठा सकूँ तो अवश्य ही नगरसेठ बन जाऊँगा। जितनी देर तक चिंतातुर, विश्वसनीय प्रसन्न बात करती रही उतनी देर तक बराबर उसका मस्तिष्क भी काम करता रहा। उसने जितना विचार किया उतना ही उसे विश्वास होता गया कि ऐसा अवसर जीवन में फिर नहीं आयेगा। संपूर्ण पाटन में उसे छोड़ दूसरे किसी को पता नहीं था कि मीनलदेवी पाटन छोड़कर चली गई हैं। इसका क्या उपयोग करे जिससे उसकी मनोवाञ्छित इच्छा पूर्ण हो।

———

२३

थोड़ी ही दूर जाने पर रास्ते में वस्तुपाल सेठ हाथ में दूकान की कुञ्जी हिलाते हुए उदा को सामने से जाते हुए मिले। वस्तुपाल सेठ जैन मत मानने वाले सेठों के नेता थे।

'सेठ जी! जय गोपाल!'

'कौन, उदा जी?'

'जी हाँ, मोतीचौक चल रहे हैं क्या? आज दूकान खोलनी है?'

'भाई साहब! इससे भी छुटकारा है? दर्जी का बेटा जब तक जीये तब तक सीये।'

नीचे झुककर उदा बोला—सेठजी! आप मेरे प्रिय मित्र हैं, एक बात गुप्त रखिये तो कहूँ?

'क्या?' आज कल लोग इतने घबड़ाये रहते थे कि उन्हें अधिक घबड़ा देना बाएँ हाथ का खेल था।

'किसी से कहिएगा मत नहीं तो मेरा सिर धड़ पर नहीं रहेगा। चाहे जो भी हो आप हैं असली पाटन निवासी इससे जितना आपको मोह होगा उतना दूसरे को नहीं हो सकता। पाटन से राज्य-शासन समाप्त हो गया।'

चौंक कर वस्तुपाल बोले—ऐं!

'धीरे बोलिये! रात में मीनलदेवी चंद्रावती चली गईं!'

'क्या कहते हो? तब राज्य कौन करेगा?'

'चंद्रावती के अढ़तिया शांतु सेठ तो हैं न।'

घबड़ाकर सेठ ने कहा—अरे चलो! कहाँ से चंडूखाने की गप्प उड़ा ले आये। यह भी कहीं संभव है?

'सेठजी! बुरा लगता हो तो लीजिये, मैं जाता हूँ। यदि समझदार

'अच्छा भाई ! मैं तो चला। मुझे बहुत से काम हैं।'

'पाटन पर चंद्रावती हमला करे ! राजपूत बच्चों को श्रावक सतायें ! मारो काटो; ऐ कुब्जा ! तेरा बेटा—'

*   *   *

घर से निकल कर उदा भागा। सवेरा हो गया था जिससे समय बहुत कम था। वह विमल सेठ एवं शांतिचंद्र सेठ के मकान पर गया। वह बड़े घरों में प्रायः जाया-आया करता था एवं स्त्रियों की अनेक सेवायें कर उन्हें प्रसन्न रखता था। शांतिचंद्र सेठ की धर्मपत्नी मानकुँवर उदा पर विशेष स्नेह रखती थीं क्योंकि पाँच पुत्र एवं चार पुत्रियों के परिवार पर राज्य करना उन्हें अत्यंत कठिन मालूम पड़ता था। उदा इन्हें समझा बुझा कर शांत रखता। उदा जिस समय पहुँचा मानकुँवर बहू एवं बेटियों को लेकर तरकारी बना रही थीं।

'कहिये माँ जी ! क्या हो रहा है ?'

'कौन, उदा ! इस समय कहाँ से ?'

'योंही; मातमपुर्सी कर आईं ?'

'हाँ, आज तो बहुत सवेरे ही गई थी। मीनलदेवी तो दीपक जलाकर अंधेरे में ही बैठी थीं। इतनी जल्दी इस ठंड में कैसे बैठा जाता है ?'

'माँ जी ! जरा इधर आइये, एक बात कहनी है।'

'क्या है ?' कहकर मानकुँवर उठीं और पास ही एक कमरे में जाकर एक पटरे पर बैठ गईं। उदा उनके पीछे-पीछे गया।

'माँ जी ! मेरी शपथ, सेठ जी कुछ समझ जायँ तो ठीक, नहीं तो पाटन की नाक कट जायगी।'

'बात क्या है ? फिर कुछ चंद्रावती का होगा ? इन्हें तो वृद्धावस्था में न जाने क्या सूझी है ?'

'मीनलदेवी कल चंद्रावती गईं और सेठ जी यहाँ सब काम देख रहे हैं।'

'जाओ-जाओ, पागल हो गये हो क्या ? अभी तो मैं शोक प्रकाश कर चली आ रही हूँ। शोक त्याग भला वे कहीं जा सकती हैं ?'

'माँजी ! आपही ने कहा न कि आपने मीनलदेवी को तो देखा नहीं ? दूसरा कोई रहा होगा। मैंने स्वयं उन्हें जाते हुए देखा और प्रसन्न बहन को भी अपने साथ ले गई थीं, वे लौट आकर मेरे घर पर बैठी हैं, जाकर पूछ लीजिये।'

मानकुँवर चिल्ला उठीं—हाय ! हाय ! विमल–ओ विमली !

'क्या है ? इतना चिल्ला क्यों रही हैं ?' लाड़ से प्रगल्भ बनी हुई शांतु सेठ की कनिष्ठतम पुत्री आई।

'अरे तेरी सहेली उदा के घर अकेली है, बिचारी के माथे पर बड़ा दुःख घहराया है। बहू के साथ जाकर उसे यहाँ ले आओ। कुछ भी हो, है तो बिचारी बिना माँ की ! जल्दी जाओ ! उदा ! अब सेठ जी को क्या करना चाहिए ?'

'क्या करना चाहिये ? शहर भर कह रहा है कि हम दरवाजा बंद कर देते हैं और शांतु सेठ खोलेंगे तो मारकाट हो जायगी। अभी डूंगर नायक भी यही कह रहा था। समय रहते सेठजी को समझा दीजिये तो ठीक ! नहीं तो खून की नदी बहेगी।'

'क्या कहते हो ? हाय-हाय अरे, कोई है ? पालकी मँगाओ ! अभी राजगढ़ जाती हूँ। शैतान डूंगर तो जालिम है; नगर भर तोबा पुकारता है। कहीं यह पीछे पड़ गया तो सब चौपट हुआ। तुम कहाँ जा रहे हो ?'

'मुझे तो अभी बहुत काम है। यह तो मैं आपको अपना समझ कहने आया था। मेरा नाम किसी पर प्रकट मत कीजियेगा।'

'नहीं-नहीं, यह भी कोई बात है। उदा, यह मेरी चादर देखी ?

नई मोतियों से मढ़वाया है। भीमदेव महाराज के समय में जो यवन आये थे उन्हीं के देश से ये मोती आये हैं।'

'वाह! बहुत सुन्दर है! अब आप जाइये, मैं भी चला।'

मानकुँवर भी राजगढ़ जाने की तैयारी करने लगीं।

———

२४

उदा वहाँ से मोती चौक चला तो देखा कि वहाँ पर खलबली-सी मची हुई है। सभी व्यापारियों का झुंड हाथ बढ़ा-बढ़ा कर बातें कर रहा था। किसी ने दूकान नहीं खोली थी। कोई कह रहा था कि शांतिचंद्र सेठ मर गये; कोई कहता था कि मुंजाल का खून हो गया! कोई कहता था कि मीनलदेवी पृथ्वी में पैठ गईं। पर सभी कह रहे थे कि राजा या रानी पाटन में नहीं हैं जिससे संसार का अंतकाल आ गया।

एक धनी सेठ दूकान के चबूतरे पर खड़ा कह रहा था—भाइयों! यह तो मैं पहले से ही जानता था। मैंने आपसे क्या कहा था? जो भी हो मुंजाल मेहता सरल स्वभाव का था और यह हैं शांतु सेठ! यह तो सबको यति बनाने वालों में हैं। अब आपमें स्वाभिमान कहाँ रह गया? यदि होता तो इनका साहस ही क्या जो चंद्रावती का सौभाग्य यहाँ राज्य करे? मरो, डूब मरो सब!

भीड़ में प्रवेश कर उदा बोला—पर तिलकचंद! यह सब बातें किस काम की? यह बताइये कि अब किया क्या जाय?

चारों ओर से लोग बोल उठे—सच है, उदा सच कह रहा है। बातें तो सब बघार रहे हैं, पर इस समय किया क्या जाय?

'भाइयों! देखिये, मैं तो गरीब आदमी हूँ और मेरे पास बात भी

थोड़ी ही है। यदि अपने में बल हो तो आज पाटन को अपने वश में करिये, नहीं तो शांति सेठ के हाथ में रखने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा होगा कि फाटक खोलकर बैठिये, जिसे आना हो आवे।'

तिलकचंद उग्र हो बोल उठे—कोई आयेगा कैसे? तू तो कर्णावती का है न। हमारे पाटन में विदेशी सेना प्रवेश करेगी? क्या बात करता है?

'तब करो केसरिया, मैं कब नहीं कहता हूँ? फाटक बंद कर युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। बोलो, जय सोमनाथ!'

कितनों ही ने दुहराया—'जय सोमनाथ!'

शूरवीर सोलंकियों के जय घोष में पाटन का गौरव समाया हुआ था। गिरनार के गृहरिपु को नष्ट कर सोमनाथ पाटन को वशमें करने के लिए जब मूलराज सोलंकी ने पाटन निवासियों को प्रेरित किया था उस समय यही जय-घोष समस्त सोरठ में गूँज उठा था। तभी से अणहिलवाड-पाटन एवं सोमनाथ-पाटन एक दूसरे के हो गये थे।

'जय सोमनाथ!' की घोषणा द्वारा पाटन निवासियों ने सोरठ को हथियाया था: महमूद गज़नी के असंख्य दल से युद्धकर अणहिलवाड एवं सोमनाथ की रक्षा करने का निष्फल प्रयत्न किया था। महमूद के जाने के पश्चात् सोलंकियों को पुनः गुर्जरेश बना कर मालवा, सोरठ, धांड, लाट आदि प्रदेशों के छोटे बड़े राजाओं को प्रकम्पित कर दिया था।

यह घोषणा पाटन निवासियों के लिए श्वास और प्राण थी; इसे सुनते ही उनके रोएँ खड़े हो जाते, हाथ में अथाह बल आ जाता; मस्तिष्क में वीरता का जोश पैदा होता; पुरुष तलवार ले केसरिया करने के लिए तत्पर हो जाते, कायरों में साहस का प्रादुर्भाव होता, वीरांगनायें अपने पतियों को विजय तिलक कर, उनके पश्चात् सती हो जाने का निश्चय करतीं।

उदा ने लोगों के उत्साह का लाभ उठाकर इसी उत्साहकारी घोषणा का स्मरण दिलाया।

सभी लोग एक साथ बोल उठे—हाँ, हाँ, अवश्य तैयार हो। जय सोमनाथ! पर करना क्या है? इसका निर्णय कर लो!

सबके शांत हो जाने पर उदा बोला—देखो भाई! मुझे तो तिलकचन्द सेठ की बात ठीक जँचती है। धन-माल तो कर दो सब ठिकाने! शांतु सेठ को करो सीधा! और हो जाओ लड़ने के लिए तैयार! हमारे रहते किसकी ताकत जो पाटन में पैर रखे?

दो-चार व्यक्ति—ठीक तो है, किसकी ताकत है?

एक नया आदमी आगे आकर बोला—हम तो पहले से ही कहते हैं। पाटन निवासियों को अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने नहीं आता तो हम क्या करें? हममें आत्म-प्रतिष्ठा भी न रही। गजनी के राक्षस आये तब डेढ़-डेढ़ महीनों तक पाटन की रक्षा की और आज ऐसे ही सौंप देंगे? चलो राजगढ़, पहले इस शांतु सेठ को सीधा करें। मुंजाल मेहता नहीं है, नहीं तो पहले इसे ही निकाल बाहर कर देते। यह समझता क्या है?

इतने में दो-एक व्यक्ति दौड़ते हाँफते हुए आ पहुँचे और चिल्लाने लगे—मार डाला, मार डाला!

वहाँ पर खड़े सभी व्यक्ति घबड़ा उठे। कितनों ही का मुँह सूख गया, पर जायँ कहाँ?

उदा ने आगे बढ़कर पूछा—बात क्या है?

उनमें से एक हाँफता हुआ बोला—है क्या? यह सेना आ पहुँची। भागो, नहीं तो मारे जाओगे।

उनमें से कितने तो कहीं भागने का मार्ग ढूँढ़ने लगे।

उदा—किसकी सेना है? यह तो बताओ।

'अरे वह यमराज-सा गदा हिलाता हुआ आ रहा है।' कहकर नवागंतुक ने एक ओर संकेत किया। आगे-आगे डूंगर नायक, भीमराज

के अवतार के समान, एक लोहे की गदा हिलाता हुआ दिखाई दिया। उसके पीछे डेढ़-दो सौ मनुष्य आ रहे थे। किसी के हाथ में तलवार, किसी के हाथ में भाला और किसी के हाथ में, अस्त्र न मिलने से लाठी थी।

सभी सेठ घबड़ा उठे। उनमें से अनेक साहसी एवं हृष्ट-पुष्ट थे। किंतु हाथ में कोई अस्त्र शस्त्र न होने से उन्हें नहीं सूझा कि अपनी रक्षा कैसे की जाय। सब यही सोच रहे थे कि कहाँ छिपें!

उदा ने आगे बढ़कर कहा—ठहरिये! घबड़ाइये नहीं। यह तो अपना डूंगर नायक है। आप सब लोग खड़े रहिये। मैं अकेले जाकर पूछ आता हूँ। संभव है यह भी—

* * *

अब देखना चाहिये कि डूंगर नायक कैसे आया!

उदा के चले जाने के पश्चात् उसके मस्तिष्क में एक ही विचार चक्कर काटने लगा कि 'डूंगर नायक के जीते जी पाटन में श्रावकों का राज्य हो रहा है!' संपूर्ण जीवन उसने महाजनों से ऋण लेकर व्यतीत किया था; देवप्रसाद का अनुयायी होने से श्रावकों से घृणा करता। इससे उसे अकसर श्रावकों को सताने की इच्छा होती। किंतु उनकी आये दिन आवश्यकता पड़ने से उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं होती थी। आज उसका खून खौल उठा था 'पाटन में चन्द्रावती की सत्ता!' उसके क्षुब्ध मस्तिष्क को स्पष्ट जान पड़ा कि 'मेरे कारण ही आज पाटन टिका हुआ है, यदि मैं उसकी रक्षा के लिए नहीं दौड़ूँगा तो दूसरा कौन आयेगा!' ज्यों त्यों कर वह उठा, थोड़ा-बहुत उसने दंड किया और अपना गदा लेकर फेरा। ज्यों-ज्यों कसरती डूंगर का खून शरीर में दौड़ा त्यों-त्यों मन भी इधर-उधर दौड़ने लगा। उसे विश्वास हो गया कि चन्द्रावती की सेना कोट के बाहर पड़ाव डालकर पड़ी है और शांतिचन्द्र फाटक खोलने जा रहा है। उसे

यह भी जान पड़ा कि प्रत्येक श्रावक को बंदी किये बिना पाटन की रक्षा असंभव है। अपने शिष्यों के आने के पहले ही गदा उठाकर वह नीचे उतर पड़ा।

'सती ! सती !' प्यार भरे स्वर में डूंगर सिंह ने पुकारा।

सती चौंकी। इतने प्यार से पुकारने वाले पति की ओर उसने घबड़ाहट से देखा। सोचा कहीं पागल तो नहीं हो गये! उसने पूछा—क्या है ?

'सती ! मैं रण-संग्राम में जाता हूँ। पाटन का मान अखंड रखने के लिए ! बच्चों को देखना।'

सती ने देखा कि कोई नई धुन सवार हुई है। कहा—अच्छा, जल्दी आइयेगा।

'न आऊँ, तो दूसरे लोक में·····!' कहकर, कहाँ जा रहा है इसका विचार किये बिना नायक बाहर निकला। सामने ही अखाड़े से आने वाले सात-आठ राजपूत मिले! उन्होंने पूछा—नायक! कहो, क्या काम है ?

'कायरों ! चूड़ी पहन कर बैठे रहो। अपना घर-बार लुटाना चाहते हो क्या ?'

'ऐं ! क्या कहा ?'

'चन्द्रावती की सेना कोट के बाहर पड़ी हुई है, मीनलदेवी चंद्रावती गईं।'

'क्या कहा ? यहाँ पाटन में विदेशी सेना !'

'शांतु मेहता तो आज ही तुम्हें बंदी बनावेगा। बैठे रहो, हरामखोरों ! अब श्रावकों के घर जाकर पानी भरना पानी !'

'अरे यह भी कहीं हो सकता है ?'

'क्यों नहीं होगा ? साहस हो तो चलो मेरे साथ। सब फाटक बंद कर दिये जायँ। पाटन पर विदेशियों का आक्रमण हो और एक

राजपूत बच्चा भी सामना न करे ? मैं तो मारूँगा या मर जाऊँगा। सच्चा राजपूत कोई है ? सभी श्रावकों को पकड़-पकड़ कर उन्हीं बुला देंगे ! मज़ाल है कि चन्द्रावती आ जाय ?'

श्रावकों को पकड़ने की योजना सबको पसंद आई। सब बोल उठे—हाँ-हाँ, चलो चन्द्रावती भला क्या आवेगी ?

'चलो, बढ़ो ! लक्ष्मण रावत ! निकलो बाहर !'

एक वृद्ध ने सिर निकालकर पूछा—कौन ? डूंगर ! क्या है ?

'पाटन में परदेशी चले आ रहे हैं, चलो उन्हें भगा दें। भीमदेव दादा का समय आ गया है। बोलो लड़कों ! जय सोमनाथ !'

'जय सोमनाथ !' का जयघोष हुआ। सब लोग आगे बढ़े। जिसके हाथ में जो आया वह उसने उठा लिया।

चलते-चलते कोई हँसा; किसीने कहा कि मल्ला कोठारी डूंगरसिंह की हँसी उड़ा रहा है। कहता है कि इस पागल को हो क्या गया है ?

विकराल बाघ की तरह घूमकर डूंगर नायक बोला—कौन कहता है यह ? मैं पागल हूँ ! वह कौन मूर्ख है जो घर में बैठा है !

निम्नश्रेणी के राजपूतों के वर्ग में डूंगर नायक की सत्ता का विरोध करने वाला कोठारी था। डूंगर उससे जलता था। उसका नाम सुनते ही वह आग बबूला हो उठा।

'मल्ला कोठारी तो कापुरुष है।' डूंगर चिल्ला उठा और अपने साथियों के साथ बगल की गली में घुस कर कोठारी के घर की ओर चला। लोगों में कोलाहल मच गया। डूंगर नायक का समूह क्षण प्रति क्षण बढ़ता जा रहा था।

'मल्ला ! मल्ला ! पाटन पर परदेशी चढ़े चले आ रहे हैं और तुम इस प्रकार बैठे हो ?'

मल्ला कोठारी बिचारा कुछ जानता भी नहीं था। अकेला बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। डूंगर नायक के अशिष्टतापूर्ण शब्द सुन

उसने हुक्का अलग रख दिया। उसकी त्योरी चढ़ गई। वह उपेक्षा से बोला—जो चढ़ आता हो उसे आने दे, तू जाकर अपना काम देख। तेरा क्या जाता है?

डूंगर चिल्ला पड़ा—कायर! पाटन निवासी बनता है! तेरे मुँह पर थू!

यह कह कर उसके मुँह पर थूक दिया; उसकी देखा-देखी दस-पंद्रह व्यक्तियों ने भी थूका और नमक हराम, कुत्ता, चाण्डाल, गुलाम आदि अनेक उपाधियाँ मन्ना को मिल गईं।

लोगों पर पानी चढ़ गया; मन्ना सामना करने के लिए पास में पड़ी हुई तलवार उठाने गया; पलक मारते पाँच-सात आदमियों ने उसे पकड़ लिया; उसका हुक्का कहीं का कहीं जा पहुँचा। 'पाटन में विदेशी बुलाना है? यह चंद्रावती का है, मारो, पकड़ो।' कह कर लोगों ने उसे बाँध कर अपने साथ ले लिया।

'इस उत्पात से लोगों की भीड़ भी बढ़ गई और जोश भी बढ़ा। इस प्रकार हो-हल्ला करती हुई डूंगर नायक की सेना मोती-चौक पहुँची।

❀ ❀ ❀

उदा आकर बोला—क्यों नायक! शाबाश! ठीक किया।

'उदा सेठ! बैठे क्या हो! पाटन के सीमा पर तो विदेशी आ गये हैं, और बातें कर रहे हो।' उदा से नई बात कह रहा हो इस प्रकार वह बोला।

'तुम जा कहाँ रहे हो?'

'सब दरवाजों पर अधिकार जमाने जा रहा हूँ, अधिक होगा तो केसरिया। क्यों लड़कों! बोलो, जय सोमनाथ!'

'जय सोमनाथ!' लोग पुकार उठे।

'तुम्हारे सेठ क्या कर रहे हैं?'

'सभी पाटन की रक्षा के लिए तैयार हैं, इन्हें भी अपने साथ ले लो।'

'श्रावक दगा देंगे तब ?'

कोई पीछे से बोल उठा—बैठ, बैठ, दुष्ट।

डूंगर नायक पीछे घूम कर बोला—तू क्या जाने ? हम चाहे जैसे हैं, किंतु हैं पाटन निवासी।

'ठीक है किंतु पहले राजगढ़ चलकर पता तो लगा लो कि बात क्या है !' उदा ने बात बदली।

'हाँ-हाँ, वहीं जा रहे हैं।'

वह राजगढ़ के मुख्य चौक में जीवन में दो-चार बार ही गया होगा। वह भी नौकर के रूप में और एक बार अपराधी के रूप में। इस समय पाटन के रक्षक रूप में जाना उसके लिए सीधे स्वर्ग में जाने के समान था। वह बोला—चलो राजगढ़ ! यह शांतु सेठ बैठा क्या कर रहा है ? तुम्हारे सेठ आ रहे हैं या नहीं ?

'हाँ-हाँ' कह कर उदा पीछे लौट आकर बोला, 'भाइयों ! डूंगर नायक भी पाटन की मर्यादा बचाने के लिए आये हैं। चलिये हम सब राजगढ़ चलें। पूछें तो सही कि बात क्या है ?'

'हाँ-हाँ, चलिये !' कह कर प्रायः सभी लोग तैयार हो गये और डूंगर सिंह के साथ सभी लोग राजगढ़ की ओर चले। धीरे-धीरे लोगों की भीड़ बढ़ती गई। इसकी चारों ओर धूम मच गई कि पाटन पर विदेशी चढ़ आये हैं। धीरे-धीरे घोड़े पर या पालकी में बड़े-बड़े सामंत, सेठ एवं जागीरदार भी आने लगे। थोड़ी देर में राजगढ़ के सामने एक बड़ी फौज तैयार हो गई।

इतने थोड़े समय में इतनी खलबलाहट होने का मूल कारण था लोगों में नगर के लिए अभिमान। आपस में चाहे जितना झगड़ा चलता रहे पर पाटन का कोट एवं पाटन का पति दोनों दुर्जय समझा

जाता था। यह अभिमान लोगों में गौरव और संकट के समय एकता प्रेरित करता था एवं दुर्जयता सुदृढ़ बनाये रखने के लिए पाटन-निवासी अपना प्राण न्योछावर करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते थे। मूलराज के समय से ही पाटन उनके लिए संसार का सर्वश्रेष्ठ स्थल था। नगर को सजीव व्यक्ति मान कर उसके चरण-सेवन के लिए तत्पर रहते थे एवं अपने राजा, सेठ तथा धन की अपेक्षा गौरव की ओर उनका ध्यान अधिक रहता। मूलराज, भीमदेव और कर्णदेव उनके लिए पाटन के गौरव की मूर्ति थे, एवं मुंजाल के प्रति लोगों के प्रेम का कारण भी यही था। इस समय पाटन-निवासियों का मान भंग हुआ था इसीसे वे क्रुद्ध हो उठे थे। उनके लिये पाटन की नाक कटने के पूर्व संसार रसातल को चला जाय तो अच्छा।

———

२५

पाटन-निवासियों की भीड़ हुल्लड़ मचाती हुई राजगढ़ की ओर चली। इस उत्पातका कारण किसी को ज्ञात नहीं था किंतु इतना सभी को मालूम हो गया कि मीनलदेवी पाटन छोड़ कर चली गई और शांतिचंद्र चंद्रावती का आदमी होने से विश्वासपात्र नहीं है। उसमें से कितने ही तो भटकने वाले, बेकाम, विलास प्रिय नागरिक थे। कितने ही यह देखने आये थे कि क्या होता है। सभी लोग एक दूसरे से कह रहे थे कि मीनलदेवी रात में चली गई हैं; चंद्रावती का दल कोट के बाहर पड़ा हुआ है। कितने ही लोग कह रहे थे कि हमने स्वयं अपनी आँखों देखा है। कितनों ही को विश्वास था कि गुजरात की राजधानी अब से चंद्रावती होने वाली है। कितनों ही ने

भविष्यवाणी की कि जब तक मीनलदेवी हैं तब तक पाटन सुख से नहीं सो सकेगा। आखिर वह भी है तो परदेशी ही!

पहले तो घबड़ा कर स्त्रियों ने खिड़की-दरवाजा बंद कर दिया। पर कारण मालूम होने पर कि चंद्रावती की सेना बाहर पड़ी है उन्होंने भी अपने-अपने पतियों को बाहर निकालना प्रारंभ किया। इस प्रकार सभी लोग राजगढ़ के कोट के बाहर मैदान में आ पहुँचे। 'बात क्या है?' यह जानने के लिए आसपास में रहने वाले धनाढ्य सेठ और बड़े-बड़े सामंतगण भी आ जुटे। प्रत्येक व्यक्ति पूछता कि 'बात क्या है?' और 'मीनलदेवी भाग गईं' यह सुन आश्चर्यचकित हो सम्मिलित हो जाता। हालार के वृद्ध मंडलेश्वर ने भी यह समाचार सुना और 'चंद्रावती की सेना आ रही है' यह सुनकर उनका खून उबल उठा। तुरंत घोड़े पर सवार हो खेंगार जी आये और समूह में सम्मिलित हो गये। वे प्राचीन समय के शूरवीर, उत्साही राजपूत थे। उन्हें देख उदा उनके पास गया।

'बापू! अब आप ही लोगों के हाथ में पाटन की लाज है।'

'अभी शांतु सेठ को ठिकाने करता हूँ; देखूँगा कौन आता है! सब लोग गढ़ जा रहे हैं? चलो मैं भी चलता हूँ।'

उदा ने बढ़ती भीड़ पर दृष्टि डाली। उसने देखा कि देखा-देखी भले लोग भी काफी संख्या में सम्मिलित हो गये हैं। वह जानता था कि डुंगर नायक जैसे लोगों का उत्साह क्षणिक है। अतः जब तक बड़े लोगों में जोश उत्पन्न न हो तब तक कुछ काम संपन्न होना कठिन था। उसे एक युक्ति सूझी। भीड़ की अधिकता एवं हुल्लड़ से उसकी ओर किसी का भी लक्ष्य नहीं था। धीरे से वह वहाँ से सटक गया और बगल की गली से होता हुआ राजगढ़ के पीछे फाटक पर पहुँचा। फाटक एवं सभी खिड़कियाँ बंद थीं। उसने दराज से देखा तो उसे द्वारपाल दीख पड़ा।

'अरे—ओ—'जोर से उदा चिल्लाया।

'कौन है ?' पूछते हुए द्वारपाल ने दराज से देखा।

'अरे, मैं हूँ उदा ! जरा खिड़की खोलो।'

'नहीं खुलेगी, माँ जी की कड़ी आज्ञा है।'

'अरे पागल ! तुझे कुछ पता भी है ? खोल, नहीं तो कचूमर निकल जायगा।'

'अरे उदा सेठ ! आपकी भी अकल मारी गई है क्या ? चले जाइये नहीं तो कोई जान लेगा तो मैं कहीं का नहीं रह जाऊँगा। बड़ी कड़ी आज्ञा है।'

'अरे मूर्ख ! रानी तो कभी की नौ-दो ग्यारह हो गई हैं और संपूर्ण पाटन उठकर यहाँ आ रहा है।'

'क्या कहते हो ? रानी जी—'

'अरे, रानी तो कभी चंद्रावती पहुँच गईं। तुझे धन चाहता हो तो जो माँग तुझे मैं दूँ। पद चाहता हो तो कल सबेरे दिला दूँगा। किंतु इस समय खिड़की खोल।'

'रानी जी चली गईं। अब क्या होगा ?'

'पागल ! त्रिभुवनपाल सोलंकी गढ़ में हैं न, मुझे आने दे तो कल तुझे नायक बनवा दूँगा या जागीर दिला दूँगा।'

'यह सब तो पीछे, अभी अपने कान की बालियाँ ही दो !'

'अच्छी बात है लो।' उदा ने बाली दे दी। सिपाही धीरे से खिड़की खोलकर बोला—देखिये, कल जागीर मिलनी चाहिये।'

'अवश्य' कहकर उदा तेजी से लीलाधर वैद्यके कमरे की ओर चला गया। कर्णदेव की बीमारी के कारण राजवैद्य बहुत दिनों से महल में ही रहते थे। उसने पुकारा—लीलाधर जी ! लीलाधर जी !

'कौन है ?' पूछते हुए एक युवती ने दरवाजा खोला।

'कौन ? मात्रा बहन ! मैं उदा हूँ ! आपके पिताजी कहाँ हैं ?'

'पिताजी तो त्रिभुवन के पास हैं।'

'त्रिभुवनपाल जी कहाँ हैं ?'

'उस ओर हैं। जहाँ वे—' कहकर नवोढ़ा कुछ लजा गई।

'वह पंडित जी जहाँ खड़े हैं वहाँ ? इतनी बड़ी हो गई अब शरमाती क्या हो ? गजानन की तुम सिद्धि हो या बुद्धि ?' मजाक कर उदा उस कमरे की ओर तेजी से दौड़ा।

'वाचस्पति ! आपके श्वसुर कहाँ हैं ? त्रिभुवन सोलंकी कहाँ है ?'

'कौन है ?' भीतर से वैद्यजी ने आवाज दी। उदा उसी ओर दौड़ा।

लीलाधर जी वैद्य बैठे हुए पान चबा रहे थे। सामल भाट निस्तेज आँखों से आकाश की ओर देखते हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और चारपाई पर त्रिभुवनपाल बैठे हुए थे। उनके घाव से काफी खून बहा था। सामलभाट की जड़ी-बूटी से बहना तो तुरंत बंद हो गया था और सारी रात गहरी नींद में पड़े रहने से इस समय निर्बलता होते हुए भी तबीयत हल्की थी। उसका तेजस्वी मुख रक्तहीनता होते हुए भी आकर्षक लग रहा था। उसके बालमुख पर चिन्ता के चिह्न थे। उसके पिता चले गये थे, सखी कृतघ्नी निकल गई। अब तक उसे दिखाई तक नहीं पड़ी। स्वयं मीनलदेवी के हाथ में बंदी के समान पड़ा था; पर वह दृढ़तापूर्वक कुछ विचार कर रहा था।

'नमस्कार महाराज ! जय-जय वैद्यराज ! राम-राम भाट जी !' कहते हुए उदा कमरे में पैठा। दो व्यक्तियों ने उसकी ओर देखा; भाट जी ने आँखें उस ओर फेरीं। त्रिभुवन के ललाट पर बल पड़ गए।

'महाराज। क्षमा कीजिये, आपकी शरण में आया हूँ; पाटन निवासियों की एक विनती सम्मुख रखने के लिए।'

'मेरे सम्मुख ! पाटन निवासियों की विनती !' त्रिभुवन ने आश्चर्य से पूछा। वैद्य और भाट जी दोनों चुपचाप देखते रहे।

'जी हाँ, नगर-जन-प्रतिपालकों में आप ही रह गये हैं, लोग आपकी शरण में आ रहे हैं।'

'उदा! पागल हो गये हो क्या? क्या बक रहे हो?' वैद्य जी ने डाँटा।

'क्या आपको भी पता नहीं है महाराज! मीनलदेवी जयदेव कुमार के साथ पाटन छोड़ रात में ही चन्द्रावती चली गईं। भाटजी! क्या सुन रहे हैं? चंद्रावती की सेना पाटन सर करने आ रही है।'

'अवश्य उस षड्यंत्रकारी यति का षड्यंत्र है।' वैद्यजी बोल उठे।

'क्या कह रहे हो उदा!' त्रिभुवनपाल ने खड़े होते हुए पूछा; पर तुरंत अपनी अशक्ति देख वह बैठ गये। 'पाटन पर चंद्रावती चढ़ाई करे!'

वैद्य—अवश्य! यह यति बहुत दिनों से वहाँ से लोगों को बुलाता रहा है।

'त्रिभुवन सोलंकी! क्या बैठे हो?' एकाएक सामल भाट गर्जना कर उठे; उसके हाथ से हुक्का अलग लुड़क गया और तन कर खड़ा हो वह कहने लगा—तुम सब बालक हो! प्रसन्न गई उज्जयनी और चन्द्रावती आ रही है! है कोई माँ का सच्चा लाल? तो उठ खड़ा हो! मैं तो कभी का सोच कर बैठा हूँ।

उदा विनती करने लगा—महाराज! पाटन भर में खलबली मची हुई है और सभी लोग आकर बाहर खड़े हैं। आपसे मिलने के लिए सभी आतुर हैं, आप वहीं चलिये।

त्रिभुवन—मैं क्या करूँ? मेरे हाथ निर्बल हैं।

भाटजी—त्रिभुवन सोलंकी! खबरदार! तुम्हारा निर्बल हाथ सबसे सबल है। उठो, खड़े हो, बोलो जय सोमनाथ! कहाँ हैं लोग? यवन आये तब मेरा भीमदेव उछलकर खड़ा हो गया था। सोचा नहीं कि मैं सबल हूँ या निर्बल!

उदा—लोग तो बाहर मैदान में शांतु सेठ से मिलते होंगे। सब समझते हैं कि वह भी चंद्रावती का है।

'भाटजी ! हम लोग भी चलें।' त्रिभुवन को भी आवेश आया।

'चलो, उठिये वैद्यजी ! मेरे वीर के साथ चलिये, जीता रह मेरा सोलंकी ! जय सोमनाथ !'

२६

शांतिचंद्र सेठ ने उठते ही सर्वप्रथम मदनपाल की लाश को ठिकाने लगाने का प्रबंध किया; तत्पश्चात् सब फाटक और द्वारों पर कड़ा पहरा बैठाया। प्रातःकाल शोक-प्रदर्शन के लिए आने वाली स्त्रियों के लिए बैठने का प्रबंध किया ताकि किसी को मीनलदेवी की अनुपस्थिति का पता न चल सके। उन स्त्रियों के चले जाने के पश्चात ही उन्हें कुछ शांति मिली और उनके अधीर हृदय में साहस आया कि इसी प्रकार कुशलपूर्वक दो दिन निकल जायँगे। किसीका पदचार या किसी की आवाज सुन वे घबड़ा उठते। थोड़ी देर बाद दरबान ने आकर सूचना दी कि मुरारपाल मिलने के लिए आये हैं।

शांतिचंद्र ने उसे तुरंत बुला भेजा और एकांत होते ही पूछा—कहिये मुरारपाल जी ! कहाँ से लौटे।

'बिल्वराट के कुछ आगे से ! यहाँ क्या हालचाल है ?'

'यहाँ तो सब ठीक ही है।'

'कल संध्या समय मुझे चांपानेरी दरवाजे पर आने के लिए कहा है, मीनलदेवी उसी समय आवेंगी।'

'तब तक तो आशा है सब शांतिपूर्वक बीत जायगा; कोई उपद्रव

नहीं होगा। पर ध्यान रखियेगा यहाँ कोई जानने न पाये कि रानी जी आने वाली हैं।'

हृदय में प्रसन्न का मुख रम रहा था जिससे उसके संबंध में कुछ कहने का साहस न कर मुरारपाल ने कहा—जी नहीं, यहाँ कौन जानने वाला है?

'ठीक है, तब कल संध्या समय दरवाजे पर आप ही जाइयेगा क्योंकि मेरे जाने से लोगों को सन्देह होगा।'

'इसकी आप कुछ भी चिंता न करें; कल संध्या समय मीनलदेवी को सही सलामत राजगढ़ में ले आऊँगा, पर फाटकों पर पहरा—'

'हाँ उसका सब प्रबंध ठीक है। पाटन कल तक शांत पड़ा रहे तब की बात!'

बाहर से एक चोबदार आया जिसकी ओर उग्रता से देख कठोर स्वर में शांतिचंद्र ने पूछा—क्यों, क्या काम है?

'कैसा काम? मैं आई हूँ।' कहकर मानकुँवर देवी भीतर आकर बोलीं—चोबदार! बाहर जाओ! आप क्या करने पर उतारू हैं? मुझसे तो कुछ कहते ही नहीं!

शांतिचंद्र बड़े परिश्रम से गौरव रखते हुए बोले—मुरारपाल, आप निश्चिततापूर्वक जाइये पर जो कुछ मैंने कहा है उसे भूलियेगा मत।

'बहुत अच्छा, जय-जय!' कह कर मुरारपाल चले गये। उसने देखा कि पति-पत्नी की बातचीत में खड़े रहने से कोई लाभ नहीं। वह बाहर निकल कर नीचे जाने लगे; जाते समय बगल के बरामदे में उसने तीन-चार युवतियों को खड़े देखा। उनमें से एक कुछ परिचित-सी लगी जिससे वह तुरंत लौट पड़ा। उसका मुख रात्रि में आई हुई युवती-सा लगा। उसने घूँघट काढ़ रखा था जिससे निराश हो रात्रि का अनुभव स्मरण करते हुए वह अपने घर चला गया।

शांतिचंद्र सेठ अपनी पत्नी की उग्रता को शमन करने का प्रयत्न

करते हुए बोले—बात क्या है ? इतनी व्यग्र क्यों हो रही हो ? हुआ क्या ?

'होगा क्या ? पूरा शहर आपका वध करने के लिए उलटा पड़ रहा है, कुछ पता है ?'

दंडनायक का कलेजा काँप उठा, उसने पूछा—क्यों ? शहर क्यों उलट पड़ रहा है ?

'चंद्रावती के यतियों को आप बुला रहे हैं इसलिए ! मीनलदेवी कहाँ हैं ? आप ही बताइये ।'

घबड़ा कर शांतु मेहता बोले—अरे ! जरा धीरे बोलो धीरे, कोई सुन लेगा !

'कौन नहीं जानता कि धीरे बोलूँ ? सभी जानते हैं कि मीनलदेवी कल रात्रि में भाग गईं और चंद्रावती की सेना बाहर डेरा डाले पड़ी हुई है ।'

'कौन कहता है ?'

'मुझसे छिपाओगे न ! पर मैं पूरे शहर की बात जानती हूँ ।'

'देखो, कुछ मेरी बात भी तो सुनो ।'

कमर पर हाथ रखकर सेठानी बोली—क्या है कहिये ?

मीनलदेवी यहाँ से सबका समाधान करने गई हैं, क्या समझा ? कल शाम तक वापस लौट आयेंगी जिससे घबड़ाने की कोई बात नहीं है । किसी से कहना मत ।'

'और चंद्रावती की सेना ? वह आपकी सगी लगती है, क्यों ?'

'पर है कहाँ चंद्रावती ? किसी ने गप उड़ा दिया है ।'

'जी हाँ ! सब लोग कहते हैं वह झूठ; और आप राजा हरिश्चंद्र ! अब आप घर पधारें, घर । मुझे सेठाई-बेठाई कुछ नहीं चाहिए । बुढ़ौती में मुँह में कालिख लगवाने के लिए तैयार हुए हैं ?'

शांतिचंद्र कठोर स्वर में बोले—सेठानी ! मेरा धर्म इस समय

पाटन की रक्षा करना है, समझा ? पैंसठ वर्षों की मर्यादा पर पानी फेरने के लिए मैं तैयार नहीं। मीनलदेवी की आज्ञा का अनादर मैं कभी भी नहीं करूँगा।

'जी हाँ, बाप-दादा की इज्जत में बट्टा भले ही लग जाय! आप क्यों अनादर करने लगे ? पूरा शहर उठकर यहाँ आयेगा तब क्या करियेगा ? कोई भी चंद्रावती की सेना घुसने देगा क्या ? आपकी अपेक्षा तो एक साधारण राहगीर अच्छा जो यह समाचार सुन व्याकुल हो उठता है। अपने राज्य में विदेशी सेना पड़ाव डाले ?'

'किसने कहा ? व्यर्थ क्यों बकवाद कर रही हो ? लोग आवेंगे तो मैं जवाब दे लूँगा।'

'दिया है—दिया है; क्या दीजियेगा ?'

'कहूँगा कि जो इच्छा हो करो। किसी की क्या मजाल जो राजगढ़ में घुसने का साहस करे। मुझे अपना धर्म पालन करना है। चोब-दार ! यहाँ नायक कौन है ?'

इतने में भयंकर गड़गड़ाहट सुनाई दी। उसे सुनते ही वह बोल उठे—अरे ! यह आवाज कैसी आ रही है ? सरस्वती में इस समय जल-प्रलय कैसा ?

'जी नहीं, यह लोगों की आवाज है।'

गंभीर पर भयंकर आवाज स्पष्ट सुनाई पड़ी। शांतिचंद्र की घबड़ाहट बढ़ी। उग्र सागर के समान किसकी आवाज थी, यह उसने पहचाना। ऐसी गंभीर हृदय-भेदक गर्जना एक महाशक्ति के दो रूप ह[illegible] कर सकते हैं। एक महासागर और दूसरा समाज।

पाटन की हवा इस समय बदली हुई थी। आनन्द की लहरियों ने प्रचण्ड स्वरूप धारण किया था। रानी, यति एवं शांतिचंद्र द्वारा रची हुई योजनाओं को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए समाज आगे बढ़ रहा था। उस समाज की प्रलय-तरंग ने ताण्डव नृत्य प्रारंभ कर दिया था।

उस नृत्य का गान सुनते ही शांतिचंद्र विचार में पड़ गये। अपने सरल जीवन में उन्होंने ऐसा प्रसंग कभी नहीं देखा था। भीमदेव के युवावस्था के प्रसंग, गजनी के आक्रमण के समय की स्थिति उन्होंने केवल सुना भर था और वे समझ बैठे थे कि पाटन निवासी अब सीधे हो गये हैं। इस समय यह महारव क्या सूचित कर रहा था? इसका परिणाम क्या होगा? इन सब प्रश्नों का रहस्य समझने की बुद्धि शांतिचंद्र में न थी।

'चोबदार! चोबदार! कल्याण नायक को बुलाओ।'

'जी, यहीं हूँ।' कहते हुए कल्याण नायक भीतर आया।

'कल्याण! यह क्या सुनाई पड़ रहा है?'

'महाराज! मैं भी यही सोच रहा हूँ। लोगों की चिल्लाहट मालूम पड़ रही है।'

'नायक! तुम नमकहलाल हो। हम सबके परीक्षा का समय आ गया है। तुम्हें मालूम तो हो ही गया होगा कि कल रात में मीनलदेवी कुछ कार्यवश पाटन से बाहर गई हैं। उनके वापस लौट आने तक हमें सब यथावत् ठीक रखना है। पीछे चाहे जो हो; तुम राजगढ़ के मुख्य फाटक पर रहो और समय देख बंद कर देने के लिए भी तैयार रहना। मैं भी तैयार हो अभी चौक में आता हूँ।'

'महाराज! पर अपने आदमियों का कुछ कहा नहीं जा सकता। कल रात के उपद्रव के पश्चात् उनके मन में कुछ संदेह हो गया है कि रानी जी यहाँ नहीं हैं, जिससे सब निरुत्साह हो गये हैं।'

'कोई चिंता नहीं; तुम फाटक पर रहो, मैं सबको समझाता हूँ। सेठानी! तुम्हें बाहर जाना हो तो जाओ, मैं यहाँ ही रहूँगा।'

अपने वृद्ध पति की दृढ़ता देख मानकुँवर ने उनकी अपने मन में प्रशंसा की और कहा—जी नहीं, अब इस उमर में आपको छोड़कर कहाँ चली जाऊँ?

'बहुत ठीक।' कहकर सेठ तैयार होने लगे और कल्याण फाटक पर पहरा देने चला गया। मानकुँवर चुपचाप बाहर चली गई।

क्रमशः ध्वनि अधिक गंभीर और स्पष्ट होती गई। 'जय सोमनाथ' का घोष सुनाई पड़ने लगा। राजगढ़ की ऊँची खिड़की से शांतिचंद्र ने आते हुए जनसमूह को देखा और उसका बल, उसकी दिशा एवं उसके नायकों को परखने का प्रयत्न किया। उसे दूर से ऐसा लगा मानो एक महानदी पर्वत से प्रथम बार निकलकर सागर से मिलने के लिए जा रही है। घबड़ा कर दंडनायक बैठ गया और सिर पर हाथ रख सोचने लगा। लगभग दस बजे का समय था, कल्याण नायक पुनः दौड़ता हुआ आया और बोला—महाराज! मंडलेश्वर खेंगार जी आये हैं और आपसे तथा मीनलदेवी से मिलना चाहते हैं।

भीतर से घबड़ाते हुए पर कठिन परिश्रम से शांति रख शांतिचंद्र ने पूछा—तुमने क्या कहा?

'मैंने कह दिया है कि रानीजी शोक-वश किसी से मिलती नहीं और आप पूजा पर बैठे हैं।'

'तब!'

'तब उन्होंने कहा कि आपके पूजा से उठने तक मैं ठहरा हूँ जिससे बाध्य हो उन्हें भीतर लाकर नीचे कमरे में बैठा दिया।'

'अच्छा, मैं अभी चलता हूँ, अपने यहाँ सैनिक कितने हैं?'

'डेढ़ सौ के लगभग होंगे।'

'किंतु कोई उपद्रव हो तो उनमें कितने लोग साथ देंगे?'

'ऐसे तो पचास-साठ ही निकलेंगे।'

'अच्छा, बाकी को किसी बहाने से गढ़ के बाहर तुरंत भेज दो। पीछे के फाटक से, समझा! अपने यहाँ दूसरी आवश्यक वस्तुएँ तो हैं न?'

'जी हाँ।'

राजगढ़ केवल महल नहीं होते थे बल्कि उस समय के राजगढ़ उपद्रव के समय राजाओं की रक्षा के लिए एक छोटे से दुर्ग होते थे। सभी प्रकार की आवश्यक सामग्री सदैव तैयार रहती थी जिससे कुछ समय तक वह घेरा भी सहन कर सके।

'अच्छा देखो, तुम चार-पाँच विश्वसनीय सैनिकों को मुख्य फाटक पर रखो और मेरी आज्ञा बिना फाटक न खुले।'

यह आदेश दे शांतिचंद्र नीचे कमरे में आये। मंडलेश्वर खेंगार अपनी श्वेत मूछों पर अधीरता से खड़े-खड़े ताव दे रहे थे।

'कहिये मंडलेश्वर ! इस समय कैसे आना हुआ ?'

'मैं महारानी से मिलना चाहता हूँ।'

'महारानी जी तो शोक में हैं; वे भला कैसे मिल सकेंगी ?'

'वे भीतर से ही बात कर लें, तब भी काम हो जायगा।'

'इस समय ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा ? मिलना कठिन है।'

'क्यों ?'

'माँ जी की कड़ी आज्ञा है कि कोई आने न पाये।'

'अच्छा ! जयदेव कुमार को तो शोक नहीं है, वे कहाँ हैं ?'

'बात क्या है, यह तो बताइये।'

'देखिये, शांतु सेठ ! सबका कहना है कि मीनलदेवी एवं जयदेव कुमार भाग गये हैं; मुझे इसका निश्चय करना है।'

'खेंगारसिंह जी ! अब तक आप कर्णदेव के विशेष मित्र थे; इस समय आप मित्र रूप में आये हैं या शत्रु रूप में ?'

'सेठ ! कर्णदेव का पुत्र मेरे सिर का मुकुट है ! पर इसका यह अर्थ नहीं कि पाटन की शान में बट्टा लगने दूँ ! जयदेव कुमार को बुलाइये। मैं मिलकर तुरंत चला जाऊंगा।'

'तब सुनिये। देवप्रसाद व मुंजाल मिलकर पाटन पर हमला न कर दें, इसको रोकने के लिए रानी मधुपुर गई हैं।'

'शांतु सेठ ! खेंगार को ठगना चाहते हो ?'

'जी नहीं; कभी नहीं ।'

'तब ऐसी बातें क्यों करते हो ? यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारा यति रानी को चंद्रावती की सेना की ओर ले गया और उस सेना को लेकर रानी अब पाटन सर करने के लिए आ रही हैं ।'

'आप कह क्या रहे हैं ? ऐसा क्यों होगा ?'

'और कुछ नहीं, केवल मंडलेश्वरों को घबड़ा कर वशीभूत करने के लिए । शांतु सेठ ! यह चाल सब आपकी ही है । बाहर लोग खड़े हैं, उन्हें क्या जवाब देते हो ?'

'बाहर कौन हैं ? क्यों आये हैं ?'

'कौन ? सभी हैं, यह पूछिये कि कौन नहीं है ? मेहता ! मामला गंभीर है । रानी ने तो पाटन की नाक कटा दिया । अब पछताना पड़ेगा । ये सब अब जान ले लेंगे ।'

'खेंगारसिंह जी ! रानी जो चाहे जो करें, वे मालिक हैं । मैं तो लोगों से कहूँगा कि वे चुपचाप बैठे रहें ।'

'पागल तो नहीं हो गये हो सेठजी ! चंद्रावती की सेना आक्रमण करे और पाटन निवासी चुप बैठे रहें ? यह तो कभी मुँह से भी मत कहियेगा । पाटन में विदेशी पैर रखेंगे ? असंभव ! चाहे जो हो जाय हम तो फाटक बंद कर बैठेंगे और यदि आप नहीं मानेंगे तो आपको भारी पड़ेगा ।'

शांतुसेठ विचलित हो उठे । ऐसे अवसरों पर किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, यह उन्हें मालूम नहीं था । उनके मन में केवल एक ही बात चक्कर काट रही थी कि इस समय लोगों के सामने माथा नहीं झुकाना और रानी के लौटने तक सत्ता यथावत सुरक्षित रखना । अतः वे बोले—मंडलेश्वर ! मेरा धर्म इस समय राज्यसत्ता की रक्षा करना है । बहुत होगा तो मैं अपने गढ़ में बैठा रहूँगा । बाहर लोग जो चाहें, करें ।

'लोग अभी गढ़ में आवेंगे। शांतुमेंट! हठ छोड़ दो, लोगों को शांत करो और पाटन का दरवाजा हमें सौंप दो। हम और कुछ नहीं चाहते।'

'आप जैसे अनेक मंडलेश्वर क्यों न आयें, मैं डिगने वाला नहीं।'

'देखो, मेरी सलाह मान जाओ। पाटन निवासी होकर, उसकी प्रतिष्ठा पर पानी मत फेरो।'

'आप कह चुके न! मेरा धर्म अपने राजा की इज्जत सुरक्षित रखना है और चंद्रावती के जैन आयें तो कौन दूसरे हैं? अपने ही तो हैं न?'

'आपके भले ही हों, हमारे नहीं हैं। अच्छी बात है आप नहीं सुनते तो मैं यह चला। अब मुझे दोष मत देना।'

'खेंगारसिंह जी! अब बाहर नहीं जा सकते, राजगढ़ के द्वार बंद हो चुके हैं।'

मंडलेश्वर खेंगार गर्व के साथ लौट पड़े और भयानक स्वर में उन्होंने पूछा—मुझे बंदी बना रहे हो? साथ ही उनका हाथ तलवार पर जा पहुँचा।

'क्षमा करें! इस समय राजगढ़ का द्वार खुल नहीं सकता।'

'लोगों का क्या होगा जो बाहर खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं?'

'वे प्रतीक्षा करें या अपने-अपने घर चले जायँ। पर खेंगारसिंह जी मेरे जीवित रहते गढ़ के फाटक नहीं खुलेंगे।'

'क्यों?' एक कोमल पर सत्तापूर्ण आवाज दरवाजे से आई। रक्त-हीन, निर्बल पर क्रोध से प्रज्वलित कांतिमान त्रिभुवनपाल दरवाजे में खड़ा था। पीछे उदा उसके पीठ पर एक हाथ से सहारा दिये हुए खड़ा था। साथ में लीलाधर वैद्य एवं सामल भाट भी थे।

शांतिचंद्र एवं खेंगार दोनों ने त्रिभुवन का भव्य रूप देखा, वह उन्हें एक देवदूत-सा प्रतीत हुआ; वे चौंक पड़े।

सामल भाट ने बुलंद आवाज में कहा—शांतु मेहता ! पाटन की प्रजा बाहर पुकार कर रही है, तब द्वार क्यों बंद कर रखा है ? गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक का द्वार कभी बंद सुना है ?

शांतिचंद्र क्रुद्ध हो बोले—भाटजी ! मैं सबको कहाँ तक जवाब देता फिरूँ ? मुझे राज्य संभालना है। किसका सामर्थ्य है जो फाटक खोले ? जो खोलने जायगा उसका सिर धड़से अलग कर दूँगा।

त्रिभुवनपाल को जैसे आग लग गई। उसमें तनिक भी शक्ति नहीं थी। बड़े परिश्रम से शांति रख कर वह बोले—मेहता ! मेरा सामर्थ्य है। जयदेव कुमार नहीं हैं, पिताजी नहीं हैं अतः पाटन की मर्यादा मुझे बचानी है। मैं फाटक खोलूँगा। इस प्रकार स्त्रियों की तरह छिपे रहने से लाभ ?

शांतिचन्द्र और खेंगारसिंह ने युवक को पहचाना। एक घबड़ाया, दूसरा हर्षित हुआ। खेंगार बोले—'कौन, मेरे मंडलेश्वर का पुत्र ! जीते रहो मेरे सोलंकी !'

विनती करते हुए शांतिचन्द्र ने कहा—जरा मेरी भी सुनिये।

'जी नहीं, पाटन की प्रजा बाहर खड़ी हो और उसका स्वागत करने में देर ? शांतु सेठ ! जो आपसे हो सके करिये, मैं फाटक खोलता हूँ। देखता हूँ मुझे कौन रोकता है ?' कहकर त्रिभुवनपाल मैदान में आये। महल से राजगढ़ का कोट कुछ दूर था और इन दोनों के बीच का मैदान किसी विशेष अवसर पर सेना के लिए व्यवहृत होता था। खेंगार सिंह साथ में आये। शांतिचन्द्र सेठ की दृढ़ता जाती रही। खेंगार को पकड़ना सरल था किंतु त्रिभुवनपाल के साथ वह कैसा व्यवहार करे यह उसकी समझ में नहीं आया।

कुमार ! मैं दंडनायक हूँ, मेरी आज्ञा आपको माननी चाहिए।'

त्रिभुवनपाल चुपचाप आगे बढ़ा। खेंगार से अधिक कहना अनावश्यक था। वह तेजी से फाटक के पास गया, कल्याणमल से बातचीत

की। कल्याणमल ने पशोपेश में पड़ शांतिचन्द्र की ओर देखा। दंड-नायक बरामदे में पराजित, निराश, नीचा मुँह किये हुए खड़े थे! थोड़ी दूर पर त्रिभुवनपाल को भी खड़े देखा। उसे वे क्षण बड़े ही विकट मालूम पड़े। वह भी मौन खड़ा रहा। खेंगार ने खिड़की खोल दी। पाँच-सात-दस मनुष्य एक साथ भीतर घुस आये। उन्होंने फाटक खोल दिया।

फाटक के खुलते ही रुका हुआ जन समुद्र भीतर प्रवेश कर चौक में फैलने लगा।

२७

वैद्यजी का हाथ पकड़े हुए त्रिभुवन धीरे-धीरे सभा-भवन में आया। वहाँ पहुँचते ही उसकी दृष्टि भीतर एक द्वार पर पड़ी। वहाँ रमणीय परिचित पर चिन्तित मुख देखकर वह चौंक पड़ा। दाँत पीसते हुए उसने मुट्ठी बाँध ली और हृदय कठोर कर लिया। प्रसन्न प्रेमोल्लास से उमड़ती हुई द्वार के बाहर जाना चाहती थी। उसके आतुर नेत्र त्रिभुवन से स्नेहयुक्त मधुर मुस्कुराहट की आशा रखते थे। किंतु सामने कठोर पाषाण जैसी प्रतिमा देख वह सशंक हो जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई।

त्रिभुवन सिंहासन के सुनहले चरणपीठ के पास नीचे गद्दी पर बैठ गया। वह अधिक समय तक खड़ा नहीं रह सका। नागरिकों का समूह पहले तो एकदम भीतर घुसा पर बाद में और लोग बाहर ही खड़े रहे। राजगढ़ में सभी प्रवेश न पा सकते थे जिससे आज वहाँ पहुँच कर सशंक मानसहित खड़े रहे। हो-हल्ला शांत हो गया। राजगढ़ अनेकों के लिए देवमंदिर समान था। उसकी शांति को

असभ्य व्यवहार से नष्ट करने का किसी को साहस नहीं हुआ। डूंगर नायक जैसे लोग भी शिष्टाचार पूर्वक दूर खड़े रहने का प्रयत्न करने लगे। सामंत गण सेठ एवं अन्य प्रतिष्ठित गृहस्थ ही सभा-भवन में गये। डूंगर नायक आदि यह देखने के लिए कि क्या होता है, द्वार पर ही खड़े रह गये। उदा प्रतिष्ठित लोगों को भीतर ला रहा था। थोड़े ही समय में लोगों को विश्वास हो गया कि उदा मारवाड़ी पाटन की नाक रखने में समर्थ है। सबके आ जाने के पश्चात् उदा त्रिभुवन के पास जाकर बैठ गया। इसके पूर्व कि किसी का ध्यान इस अविनय की ओर जाय कि वह बड़े-बड़े सेठ सामंतों से आगे बढ़ कर बैठा है, अपने दुपट्टा से उदा त्रिभुवन को हवा करने लगा। लीलाधर ने सबसे बैठने के लिए अनुरोध किया। सब लोग बैठ गये।

इस समय शांतिचन्द्र की आँख के नीचे अँधेरा छा रहा था। त्रिभुवनपाल से थोड़ी दूर हाथ बाँधे वह शोकातुर हो खड़ा था। उसे यही चिंता थी कि वह रानी को क्या जवाब देगा।

सबके शांत हो जाने पर खेंगार ने कहा—त्रिभुवनपाल जी! आप अब हमारे शिरोमणि हैं, ऐसा समय ही आ गया है कि कुछ करना आवश्यक है।

त्रिभुवनपाल—खेंगार चाचा! आप बड़े हैं; ऐसे अवसर पर पाटन की लाज रखना आपका काम है। शांतिचंद्र जी! आप क्या कहते हैं?

शांतु सेठ मानो निद्रा से जागे हों, इस प्रकार, सिर उठा कर ऊपर देखा। बड़ी कठनता से बोले—महाराज! कृपा कर मेरी प्रार्थना जरा सुनें। जैसे आप पाटन के हितैषी हैं वैसे ही मैं भी हूँ। मेरा भी यही प्रयत्न रहा है कि सोलंकियों का सूर्य सदा चमकता रहे। कुछ मेरी भी मानिये।

दो-चार आगे वाले बोल उठे—क्या? क्या? कहिये न!

त्रिभुवन—शांतु सेठ! आप बैठ कर शान्ति से कहें।

धीरे-धीरे बैठते हुए मंत्री ने कहा—भैया! आप सब लोग क्यों इतने उतावले हो रहे हैं? देवी, राज्य में शांति रखने के लिए ही पाटन से बाहर गई हैं। एक ओर क्रुद्ध मुंजाल मधुपुर में पड़े हैं, दूसरी ओर रुष्ट मंडलेश्वर की सेना मेरल में पड़ी है। इन दोनों का समाधान कर कल संध्या तक देवी वापस लौट आने वाली हैं। आप व्यर्थ संदेह कर रहे हैं। कल संध्या तक प्रतीक्षा तो कर लें; तब जो करना हो करें। इस थोड़े समय के लिए उपद्रव मचाकर व्यर्थ अपने राज्य-शासन को क्यों बिगाड़ते हैं? आप सभी लोग बुद्धिमान हैं, जरा विचार तो कीजिये। एक दिन में कौन-सा आसमान टूट पड़ेगा?

सबने सुना, कितनों को दंडनायक का कथन सत्य प्रतीत हुआ।

उदा ने सोचा कि यदि यह गड़बड़ी शांत पड़ गई तो मेरे सब किये-कराये पर पानी फिर जायगा। वह बोला—किंतु हम फँस जायँ तब?

दो-एक ने अनुमोदन किया—हाँ, यह बात तो ठीक है।

लीलाधर—हम सब फाटक बंद रखेंगे। तब कैसे फसेंगे?

विनती करते हुए दंडनायक ने कहा—हाँ, जिसकी कहिये मैं शपथ लेने के लिये तैयार हूं। किसी शत्रु को नहीं आने दूँगा, और कुछ! सभी फाटकों पर अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने बड़ा कड़ा पहरा बैठा दिया है।

वस्तुपाल सेठ—हाँ, यह बात तो असत्य नहीं जान पड़ती।

खेंगार, त्रिभुवन सभी ने देखा कि घबड़ाने की कोई बात नहीं है पर उदा इधर-उधर झाँक रहा था। उसने धीरे से पूछा—चंद्रावती की सेना कहाँ तक आ पहुँची है इसका पता लगाया? सीमा पर आ गई हो तो?

'बिलकुल झूठ है। मुझपर भरोसा नहीं है? मधुपुर से जरा भी आगे नहीं आई है, वह वहीं रहेगी।'

'तब कोई चिंता की बात नहीं है।' कह कर दो-चार व्यक्ति उठने की तैयारी करने लगे। उनका जोश शांत पड़ गया था और यदि सब ठीक हो तो हथियार उठाने की किसी की भी इच्छा न थी। शांतु मेहता को भी बादल साफ होता मालूम पड़ा।

इतने में बाहर खड़ी भीड़ एकाएक जोर से चिल्ला उठी। बाहर हल्ला-गुल्ला बढ़ा और 'जय सोमनाथ' का घोष होने लगा। खेंगार त्रिभुवन आदि आपे से बाहर हो गये। सामान्य जन समूह मर्यादा भंग कर उपद्रव करे, यह किसी को नहीं रुचा। त्रिभुवन ने कठोर स्वर में पूछा—कल्याण नायक! यह हल्लागुल्ला क्यों हो रहा है?

कल्याण नायक इसका उत्तर दे, इसके पहले ही डूंगर सिंह लोगों को ठेलता हुआ भीतर आया। उसके हाथ में एक पत्र था।

दो-तीन व्यक्तियों ने पूछा—क्या है? क्या है?

नीचे झुककर प्रणाम करते हुए डूंगर बोला–महाराज! अन्नदाता! बिखराट से एक दूत रानी जी को देने के लिए यह पत्र लाया है।

द्वार पर खड़े दूत की ओर त्रिभुवन ने देखा। ऐसा मालूम होता था कि वह बड़ी तेजी से आया था। उतावली एवं आतुरता से हाँफ रहा था।

त्रिभुवन ने कहा—लाओ देखूँ।

पत्र देते हुए डूंगर नायक बोला—लीजिये, मेरे अन्नदाता!

पत्र पढ़ते ही त्रिभुवन की भौंहें चढ़ गईं। आवेश से वे खड़े हो गये और दंडनायक की ओर क्रोध से देखते हुए गरज उठे—शांतु सेठ! आप किसे फुसला रहे हैं? चंद्रावती की सेना तो बिलकुल निकट आ पहुँची।

सब लोग एकदम खड़े हो गये। बोल उठे—क्या? क्या?

पत्र पढ़ते हुए त्रिभुवन बोले—हमें शांतु सेठ बहला रहे हैं। देखिये बिखराट का देवजी मुखिया संदेश भेज रहा है कि चंद्रावती के सैनिकों ने यहाँ पड़ाव डालना प्रारंभ कर दिया है।

यति ने कुछ टुकड़ियों को विखराट की ओर भेज दिया था क्योंकि रानी का विचार लौटते समय वहाँ पड़ाव डालने का था। विखराट के मुखिया को इसका कुछ भी पता नहीं था जिससे पहली टुकड़ी के गाँव में प्रवेश करते ही उसने रानी के पास यह संदेश भेजा। पत्र के शब्द सुनते ही जैसे बिजली कड़क उठी। सब लोग स्तब्ध हो खड़े रह गये।

शांतिचंद्र ने आकाश की ओर देख ईश्वरी सहायता की प्रार्थना की। उसने देखा कि उसका अब कोई सुनने वाला नहीं है। अंतिम प्रयत्न करते हुए वह बोला—क्या है? हमें दूत को बुलाकर पूछना चाहिये।

आगे बढ़कर उदा उच्च स्वर में बोला—क्या है क्या? आपकी मति मारी गई है क्या! हमें बात में फँसा कर समय निकालना चाहते हैं? हमें धोखा देते हैं? महाराज! जो कुछ करना हो जल्दी कीजिये।

सेना थोड़ी दूर पर आ पहुँची जानकर कितनों ही का हृदय काँप उठा। तिलकचंद बढ़-बढ़ बातें करने में बड़ा शूर था; पर सचमुच के युद्ध के समय वह घबड़ा उठता था। वह बोला अरे उदा! जरा शांति तो रख।

सामल भाट अब तक पैर में दुपट्टा बाँधे बैठा बैठा झोका खा रहा था। जब सब लोग खड़े हुए तब वह भी धीरे धीरे खड़ा हुआ। वह बोला—शांति! शांति! कौन बोल रहा है? इसका नाम तो बताओ। शांति कहते हुए इसे लज्जा नहीं मालूम पड़ती? यहाँ कोई असल माँ का जन्मा नहीं है जो इसकी जीभ खींच ले?

बिचारा दंडनायक उत्तेजित सभा में अकेला था और उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। पत्र ने आहुति में घी का-सा काम किया। अभी भी उसे आशा थी कि लोगों को धीरे धीरे समझा बुझा कर दो दिनों तक शांत रख सकेगा। कुमारपाल पर उसे पूर्ण विश्वास था; सोचा कि कल संध्या समय तक भी वह रानी को नगर में ले आये

तब उसका उत्तरदायित्व पूर्ण हो। सेठ जी भाट की जीभ से परिचित थे जिससे उसे शांत साथ ही अपना बचाव करते हुए बोले—भाटजी! जरा शांत रहिये, मुझे कहने दीजिये।

किंतु सामल भाट इस प्रकार भला शांत होनेवाले थे। 'शांत रहूँ? शांत रहूँ? बहुत देर तक शांत बैठा रहा और आप जैसे लोगों की बात सुनता रहा। शांतु मेहता! जिस पिता ने चार पुत्रों के साथ सोमनाथ के आगे केसरिया किया, उसी का पुत्र हो तू पाटन को धूल में मिलाने के लिए पैदा हुआ है? और ये सब क्या देख रहे हैं? न जाने कब से माथा-पच्ची हो रही है? वनराजदेव के पाटन में ऐसे कायर!'

अंधे भाट की सुसंस्कृत, वृद्धावस्था से निर्बल; तब भी बुलंद आवाज प्रतिध्वनित हो उठी। सामल भाट का नाम संपूर्ण पाटन में प्रसिद्ध था; उसका गुण-कीर्तन स्त्रियाँ लोक-गीतों में गातीं तथापि बहुत कम लोगों ने उसे देखा था। अतः सभी लोग चकित हो उसे देखने लगे। पहले भाटजी सिर हिलाते रहे, पश्चात् आधा कवित्त और आधा गद्य में बोलने लगे; मुँह से थूक उड़ रहा था। कहते-कहते वृद्ध की आवाज वैसी ही प्रभावशाली हो गई जैसे मरता हुआ योद्धा अतुल पराक्रम दिखावे। उसमें से कंपन जाता रहा, झुका हुआ शरीर तन गया, निस्तेज नेत्रों में विचित्र तेज आ गया। जिन शब्दों ने भीमदेव में जीवन डाला था वे ही शब्द पुनः गूँज उठे और वीरता का दावानल प्रज्वलित हो उठा।

वृद्ध को शांत करने के विचार से त्रिभुवन ने कहा—भाटजी!

पर उत्तेजित सामल का आवेश अब शांत होनेवाला नहीं था।

वृद्ध बोलने लगा—बेटा! बेटा! मेरा सोलंकी! यह क्या समय आ गया? कहाँ हैं मेरे प्रभावशाली पाटन निवासी? कहाँ हैं मेरे शूरवीर सोलंकी? बेटा! यह दिन देख मेरा खून खौल उठता है।

मैंने तो पाटन की असीम वीरता देखी है; अपनी टेक के लिए पिता को बीस-बीस पुत्रों की रणयज्ञ में आहुति देते हुए देखा है; गुजरात के गौरव के लिए कच्चे कदली जैसे बालकों को केसरिया करते हुए देखा है: प्रेमविह्वल प्रणयी को युद्ध में भेजने के लिए सतियों को सजीव अग्नि में प्रवेश करते हुए देखा है। भीम और विमल के साथ मैं लड़ा हूँ, डेढ़ डेढ़ महीने इस कोट में रह कर अफगानों को परेशान कर भगाया है। इस समय तो एक ही शब्द उच्चरित होना चाहिये, एक ही मंत्र जपना चाहिये, उसी मंत्र के उच्चारण से ही भीरभंजन भगवान की आराधना करनी चाहिये।

श्रोतागण की उत्कंठा क्षणभर के लिए आतुरता के शिखर पर पहुँच गई। भाटजी ने बुलंद आवाज में उसका उत्तर दिया 'जय सोमनाथ!'

क्षणभर के लिए गंभीर श्मशान जैसी शांति रही; दूसरे ही क्षण वहाँ और बाहर खड़े समूह ने उस शब्द को अपना लिया। 'जय सोमनाथ!' की भयंकर घोषणा गूँज उठी; उत्साह के आवेश में त्रिभुवन एवं खेंगार ने अपनी-अपनी तलवार खींच ली, दूसरे ही क्षण अग्नि में आहुति देने पर जैसी ज्वालायें भभक उठती हैं, ठीक वैसे ही अनेक तलवारें बाहर निकल पड़ीं।

त्रिभुवन ने आगे बढ़कर कहा—पाटन के वीरों! भाटजी ने आज दूसरी बार पाटन को बचाया है। अब एक ही मार्ग है, हमें फाटक बंद कर युद्ध के लिए तैयार होना चाहिये। खेंगार सिंह, आप अनुभवी हैं, अतः अब यह कार्य आप ही पार लगावें।

मौन खड़े दंडनायक की ओर घूमकर वस्तुपाल ने कहा—शांतु सेठ का क्या होगा? वे बोलते क्यों नहीं?

दयनीय शांतिचंद्र की ओर सभी तिरस्कार से देख रहे थे।

उदा बीच में बोल उठा—शांतु सेठ का क्या होगा ? वे अब एकांत में बैठ ईश्वर भजन करें।

वस्तुपाल में कोषाध्यक्ष बनने की विकट आकांक्षा थी पर अपने मुँह से कैसे कहे ? उसने उदा की ओर प्रार्थना की दृष्टि से देखा और आँखों में अपनी अभिलाषा व्यक्त कर बोले—पर, उदा जी ! कोष की रक्षा कैसे होगी ? फिलहाल यह अत्यावश्यक वस्तु है।

उदा इस प्रकार हाथ में आई बाजी जाने देने वाला व्यक्ति नहीं था। वह त्रिभुवन को संबोधित करते हुए बोला—महाराज ! मेरी बात मानिये तो इस समय कोषाध्यक्ष निर्वाचित करना उचित न होगा। घड़ी में क्या होगा कहा नहीं जा सकता ! इससे अच्छा तो यह होगा कि कोष बंद कर पहरा बैठा दीजिये ताकि कोई झगड़ा ही न रह जाय।

खेंगार ने कहा—किंतु धन बिना—

उदा—धन-धन क्या करते हैं ? जब तक यह उत्पात चलता रहेगा, मैं अपने पास से खर्च दूँगा; बस कि और कुछ ?

सभी सेठ देखते रह गये; इस मारवाड़ी की अक्ल क्या मारी गई है। सभी राजपूतों को यह बात पसंद आई क्योंकि वे जानते थे कि सबकी अपेक्षा उदा में उदारता अधिक है।

इसी समय और कुछ कार्य होने के पूर्व सामल भाट लड़खड़ा कर जमीन पर गिर पड़े। बोलने के पश्चात् सिर सीने पर झुकाकर वे खड़े-खड़े झूम रहे थे। आवेश समाप्त होते ही उनकी अशक्ति एवं वृद्धावस्था ने पुनः उन्हें धर दबाया और जीवन-दीप बुझने लगा। जमीन पर गिरते ही सबका ध्यान उनकी ओर गया।

लीलाधर वैद्य ने नाड़ी हाथ में ली और 'शिव ! शिव ! शिव !' वे पुकार उठे।

संपूर्ण सभा शोक-मग्न हो गई। जिस भाट ने प्राचीन वीरता

को सजीव कर सच्चे जीवन की ज्योति प्रकट की वह अब न रहा। यवनों को पराजित करने वाले पाटन निवासियों का गुणगान करने वाला सामल भाट उनके साहसहीन पुत्रों को पूर्वजों का संदेश बतला कर चला गया। सामल ने दो बार पाटन की रक्षा की: भीम के साथ लड़ते हुए अपने बाहुबल से एवं उनके प्रपौत्र के पास रहकर अपने शब्द-बल से।

२८

प्रसन्न को राजतंत्र के उपरांत अनेक वस्तुओं पर ध्यान देना था। उसका हृदय बेचैन था। इतने लोगों के उपस्थित रहने पर भी भाट जी के चुभते कटाक्षों को भुलाकर, वह त्रिभुवन की ओर द्वार से देख रही थी। भाटजी के गिरते ही वह पास में खड़ी स्त्रियों में से निकल मात्रा के पास गई: और बोली—मात्रा बहन! अपने पिताजी को तो जरा बुला!

'क्यों? पीड़ा हो रही है या किसी की पीड़ा मिटानी है?'

'बहुत बढ़-बढ़ कर बोलने लगी, क्यों? पर गणपति दादा कहाँ गये? देखो, देखो, जो लोग भाटजी को उठा ले गये, उनके साथ हैं?'

'पर काम क्या है?'

'तेरा सिर! जा न! मेरा तो माथा दुखने लगा।'

'कहो न कि काम क्या है?'

'अच्छी बात है मैं ही जाती हूं. बिना अपने मरे स्वर्ग नहीं दिखाई देता!' कह कर प्रसन्न तेजी से पीछे की ओर जाकर लीलाधर वैद्य को अलग बुलाकर बोली—वैद्यराज! मृत तो वापस आ नहीं सकता, पर जीवित का भी कुछ ध्यान है?

'क्यों, क्या हुआ ?'

'मुझे तो बाघ ने भी नहीं पूछा। पर कल तो त्रिभुवन—

वृद्ध जोर से बोल उठा—अरे हाँ-हाँ ! मेरी भी बुद्धि सठिया गई है ? किंतु यह सोलंकी वीर तो अब युद्ध की तैयारी करेगा। अच्छी बात है, मैं इसे ले आता हूँ। प्रसन्न ! तुम उसके बिछौने का प्रबंध करो।

'आप ले तो आइये।' कहकर प्रसन्न वहाँ गई जहाँ त्रिभुवन पहले सोता था, और सोने का प्रबंध करने लगी।

मात्रा ने आकर प्रसन्न से कहा—क्यों ? चोरी पकड़ गई न ?

'कैसी चोरी ?'

'खड़ी रहो, तुम्हारा मुँह देखूँ। इसमें लजाने की क्या बात है ? प्रसन्न बहन को कभी किसी ने बिछौना बिछाते हुए भी देखा है ?

'चुप रह, नहीं तो मुँह तोड़ दूँगी। चल-चल देख तेरे बाप की आवाज सुनाई पड़ रही है। इधर से चल, इधर से।' कह कर प्रसन्न मात्रा के साथ दूसरे द्वार से चली गई, किंतु प्रसन्न अधिक दूर नहीं गई। मात्रा ताड़ गई और मुँह मटका कर चली गई।

प्रसन्न ने वैद्य जी को कहते हुए सुना—'अच्छा अब दो-चार घंटे चुपचाप सो रहो, अब तुम्हारा अधिक काम नहीं पड़ेगा।'

'किंतु-किंतु····थके हुए त्रिभुवन की आवाज सुनाई दी।'

'किंतु-विंतु कुछ नहीं, तुम सो जाओ। यदि कल युद्ध छिड़ गया तो क्या करोगे ? आज आराम कर लोगे तो कल तैयार हो सकोगे।'

'अच्छा वैद्यजी, अच्छा ! आपकी ही बात सही, मैं लेट तो जाऊँगा किंतु नींद नहीं आई तब ?'

'भगवान का नाम लेते रहो, यह दवा पीओ; ठहरो, वह पट्टी ठीक करने दो—इससे घाव कितनी जल्दी भरता है ? अच्छा, अब मैं जाता हूँ, देखो, मेरे आये बिना उठना मत। '

'बहुत अच्छा, और कुछ ?'

ऐसा जान पड़ा कि त्रिभुवन लेट गया। लीलाधर का भारी कदम कमरे से बाहर जाता हुआ सुनाई दिया। दो-एक क्षण ठहर प्रसन्न ने कमरे में सिर डालकर देखा। निश्चिंत हो त्रिभुवन चारपाई पर पड़ा था पर उसे निद्रा नहीं आ रही थी। उसका चित्त दो दिनों के अनुभवों से व्यग्र हो उठा था। उसने एक गहरी साँस ली। निराधार हो इस प्रकार पड़े रहना उसे अच्छा नहीं लग रहा था।

प्रसन्न आकर उसके सिरहाने खड़ी रही। उसकी परछाई पड़ते ही त्रिभुवन चौंक उठा और उसने उधर देखा। प्रसन्न को देखते ही उसके चेहरे पर अनुराग पर तुरंत ही कठोरता छा गई। उसका आर्द्र, दुःखी हृदय प्रिय सखी से मिलने के लिए तरसता था किंतु जिस अवसर पर वे विलग हुए थे उसका स्मरण आते ही उसका भाव बदल गया। प्रसन्न का हृदय भी दुःखी एवं असहाय-सा हो गया।

उसने जरा हिचकते हुए पूछा—त्रिभुवन! कैसे हैं—हो?

त्रिभुवन के मस्तिष्क में एक विचार आया; प्रसन्न को कहाँ देखा था यह स्मरण नहीं आ रहा था। स्वप्न में, मूर्च्छितावस्था में, कल लड़ते-लड़ते—कहाँ? उसके साथ एक दूसरी स्त्री को भी देखा था; उसका निर्मल सौन्दर्य कैसा था? वह कौन थी? उसका स्मरण आते ही हृदय क्यों द्रवीभूत हो उठा? सवेरे के परिश्रम से थका हुआ मस्तिष्क उलझन में पड़ गया। कोई भी प्रत्युत्तर दिये बिना उसने अपना दोनों हाथ सिरपर रख लिया। प्रसन्न को कहाँ और किसके साथ उसने देखा था? विचित्र रूप से वह प्रसन्न की ओर देखता रहा।

त्रिभुवन का मौन देख प्रसन्न का हृदय फटा जा रहा था। त्रिभुवन इस प्रकार भावहीन एवं विलग क्यों है? पहले के समान क्यों नहीं बोलता? उसने मधुरता से पूछा—क्यों, सिर दुःख रहा है?

अर्द्ध तिरस्कार से प्रसन्न की ओर देखते हुए धीमे स्वर में त्रिभुवन ने कहा—सिर? मेरा सिर टिकाने नहीं है। प्रसन्न! मुझे स्मरण नहीं

आ रहा है कि मैंने तुम्हें कहाँ देखा था ? मुझे भ्रांति क्यों हो रही है ?

'भ्रांति कैसी ?'

आतुरता से त्रिभुवन ने पूछा—तुम्हें मैंने कहाँ देखा था ? तुम्हारे साथ कौन था ?

'मेरे साथ ? मीनलबूआ, हाँ—' कहते-कहते प्रसन्न रुक गई।

'क्यों, रुक क्यों गई ?'

दीनतापूर्ण आवाज में प्रसन्न बोली—कुछ नहीं, त्रिभुवन ! आप मुझसे क्रुद्ध क्यों हैं ? इस प्रकार घूर क्यों रहे हैं ? त्रिभुवन ! आप अवंति का झूठा संदेह कर रहे हैं। मुझे बूआजी अपने साथ ले गई थीं किंतु मैं आपके लिए भाग आई। यहाँ आने के लिए रातभर दौड़ा-दौड़ी की, अभी भी आपको विश्वास नहीं आ रहा है ? रूठना-मनाना तो कई बार हो चुका इस समय फिर कैसा रूठना ? आपका हृदय क्यों ऐसा हो रहा है ?

प्रसन्न के ये शब्द व्यर्थ गये।

उसने पूछा—प्रसन्न मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला।

अपनी बात की ओर कुछ भी ध्यान न दिये जाने से मान भंग हो प्रसन्न ने पूछा—कौन-सा प्रश्न ?

भावहीनता एवं कठोरता से त्रिभुवन ने पूछा—तुम्हारे साथ कौन था ?

'मेरे साथ ? सच कहूँ ? आप—तुम व्याकुल तो नहीं हो उठोगे ? (कुछ ठहर कर) मेरे साथ तुम्हारी माँ थीं।'

आँखें फाड़ कर खड़े होते हुए त्रिभुवन ने पूछा—ऐं ! कहाँ से आ गईं ?

पास में आकर प्रार्थना करते हुए प्रसन्न बोली—आप व्याकुल न हों, आपकी तबीयत खराब है, पीछे मैं सब कुछ बता दूँगी। इस समय शांत हो चुपचाप सो जायँ। वैद्यजी अभी क्या कह गये हैं ?

अंतर्वेग पर कठोरता का आवरण चढ़ाकर प्रसन्न को दूर ढकेलते हुए त्रिभुवन बोला—नहीं-नहीं, प्रसन्न ! जो कुछ कहो मैं करूँ, इस समय धैर्य रखने का मेरे में साहस नहीं है। जो चाहे मुझसे ले लो, पर मुझे सब बताओ।

प्रसन्न का हृदय पागल हो उठा, लज्जा ने उसे बेचैन बना दिया। प्रेम के उमंग में उसे सब कुछ भूल गया।

'त्रिभुवन ! मेरी एक बात मान लो, तब जो कहो मैं करूँगी।'

'क्या ? बोल-बोल; मेरा दम घुट रहा है।'

'मुझे अपने पास रहने दो।' कह कर प्रसन्न घुटने के बल बैठ गई, और त्रिभुवन के पैरों पर हाथ रख चातकी की आतुरता से त्रिभुवन के शब्द-बिन्दु की आशा से उसके मुख की ओर देखने लगी।

त्रिभुवन का हृदय इस समय दूसरी ही तान मार रहा था। प्रसन्न को उठाने के लिए हाथ बढ़ाते हुए वह व्यग्रता से बोल उठा—प्रसन्न ! तुम्हारी शर्त मुझे स्वीकार है। मुझे बताओ, जल्दी बताओ कि माँ कहाँ से आई, कहाँ हैं, दिखाई क्यों नहीं पड़ रही हैं ?

प्रसन्न ने उसका हाथ हृदय से लगा लिया और खड़ी होकर बोली—त्रिभुवन ! प्यारे ! हमें मालूम नहीं था, पर हंसा माता जी गढ़ में ही थीं। सैनिक आप पर कल आक्रमण कर रहे थे उस समय उन्होंने आपको देखा और आपको बचाने की बूआजी से प्रार्थना की। बूआजी उस समय हंसा माताजी को आपके पिताजी के पास भेजने का प्रयत्न कर रही थीं किंतु वे स्वीकार नहीं कर रही थीं। बूआजी ने वचन माँगा कि हंसा माँ आपके पिताजी के पास जायँ तभी वे आपको बचायेंगी। उन्होंने स्वीकार किया और आप बच गए।

विकारलता से प्रसन्न को देखते हुए त्रिभुवन ने पूछा—सच कह रही हो ? यह सब जाना कहाँ से ?

'मैंने पीछे बूआजी को आनंदसूरि के साथ बात करते हुए सुना और हंसा माँ ने भी मुझे बताया था।'

आक्रंद करते हुए त्रिभुवन चिल्ला उठा—माँ, माँ। मेरी माँ इस प्रकार आई और चली गई! किंतु इतने वर्षों पश्चात् पिताजी के पास भेजने का कारण? अच्छा—

यह कह नया प्रकाश पड़ा हो इस प्रकार त्रिभुवन ने पुनः सिर पर हाथ रख लिया।

'क्या है?'

'पिताजी और मुंजाल मामा आज प्रातःकाल मिलने वाले थे। मीनल चाची को इसका पता था क्या?'

'अवश्य होगा! उन्हें शांत रखने के लिए ही गई हैं।'

'बहुत ठीक, माँ को भेज कर पिताजी एवं मामाजी को अलग रखना होगा। अब मैंने समझा। चाची, धन्य है तुम्हारी बुद्धि!'

त्रिभुवन यह कह मुट्ठी बाँध कर इधर से उधर घूमने लगा। प्रसन्न चुपचाप खड़ी रही। उसने देखा कि त्रिभुवन का मस्तिष्क बड़ी तेजी से कुछ विचार कर रहा है।

प्रसन्न ने डरते-डरते रौद्र स्वरूप धारण करने वाले त्रिभुवन से कहा—तब विखराट की सेना आने का अर्थ तो यह हुआ कि मुंजाल को भी आधीन कर लिया।

किसी भयंकर निश्चय पर पहुँच गया हो इस प्रकार प्रसन्न को संबोधन करते हुए उसने पूछा—प्रसन्न! तुम मुझसे विवाह करना चाहती हो?

नीची दृष्टि कर प्रसन्न ने कहा—कितनी बार पूछोगे?

कठोरता से दबाये हुए आवेग से उसने पूछा—किस आशा से?

इस प्रश्न का कारण न समझ कर वह बोली—आशा? तुमसे पहले स्वर्ग जाने की आशा से!

'मंडलेश्वर एवं मीनलदेवी के बीच सुलह कराने के लिये मुझसे विवाह करना चाहती हो ?'

'त्रिभुवन ! त्रिभुवन ! यह क्या ? जहाँ तुम वहाँ मैं। जो तुम्हारी सलाह वह मेरी। मुझे क्या ?'

'अच्छा, जो मेरा व्रत होगा, उसे मानोगी ? बूआजी के दिन पूरे हो गये हैं। जीवित रहते यदि मीनलदेवी को पाटन में पैर रखने दूँ तो सोमनाथ भगवान की शपथ ! यह मेरी प्रतिज्ञा है। हो तैयार मेरी सहचरी बनने के लिए ?'

कुछ सोच कर प्रसन्न ने त्रिभुवन की ओर देखकर कहा—जो आपकी प्रतिज्ञा वह मेरी। संतुष्ट हुए ! किंतु आपका शरीर—

'बहुत ठीक, प्रसन्न ! मैं निश्चिंत हुआ; मेरा हाथ तरस रहा है। अब देखता हूँ कि मीनलदेवी इस भूमंडल को और कितने समय तक अपने भार से दबाये रहती हैं ?'

यह कह कर सिंह के समान पैर रखता हुआ वह वहाँ से चल पड़ा, जैसे शरीर की सब निर्बलता दूर हो गई हो।

निराश, खिन्न हृदय से प्रसन्न खड़ी रही। उसने त्रिभुवन के साथ समाधान किया; पत्नी बनना स्वीकार किया, प्रेम के लिए माँ-बाप विहीन लड़की को पालन करने वाली बूआ को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने की शपथ ली तथापि हृदय रो रहा था। थोड़ी देर बाद वह बैठ गई और हाथ पर सिर रख कर रो पड़ी।

२९

रानी से अलग होते समय आनंदसूरि के मस्तिष्क की स्थिति बड़ी ही विचित्र प्रकार की थी। रातभर का जागरण, बहुत दिनों की

आहत प्रवृत्ति, कितने ही वर्षों के परिश्रम का निकट ही दिखाई पड़ने वाला परिणाम ! इन सबसे उसका चित्त विक्षिप्त जैसा हो गया था। उसे एक ही वस्तु सामने दीख पड़ रही थी: श्रावकों का उदय। पहले तो यह वस्तु बहुत ही पास आती हुई दीख पड़ी। जैन रानी, जैन दंडनायक, स्वयं मंत्रणादाता, चंद्रावती की सेना, तब गुजरात में जैनों के लिए बाकी क्या रह गया ? जहाँ शांति हुई कि जैनमत का डंका संपूर्ण भरतखंड में बजने लगेगा एवं जैन मंदिर दसों दिशाओं में दिखाई पड़ने लगेंगे।

पीछे बाजी बिगड़ती जान पड़ी। रानी को धर्मावेश की अपेक्षा सत्ता अधिक प्रिय थी। शक्तिहीन शांतिचंद्र, सामने मुंजाल एवं देव-प्रसाद ! यति ने देखा कि यदि दो-एक दिन में स्थिति नहीं सुधरी तो सब किये-कराये पर पानी फिर जायगा। किसी प्रकार सीधा पासा फेंकना चाहिए। पर कैसे ? सैनिकों को पीछे छोड़ वह शीघ्रातिशीघ्र बाघेश्वरी माता पहुँचा। वहाँ कोई दीख नहीं पड़ा; यति मनमें प्रसन्न हुआ। अवश्य ही हंसा के आ जाने से यथा निश्चित घटना घटी। वह मंदिर के चबूतरे पर बैठ कर सैनिकों के आने की प्रतीक्षा करने लगा। रानी के साथ किये हुए विचार और मंत्रणानुसार मंडुकेश्वर को घेर कर बैठने का उसने निश्चय किया। इतना समय कैसे बीतेगा ? उसकी रग-रग में खून जोर मार रहा था।

'महाराज ! लीजिये यह प्रसाद !' कहता हुआ हाथ में त्रिशूल, कंधे पर चूनरी रखे और पैर में खड़ाऊँ पहने हुए माता का पुजारी हाथ में नारियल की गिरी लिए खड़ा था।

आनंदसूरि ने तिरस्कार से सिर उठा कर ऊपर देखा और हाथ ऊपर उठाया। माता एवं महादेव का सम्मान करने के लिए वह उस समय तैयार न था। जैन-मतके दिग्विजय में उसे हीनता दीख पड़ी। वह बोला—पुरोहित जी क्षमा कीजिये, मुझे उपवास है।

हँसकर पुजारी बोला—महाराज ! माताजी के प्रसाद के लिए उप-वास ! जगदम्बा माँ से भिक्षा माँगो कि आपकी सब मनोकामना पूर्ण हों।

'पुरोहित महाराज ! यति के साथ वाद-विवाद कर किसी ने कभी लाभ उठाया है ?'

कटाक्षपूर्वक पुरोहित ने उत्तर दिया—आप यति हैं ! इस भेष से तो नहीं जान पड़ता—फिर भी यह विवाद क्यों ? मैं तो अपनी माँ का दास हूँ, उनकी पूजा ही मेरा जीवन है। महाराज ! और सब आप जैसों को सौंपा।

'धीरे-धीरे सभी कुछ सौंप दोगे ! ये मंदिर भी अब न रहेंगे। अब कर्णदेव नहीं, मीनल देवी हैं।'

सिर हिलाते हुए पुजारी बोला—यति जी ! चाहे मीनलदेवी आयें या कोई और यह भरतखंड तो जगज्जननी बाघेश्वरी का है और रहेगा। उस शक्ति का साम्राज्य अचल है और अचल बना रहेगा। आप तो विद्वान हैं, अतः आपको जो चाहे सो दिखाई पड़े, किन्तु मुझे तो सभी धर्मानुयायी माँ को ही प्रणाम करते हुए दीख पड़ते हैं।

यति ठट्ठा मार कर बोला—ऐसा तो सभी कहते हैं, किन्तु सत्य क्या है—यह ज्ञात तो उस समय होगा जब पृथ्वी पर जैनों का डंका बजेगा।

'बजे ! पर महाराज, मैं तो इतना जानता हूँ कि भारत में भोलानाथ एवं माँ अंबा भवानी ही पूजी जायेंगी। एक रूप में अथवा दूसरे रूप में। एक काल में अथवा अनेक काल में ! और तो सब बातें हैं।'

आनंदसूरि को ये शब्द मार्मिक लगे तथापि खिलखिला कर वह हँसने लगा। मुहम्मद गजनी द्वारा सोमनाथ की मूर्ति गजनी ले जाने पर कटाक्ष करता हुआ यति बोला—तभी तो भोलानाथ गये हैं गजनी और अंबा पहुँची हैं पावागढ़।

'आपके चर्मचक्षु से। मेरी आँखें तो आपमें भी इन दोनों का प्रभाव देख रही हैं।'

'किस प्रकार?'

'आपका अभिमान ऐसा न हो तो सबका विरोध आप कर ही नहीं सकते। आपका गर्व दलन करने के लिए संपूर्ण गुजरात एक होगा, समझे? अच्छा महाराज! अब मैं चला, मेरे पाठ का समय बीता जा रहा है।'

कहकर पुजारी शांति पूर्वक चला गया।

दो वाक्य यति के कान में गूँजते रहे। 'भारत के भोलानाथ एवं मेरी अंबा भवानी ही पूजी जायँगी; एवं आपका गर्व दलन करने के लिए संपूर्ण गुजरात एक होगा।' उसकी आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया। 'क्या यह पुजारी भविष्यवेत्ता है? ऐसे मार्मिक वाक्य उसने कैसे कहे? क्या यह सच होगा? मेरे स्वप्न झूठे सिद्ध होंगे?' भग्न हृदय से यति उठ खड़ा हुआ। मानो उसका सब हवाई-किला नष्ट-भ्रष्ट हो गया हो। उसे ऐसा लगा कि उसकी आकांक्षा सिद्ध नहीं होगी। जैनमत में जैसी मेरी श्रद्धा है वैसी ही क्या दूसरे अनुयायियों की भी है? येन-केन प्रकारेण विजय प्राप्त कर उसका प्रसार करने के लिये कितने श्रावक तैयार हैं? बहुतेरे हिंदू धर्म तथा इसमें अधिक भेद नहीं मानते। बहुतेरे ब्राह्मणों की सत्ता स्वीकार करते हैं; और क्रिया कर्मों में ब्राह्मणों की ही सहायता लेते हैं। ऐसे व्यक्ति संपूर्ण भारत में दूसरे धर्म का प्रसार कैसे कर सकेंगे? इन सबको नवीन धर्म का साम्राज्य कैसे रुचेगा? क्या वेदधर्म और जैन मत में अंतर है?

'भारत में भोलानाथ एवं मेरी माँ अंबा भवानी ही पूजी जायेंगी' क्या यह सच है? यति मंदिर की ओर धीरे-धीरे गया। उसमें उसने दृष्टि डाली और वाघेश्वरी की विकराल मूर्ति देखी। माता के पैर के नीचे पड़े हुए सिंह को देख वह काँप उठा; उनके त्रिशूल का अग्रभाग

उसका हृदय चीर रहा हो, उनकी भयंकर आँखें उसे परास्त कर रही हों, ऐसा जान पड़ा। देवी के प्राबल्य से ऐसा लगा कि वह स्वयं दब गया है, और उसके मनोरथ स्वल्प एवं तुच्छ हैं। कुछ समय तक वह इसी प्रकार देखता रहा, वहाँ से हट भी न सका। सृष्टि क्रम को शासन करती हुई महाशक्ति की सत्ता उसे भी मानो दबा रही हो ऐसा जान पड़ा। निडर यति डर से काँप उठा। पास के शिवमंदिर का घंटा किसी ने बजाया: यति के कान में उस नाद ने भयंकर शब्द किया। यह नाद किसकी विजय-टंकार सूचित कर रहा था? क्रोध से यति पास के मंदिर की ओर घूम पड़ा, उसका द्वार भी उसी चबूतरे पर पड़ता था। अपने मन में उसने पूछा कि 'यह टंकार क्या इन देवों की विजय सूचित कर रहा है?' उसे अपना हृदय बैठ गया-सा जान पड़ा। यह भवानी, यह भोलानाथ, यह घंटनाद भवोभव का है और रहेगा क्या? उसके मन के समक्ष शिवमूर्ति आकर खड़ी हो गई—उसने वैराग्य, और सत्ता की संपूर्णता के पूर्ण अवतार पिनाकपाणि सांब सदाशिव को देखा, उसे जान पड़ा कि ज्ञानसरिता का जलप्रपात शिर पर धारण कर जगत के उद्धारार्थ वे अवनी पर ज्ञान का प्रसार कर रहे हैं। विक्षिप्त यति के नेत्र के समक्ष पार्श्वनाथ की मूर्ति आ गई; 'भविष्य किसके सामने नत होगा?' उस कट्टर यति के मन में भी संशय उत्पन्न हो गया। संसार कैसा वैराग्य, कैसी सत्ता, कैसी संपूर्णता स्वीकार करेगा? जगत का उद्धार तटस्थ, शांत निश्चल संपूर्णता द्वारा होगा या ज्वलंत, विजयी त्रिशूलपाणि की संपूर्णता से? उसके नेत्र के समक्ष खड़ी पार्श्वनाथ की मूर्ति में परिवर्तन हो गया। उसकी आँखें खुल गईं, हाथ में खड्ग आ गया, उसके शांत मुख पर सत्तादर्शक भव्यता छा गई। उसकी धारणा के अनुसार जैनमत यदि विजयी हो जाय तो अर्हन्त क्या ऐसा स्वरूप धारण करेंगे? तब शिव एवं अर्हत में अंतर? 'नहीं, नहीं, नहीं' इस प्रकार जोर से वह बोल उठा

मानो संशय को दूर कर रहा हो। संशयों ने भी उतने ही जोर से कहा, हाँ, हाँ, हाँ।'

'किंतु महाराज !—' किसीकी आवाज सुनाई दी।

यति ने जोर से सिर हिलाया, विचार स्थिर करने के लिए इधर-उधर देखा और वह दृश्य अदृष्ट हो गया। सामने माता एवं शिव के मंदिर ज्यों के त्यों खड़े थे। बगल में सैनिकों का एक नायक हाथ जोड़े खड़ा था।

क्रोध से घूमकर यति ने पूछा—क्या ?

'कुछ नहीं, अब हमें कहीं चलना है या यहीं पड़ाव डालें ?'

'पागल हुए हो क्या ? चलो मंडुकेश्वर, अभी अपना एक कट्टर दुश्मन तो मौज कर रहा है।'

यति आपे में न था। उपरिलिखित व्याख्या कहकर उसने घोड़े को थपथपाया और सब सैनिकों के साथ चल पड़ा।

थोड़ी दूर जाने पर गंभीरमल एवं एक-दो जागीरदार मिले, जिन्हें बंदी बनाकर यति अपने सैनिकों के साथ मंडुकेश्वर का नाका रोक कर रुक गया।

दिन चढ़ा, दोपहर हुई, संध्या होने आई किंतु रुद्रमहालय में कोई भी गतिविधि न जान पड़ी। अधीर आनंदसूरि खीझ उठा; रात हुई पर पता नहीं चला कि देवप्रसाद क्या कर रहा है। यति के अधैर्य का ठिकाना न रहा जिससे सेना की एक टुकड़ी आगे कर रुद्रमहालय के द्वार तक गया। वहाँ चारों ओर पूर्ण शांति का साम्राज्य था। मंडुकेश्वर के गाँव में उसकी टुकड़ी देख तहलका मच गया था जिससे कोई भी दिखाई नहीं पड़ता था। रुद्रमहालय का द्वार बहुत खटखटाने पर एक सैनिक ने खिड़की से झाँक कर पूछा—कौन है ? इस समय क्यों द्वार पीट रहे हो ?

'यहाँ देवप्रसाद मंडलेश्वर हैं ?'

'तुमसे मतलब ? हाँ हैं !' कहकर सैनिक खिड़की थोड़ा अधिक खोलने जा रहा था कि उच्च पदस्थ एक दूसरा सैनिक आगे आया। उसने उस सैनिक को पीछे हटा दिया और स्वयं सिर हिलाकर कठोर स्वर में पूछा—कहो क्या काम है ?

'मुझे मिलना है।'

'आनंदसूरि ! मंडलेश्वर महाराज से मिलने के पूर्व तो तुम्हारा हाथ-पैर बाँधना पड़ेगा, समझे ?'

कहकर उसने द्वार बंद कर अर्गला चढ़ा दी।

उत्तर सुन यति दाँत पीसता हुआ खड़ा रहा। राजपूत भेष में भी वह पहचान लिया गया। उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। वाघेश्वरी माता के मंदिर के आगे देखे हुए जाग्रत स्वप्न से वह खीझा हुआ तो था ही, जिसमें यह घी की आहुति पड़ गई। अतः पास के खाली पड़े हुए झोपड़ों में सैनिकों को पड़ाव डालने का आदेश दे वह अकेला, प्राप्त विद्या के प्रताप-से मानो भैरवनाथ की आराधना करता हो, उसी प्रकार वृक्ष के नीचे इधर से उधर घूमने लगा।

प्रज्ञा एवं विक्षिप्ति में सूक्ष्म ही अंतर होता है। प्रज्ञा में मनुष्य चित्त को एकाग्र कर प्रसंगवशात उसे पीछे खींच सकता है; विक्षिप्ति में या तो चित्त एकाग्र हो नहीं सकता, यदि हो भी गया तो पीछे नहीं खींचा जा सकता। यति का आवेश उसकी प्रज्ञा को उत्तेजना में रूपांतर कर रहा था। जैनमत के विजय की इच्छा करनेवाले जैनों के शत्रुओं की पराजय चाहना अत्यधिक सरल था। श्रावकों के शत्रुओं के प्रति वैर रखना भी सरल था। वह तो इन सब वैरों का बदला देवप्रसाद से निकालने के लिए व्यग्र हो रहा था। इस समय उसकी एकाग्रता भयंकर रूप से दृढ़ होती जा रही थी और वह विक्षिप्ति का रूप धारण करती जा रही थी। चलता-चलता वह रुद्र महालय के पीछे जहाँ सरस्वती बह रही थी, पहुँचा।

मध्य रात्रि हो रही थी। गंभीरमल आदि से कोई निश्चित खबर निकलवाने में वह सफल नहीं हो सका था। देवप्रसाद यहाँ से चला तो नहीं गया? पर जायगा कहाँ? देहस्थली! तब उस सैनिक के कथन का अर्थ? यह सब सोचता हुआ वह सरस्वती के तट पर पहुँचा जो रुद्रमहालय के दीवाल से सट कर बह रही थी। चंद्रमा की किरणें उसे रुपहले रंग में रंग रही थीं। मंडलेश्वर कहाँ हैं? सिर उठा कर उसने ऊपर देखा। महालय की सबसे ऊपर की छत नदी पर पड़ती थी। कुछ देर तक वह उस ओर ध्यान से देखता रहा और चौंक उठा। छत पर एक लंबे पुरुष की परछाईं उसने देखी; कुछ शरीर की आकृति, कुछ खड़े रहने की मुद्रा से वह उसे पहचान गया।

मंडलेश्वर के साथ ही एक छोटी परछाईं भी थी; यति हँसा। विलास में सत्ता को विस्मृत कर देनेवाले देवप्रसाद के प्रति उसमें तिरस्कार उत्पन्न हुआ। उसका हृदय हर्ष से भर गया, गुरुदेव की भविष्यवाणी उसे स्मरण आई—'देवप्रसाद! देवप्रसाद! तेरे दिन पूरे हो गये हैं, तू भी अब आनंदसूरि के हाथ का स्वाद चखेगा'—यति ने क्रोध से उस छत की ओर मुक्का दिखाया।

थोड़ी देर बाद वह धीरे-धीरे लौट पड़ा। कुछ दूर जानेपर घोड़ों के टापों की आवाज सुन वह चकित हो गया—इस समय कौन? शत्रु या मित्र? उसके सैनिक वहाँ से दूर थे, अकेले हाथ कैसे सामना कर सकेगा? तथापि साहस से वह खड़ा रहा; घोड़े तीव्र वेग से पास आ गये। आवाज केवल दो-तीन घुड़सवारों की ही मालूम पड़ी जिससे उसमें अधिक साहस आया। शायद उसके ही आदमी हों जिन्हें वह जगह-जगह बैठा आया था। घोड़ों के पास आते ही उसने पूछा—कौन?

अगले घुड़सवार ने कहा—जयदेव महाराज की जय!

'कौन? चित्रविजय! इस समय कैसे आये?'

'महाराज ! वल्लभसेन मंडलेश्वर इसी ओर आ रहे हैं ।'

घबड़ाकर यति ने पूछा—अकेले या किसी के साथ ?

'पाँच-सात सौ सवार होंगे । सुनते ही कहने के लिए आया ।'

'कितनी दूर होंगे ?'

'तीन-चार घड़ी में यहाँ आ पहुँचेंगे, यहाँ से जाना हो तो चले जाइये ।'

'अच्छा, यहाँ से थोड़ी दूर पर अपने आदमी हैं वहीं बैठो, मैं आता हूँ !' कह उसने चिरविजय को विदा किया ।

यति का पागलपन बढ़ा । 'क्या मंडलेश्वर अंतिम घड़ी मेरे पंजे से निकल जायगा ? नहीं, नहीं !' वल्लभसेन के पहुँचने के पूर्व अपना कार्य किस प्रकार सिद्ध करे, यह सोचने लगा । दीवाल पर काँटे ठुके हुए थे जिससे उस पर चढ़ना असम्भव था । जल्दी-जल्दी वह जिस दीवाल से सटकर सरस्वती बह रही थी वहाँ गया और बड़े ध्यान से देखने पर उसे दीवाल में एक बड़ा-सा मोखा दीख पड़ा । क्षण भर भी नष्ट न कर एक कृपाण के अतिरिक्त अपना सब अस्त्र दूर फेंक, वह सरस्वती में कूद पड़ा और तैरता हुआ उस मोखे की ओर गया । वह नल था जिससे गंदा पानी नदी में गिरता था । यति ने उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया । नल इतना बड़ा था कि उसमें से एक आदमी लेटकर जा सके । बड़ी कठिनता से शरीर को कष्ट देता हुआ, बदबू करते हुए पानी से व्याकुल होता हुआ, वह उस नल से होकर भीतर पहुँचा और कुंड में खड़ा हुआ । चेहरे पर लगे हुए कीचड़ को साफ किया । पास ही में एक कुआँ था जिसके थाले में कुछ पानी था । उसने उससे हाथ मुँह साफ किया और महालय में घूमने लगा । महालय श्मशान-जैसा शांत था । ऊपर कोई हँसा, ऐसा उसे लगा । उस हँसी ने यति के उन्माद को और भी प्रदीप्त कर दिया ।

ऊपर जाकर लड़ने में उसे सार दिखाई नहीं पड़ा। भीतर कितने मनुष्य हैं यह ज्ञात हुए बिना अपने आदमियों को भीतर प्रविष्ट करना मृत्यु के मुँह में जाने के समान था। प्रति क्षण वल्लभसेन नजदीक पहुँचता जा रहा था। जो कुछ करना हो उसे करने के लिए गिनती के पल थे। वह इधर-उधर देखने लगा; किस प्रकार मंडलेश्वर का संहार करे, यही वह सोचने लगा। इतने में दूर घोड़ों के टापों की आवाज सुन पड़ी, कान देकर सुनने पर उसे लगा कि वल्लभसेन आ पहुँचा। क्या करे? क्या करे? उसने आस-पास दृष्टि दौड़ाकर देखा। सामने रुद्रमहालय की गोशाला के पास ही घास का ऊँचा ढेर लगा हुआ देखा। उसके मन में एक राक्षसी विचार आया। वह इधर-उधर दौड़ने लगा। उसका वश चलता तो अग्निदेव का आवाहन करने के लिए वह वहाँ बैठ जाता। ईंट पर एक मजदूर हुक्का रखकर सो गया था जिसके चिलम की गंध यति को लगी। वह उस ओर दौड़ा। लोभी धन पाकर उछले, ठीक उसी प्रकार उछल कर उसने चिलम उठा ली और उसे फूँकता हुआ वह आया। क्षणमात्र में सूखी घास प्रज्वलित हो उठी।

दूर जाकर यति हाथ मलता हुआ खड़ा हो गया। उसने घास को जलते हुए देखा और वह वहाँ से दौड़ता हुआ एक छोटे द्वार के पास गया एवं उसे खोलकर बाहर निकल गया। उसके हर्ष का पार नहीं था; उसके जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो गया था। अहिंसा परम धर्म है, यह मानते हुए और इसका प्रचार करते हुए भी वह घोर अधमतम हिंसा करने के लिए तत्पर हो गया था—अधर्मं धर्ममिति मन्यते तमसावृतः!

वह पुनः नदी के किनारे पहुँचा और अपने कर्म का प्रतिफल देखने के लिए खड़ा हो गया। कुछ देर तक तो कुछ मालूम नहीं पड़ा। यति को चिंता हुई कि आग बुझ तो नहीं गई किंतु तुरंत ही

महालय के प्रथम खंड के दरवाजे जल उठे और जोर की आवाज हुई, साथ ही दो-एक दरवाजों से धूआँ भी निकलने लगा। यति आनंद-विभूत होता गया। उसकी एकाग्रता फलीभूत हो गई थी।

३०

चिल्लाहट, जलती हुई लकड़ी की कड़कड़ाहट से प्रियतमा के पास पड़े हुए मंडलेश्वर की निद्रा भंग हुई और उन्होंने उठ कर इधर उधर देखा। हंसा भी उठकर आँखें मल रही थी। आसपास में अग्नि का प्रकाश दिखाई पड़ रहा था, गर्मी लग रही थी और वस्तुओं के टूट कर गिरने की भयंकर आवाज हो रही थी। हंसा का हाथ पकड़ कर वह छत पर गया; नीचे झाँककर देखने पर भयानक अग्नि-ज्वाला दीख पड़ी। उसका हृदयभेदक प्रतिबिंब सरस्वती के पानी में पड़ रहा था। वातावरण भी उत्तप्त हो रहा था। वह बोला—हंसा! किसी दगाबाज दुष्ट ने महालय में आग लगा दी।

हंसा घबड़ाहट में क्या हो रहा है, यह समझे बिना देख रही थी। देवप्रसाद ऐसे अवसर पर हिम्मत हारनेवाला नहीं था। वह बोला—'कोई चिंता नहीं, प्रिये! घबड़ाओ मत, यह शाल ओढ़ लो और मेरा हाथ पकड़ो, अभी नीचे पहुँचते हैं।' कहकर जितनी जल्दी हंसा चल सकती थी उतनी जल्दी उसे अपने साथ लेकर वह आगे बढ़ा और दरवाजा खोलकर नीचे आया। नीचे कमरे में लाल प्रकाश फैला हुआ था।

'नाथ! नाथ! मुझसे चला नहीं जाता, आप जाइये, मुझे छोड़ दीजिये।'

'छोड़ जाऊँ? ठहरो।' कहकर देवप्रसाद ने उसे फूल के समान

उठा लिया और वह सीढ़ी की ओर बढ़ा। सीढ़ी का द्वार खोलते ही आग की लपट एक दम ऊपर आई; ज्वाला बढ़ने लगी। श्वाँस लेना भी कठिन हो गया। साहस वश आगे बढ़कर सीढ़ी उतरने का उसने प्रयत्न किया। सीढ़ी में नीचे आग पहुँच गई थी जिससे कैसे उतरना, यह प्रश्न आ उपस्थित हुआ। उसने इधर-उधर देखा किंतु कोई मार्ग नहीं सूझा।

'नाथ ! क्या होगा ?'

'मंडुकेश्वर की कृपा है ! घबड़ाती क्यों हो ?'

शब्दों से साहस देता हुआ वह वापस लौटा। थोड़ी-थोड़ी देर पर हंसा को हृदय से लगाते हुए वह पीछे लौटने लगा। सीढ़ी व्यर्थ हो गई थी। अब केवल ऊपर का ही खंड आग से मुक्त था। दौड़ता हुआ वह अपने शयन कक्ष में आया।

'मेरे प्रभु ! मैंने आपका जीवन लिया। नाथ ! अब क्या होगा ?'

'पगली ! कल के दिन के लिए दस सिर हो तो उसे भी अर्पण करने के लिए तैयार हूँ। कायरों के समान महालय में आग लगा कर मुझे मारने का प्रयत्न किया। कोई चिंता नहीं ! हंसा, मेरा और तुम्हारा रक्त अभी इस पृथ्वी पर विद्यमान है। हमारी गर्जना से संपूर्ण गुजरात काँप उठेगा। कितने ही लोग जीवित विजय पाते हैं और कितने ही मरकर। हम मरकर मालवा लेंगे। घबड़ाओ मत, घबड़ाओ मत; चलो छत पर चलें।'

कहकर छत पर मंडलेश्वर गये; चारों ओर से लपटें उठ रही थीं। उसने देखा कि बचने की अब अधिक आशा नहीं है। प्रेम से उसने अनेक बार हंसा का चुंबन किया।

'प्यारे ! यह क्या हुआ ?'

'देवप्रसाद सोलंकी को शोभा देने योग्य ही चिता है ! यह तो देखो। मेरे पिताजी को भी यहीं अग्निदाह मिला था। अच्छा कोई

चिंता नहीं। हंसा! हिम्मत है? नीचे सरस्वती माता बह रही हैं। यदि तुम्हारी सम्मति हो तो गोता लगावें।'

'नाथ मुझे कुछ नहीं सूझता। मरना तो है ही। जो आपकी कीर्ति को शोभा दे वही करें।'

'अच्छा, तब आओ मेरे गले से लिपट जाओ।'

हंसा प्रगाढ़ प्यार से देवप्रसाद के गले से लिपट गई। मंडलेश्वर ने कपड़ा उतार कर धोती का कछाड़ा मारा और छत के मुँडेरे पर चढ़कर वह खड़ा हो गया। उसने चारों ओर दृष्टि डाली, पैर तक पहुँचती अग्नि-ज्वाला को देखा; तोरणशृंग से फड़फड़ाती हुई ध्वजा को देखा, नीचे नदी को देखा और ऊँचाई का अनुमान लगाया। देवप्रसाद ने तनिक भी धर्म और साहस नहीं छोड़ा। उसे मृत्यु के साथ खेलने का बड़ा शौक था। लड़कपन में पाटन के घाटों पर से नदी में कूदने में जो साहस था वही आज भी विद्यमान था। उसने हंसा का एक बार पुनः आलिंगन और चुंबन किया और इतनी ऊँची छत से नदी में 'जय सोमनाथ' चिल्लाकर वह कूद पड़ा।

नदी किनारे यति खड़ा-खड़ा प्रफुल्लित हो रहा था। अपने किए हुए कर्म का सुखद स्वाद चख रहा था। कुछ देर में यह महालय धराशायी हो जायेगा, ऐसा उसे लगा। इतने में छतपर अग्नि के लाल प्रकाश में दो व्यक्तियों को उसने देखा। वह हर्षित हुआ, उसके धर्म का शत्रु जीवित जलकर भस्म हो रहा था। दूसरे ही क्षण उसका हर्ष बदल गया। वह किचकिचा कर चिल्ला उठा। उसका श्वास अवरुद्ध हो गया। इतनी ऊँची छत पर से दो व्यक्ति एक दूसरे से लिपटे हुए नदी में गिरे: पानी ऊपर उछला और एक छाया तेजी से हाथ मारती हुई पानी में आगे बढ़ी। यति सहसा चिल्ला उठा। उसके सैनिक महालय को जलता हुआ देख बहुत पहले ही उसके पास आ गये थे।

'चित्रविजय !'

'जी !'

'सवारों को नदी के किनारे-किनारे भेजो और उनसे कह दो कि वह तैरने वाला बाहर निकले तो तुरंत उसे मार डालें।'

'जैसी आज्ञा !'

अधिक विचार न कर यति भी नदी में कूद पड़ा और तेजी से आगे जाने वाले के पीछे चल पड़ा।

३१

प्रातःकाल मेरल के पास वल्लभसेन मंडलेश्वर दाँत पीसता हुआ अपने स्वामी देवप्रसाद की प्रतीक्षा करता हुआ पड़ा था। वल्लभसेन एक छोटे मंडल का मंडलेश्वर था और लड़कपन से ही देवप्रसाद ने उसका पुत्रवत् पालन किया था। वल्लभसेन भी उन्हें पिता से अधिक मानता था। वह गंभीर, कम बोलने वाला, सीधा एवं साहसी योद्धा था एवं कुक्कुरवत् स्वामी का अनुसरण कर उसके इशारे पर काम करता। देवप्रसाद के आदेशानुसार सेना लेकर वह मेरल के पास पड़ा हुआ प्रतिक्षण उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। दिन चढ़ने के साथ-साथ उसका चेहरा भी अधिक गंभीर होता गया। अपराह्न में विश्वपाल सामंत मधुपुर से रिसाला के साथ आकर वल्लभसेन से मिला।

वल्लभ ने पूछा—मुझे समय नहीं है, क्यों आये हो ?

'देखिये, गुजरात में इतनी सेनायें ! आप तो महान् योद्धा हैं, इससे समझ सकेंगे; अभी तो मालवराज को पराजित करना है। हम इस प्रकार अलग रहेंगे तो कैसे काम चलेगा ?'

इतना कहकर विश्वपाल रुका, सामने युवा योद्धा चित्रवत मौन बैठा था। विश्वपाल अधिक स्पष्टता से बात करने लगा।

'रानी को मनाने में ही लाभ है। सेना के साथ रानी से जाकर क्यों नहीं मिल जाते ?'

थोड़े में वल्लभ ने उत्तर दिया—मंडलेश्वर की आज्ञा नहीं है।

विश्वपाल ने देवप्रसाद की स्थिति सूचित की, वह बंदी हो गया होगा इसका विश्वास दिलाया, देहस्थली का पतन होने वाला है, यह भी बताया। वल्लभ को अंतिम लालच दी—देहस्थली का मंडल चाहिये ? रानी वह भी देंगी।

चेहरे पर की एक रेखा में भी बाहर कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दिया और मानो वह कोई तुच्छ बात कर रहा हो इस प्रकार वल्लभ खड़ा हो गया और बोला—विश्वपाल जी ! मंडलेश्वर महाराज की आज्ञा ले आइये, पश्चात् सब कुछ करूंगा।

'इसके बिना—'

'सब व्यर्थ।'

यह कहकर विश्वपाल को वहीं छोड़ वल्लभ चला गया। सामंत थका मांदा वापस लौट गया। वल्लभ अडिग निकला।

विश्वपाल के जाने के पश्चात् वल्लभ की चिंता बढ़ गई। ज्यों-ज्यों दिन ढलता गया और मंडलेश्वर की खबर नहीं आई त्यों-त्यों उसकी सेना में कुछ असंतोष फैलने लगा। संध्या समय मधुपुर से खबर आई कि वहां की सेना पाटन की ओर कूच कर रही है और यथासंभव रानी स्वयं भी सेना के साथ हैं। वल्लभ सोचने लगा कि मंडलेश्वर की सब योजनायें निष्फल जायेंगी क्या ? उसे विश्वास था कि किसी असाधारण कारण बिना मंडलेश्वर सेना से दूर रहने वाले नहीं हैं जिससे वह अपने डेरे में अकेला, विचारग्रस्त

अधैर्य एवं उलझन में बैठा हुआ था। सैनिक उसके भय से शांत थे अवश्य तथापि कहीं-कहीं काना-फूसी प्रारंभ हो गई थी।

रात्रि का अंधकार बढ़ने लगा तब उसके भेजे हुए जासूसों ने आकर बताया कि रास्ते में मंडलेश्वर का कहीं पता नहीं है। वल्लभ ने अपने स्वामी की खोज में जाने का निश्चय किया एवं तुरंत पाँच चुने हुए सवारों को तैयार कर मंडुकेश्वर की ओर प्रयाण करने की आज्ञा दी और स्वयं पचीस श्रेष्ठ योद्धाओं के साथ साँड़नी पर बैठ तीव्रवेग से जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। बची हुई सेना एक योग्य सामंत को सौंपी, क्योंकि उसको लगा कि मधुपुर की सेना उसी ओर आयेगी। संभवतः देवप्रसाद वाघेश्वरी के मंदिर में हों अतः कुछ सैनिक वहाँ भी भेजा।

यथाशक्ति तेजी से साँड़नियों को दौड़ाते हुए वे मंडुकेश्वर के पास पहुँचे तब चाँदनी रात्रि के प्रकाश में क्षितिज का एक भाग बिलकुल लाल हो जाते हुए देखा। उसने दाँत पीसकर कहा—मंडु-केश्वर की ओर इतनी भयंकर आग कैसी! उसके मन में शंका उत्पन्न हो गई और उसने अधिक वेग से साँड़नियों को दौड़ाने का आदेश दिया। आग की ओर वल्लभ एक टक देख रहा था; वृक्षों के कुंज से बाहर निकलते ही आग स्पष्ट दीख पड़ी, मंडुकेश्वर का रुद्रमहालय जल रहा था। वह दाँत पीसने लगा।

इतने में सामने से तीन-चार घुड़सवारों के दौड़कर आने का शब्द सुन पड़ा। वल्लभ ने जोर से चिल्लाकर कहा—ठहरो, कौन?

आवाज पहचानकर सवार हर्ष से पुकार उठे—वल्लभसेन!

'गंभीरमल! यह क्या? महाराज कहाँ हैं?'

'महाराज! अन्नदाता तो इस महालय में भस्मीभूत हो गए। अब हम लोग भाग चलें।'

साँड़नी बैठाकर वल्लभ उसपर से उतर पड़ा और गंभीरमल के

पास जाकर उसने सिंह के समान गरजते हुए पूछा—महाराज मर गये ! तब तुम जीवित क्यों हो ?

'आपको पता नहीं ? प्रातःकाल हम मुंजाल से मिलने के लिए जाने वाले थे इतने ही में हंसा माताजी आ पहुँची।'

'एं !'

'जी हाँ, वे जीवित थीं और रानी ने अवसर देख कर उन्हें भेज दिया। महाराज ने जाना स्थगित कर दिया और हमें मुंजाल से मिलने के लिए भेज दिया। रास्ते में यति ने हमें पकड़ लिया और यहाँ ले आया। इतने में महालय प्रज्वलित हो उठा एवं यति के मनुष्यों में भगदड़ मच गई। उससे लाभ उठाकर हम भी भाग आये।'

क्षणभर के लिए वल्लभ मौन देखता रहा, उसकी आँखें अधिक गंभीर हो गईं। वह बोला—गंभीर ! चलो वापस, देखें तो सही। इस साँड़नी पर आ जाओ।

गंभीर और उनके दो साथियों को आगे कर वल्लभ साँड़नी पर बैठ गया और तीव्रवेग से महालय की ओर चल पड़े। यह देखने के लिए कि मन्दिर कितना जला है वे दोनों नदी के किनारे-किनारे चले।

एक प्रचंड होली के समान महालय धाँय-धाँय जल रहा था और नदी किनारे कुछ व्यक्ति खड़े कभी ऊपर और कभी नीचे देख रहे थे।

अपने साथियों के साथ वल्लभ उतर पड़ा। उन्हें देखते ही वहाँ खड़े लोगों में से कुछ भागने लगे। वल्लभ ने एक को पकड़ लिया और उसे जोर से हिलाकर पूछा—बोल, किसका आदमी है ?

मनुष्य ने हाथ जोड़कर कहा—कौन, वल्लभ महाराज ? यह तो मैं हूँ।

ध्यान से उसे देखकर वल्लभ ने कहा—कौन, रामसिंह !

'जी हाँ, बापू !'

कठोरता से वल्लभ ने पूछा—यह क्या ?

'बापू ! मैं महाराज के साथ महालय में था और आग लगते ही दूसरे लोगों के साथ हम महाराज को उठाने के लिए गये किंतु सीढ़ी का दरवाजा बंद होने से वे सुन नहीं सके। लाचार हो हम बाहर निकले। बापू ! अभी भी समय है। महाराज ऊपर से नदी में कूद पड़े हैं, ऐसा ये सब कह रहे हैं।'

'ये कौन ?'

'चंद्रावती के सैनिक ! इनके साथ यति था जो महाराज को पकड़ने के लिए आया था। वह यहाँ खड़ा था। महाराज ऊपर की छतपर से कूदे और यति उनके पीछे गया है।'

'आनंदसूरि तो नहीं ?'

'जी हाँ, वही यति जो पाटन आया था और उसने घुड़सवारों को भी किनारे-किनारे आने के लिए आज्ञा दी है।'

'महाराज के पानी से बाहर निकलते ही उनका काम तमाम करने के लिए ?' यति का उद्देश्य समझ वल्लभ ने पूछा—'चलो, साँड़नी तैयार है, हम भी सवारों के पीछे-पीछे चलें।'

छलांग मारकर वल्लभ साँड़नी पर चढ़ गये और पूछा—रामसिंह ! कितनी देर हुई ?

'बापू ! एक घंटा हुआ होगा।'

'चलो' कहकर वल्लभ ने तीव्रवेग से साँड़नियों को किनारे-किनारे दौड़ाते हुए ले चलने का आदेश दिया।

———

३२

जब देवप्रसाद ने सरस्वती के जल में डुबकी लगायी तब उन्हें बचने की बहुत कुछ आशा हो गई। महालय नदी के तीर पर था अतः नदी पार कर दूसरे किनारे जाना उनके लिए एक खिलवाड़ था, साथही उस ओर के प्रदेश के प्रत्येक गाँव में उनके अपने आदमी थे जो उनका नाम सुनते ही अपना जीवन अर्पण कर देने के लिए तैयार रहते थे। वहाँ पहुँच, कुछ स्वस्थ हो, मेरल की ओर निकल जाना उन्हें सरल प्रतीत हुआ; किंतु नदी में गिरते ही हंसा में सहसा परिवर्तन जान पड़ा। इतने ऊँचे से गिरने के कारण या सर्दी से वह मूर्छित गई हो जिससे उसका हाथ मंडलेश्वर के गले से छूट गया। वह मंडलेश्वर के अप्रतिम शरीर-बल की परीक्षा का समय था। मूर्छित हंसा को अपने बाएँ हाथपर रख, एक हाथ से वे तैरने लगे। उनका मन मूल प्रकृति के उपद्रवी तत्त्वों से लोहा लेने में अधिक उत्साहित होता था जिससे सरस्वती के प्रवाह में तैरना उन्हें अधिक अच्छा लगा। सद्भाग्य से जल प्रवाह भी अनुकूल था जिससे आगे बढ़ने में अधिक कष्ट नहीं मालूम पड़ा।

आधा घंटा हुआ होगा कि रात्रि की शांति में पीछे किसी के तैरने की आवाज सुनाई दी। थोड़ी दूर पर कोई पूरे बल से हाथ मारता हुआ उन्हीं की ओर आ रहा था। घूम कर देखने पर विश्वास हो गया कि कोई उनका पीछा कर रहा है। देवप्रसाद ने समय और अपने हाथ पर पड़ी हुई मूर्छिता सुंदरी की स्थिति एवं अभी उसे अत्यधिक शारीरिक परिश्रम उठाना है, इन सबका विचार कर आने वाले का सामना न कर किनारे की ओर ही जाने का निश्चय किया। किनारे की ओर बढ़ते ही चंद्रालोक में कुछ सवारों को देखा जो बराबर उन्हीं की ओर बढ़ रहे थे। श्वेतवस्त्र धारिणी हंसा और वे पानी में स्पष्ट दीख पड़ते

होंगे, यह अनुमान कर अपनी चाल उन्होंने धीमी कर दी। इतने में कोई वस्तु आकर पानी में गिरी: किसी का तीर! मंडलेश्वर के क्रोध का ठिकाना न रहा। तीव्रवेग से वे किनारे से दूर निकल गये। दो-तीन तीर पानी में गिरे। तीर चलाने वाले दक्ष नहीं जान पड़े क्योंकि सभी लक्ष्य खाली गये। सरस्वती का दूसरा किनारा अत्यधिक दूर था साथ ही तट के पास कुछ दूर तक कीचड़ भी था। उस ओर जाना दुष्कर जान पानी में ही सीधा तैरना सरल प्रतीत हुआ। वे वैसा ही करने लगे।

मंडलेश्वर का बाँया हाथ झूठा पड़ने लगा जिससे हंसा को दाहिने हाथ पर रख लिया। उसका मूर्छित, निस्तेज, निर्मल मुख देख देवप्रसाद में अनुराग का प्रादुर्भाव हुआ; उसका चुंबन किया, और शरीर को हृदय से लगाया एवं बायें हाथ से तैरने लगा। पीछे आने वाले कितने हैं यह कुछ समझ नहीं पड़ा; उनके साथ लड़ सकेगा या नहीं, यह भी एक प्रश्न था जिससे निकल भागने के लिए वह तेजी से आगे बढ़ने लगा। थोड़ी देर में पीछे तैरने वाले का छप-छप शब्द धीमा हुआ जिससे उन्होंने भी अपनी चाल मंद कर दी। अब महालय दिखाई नहीं देता था पर आकाश को स्पर्श करती हुई अग्नि की लपटें दिखलाई पड़ रही थीं। किनारे पर दस-बारह घुड़सवार भी उनका पीछा करते हुए चले आ रहे थे जिन्हें देख कर मनमें मंडलेश्वर बड़-बड़ाये 'कोई चिंता नहीं, आओ। पानी में घंटों तक तैरने का लड़कपन का अभ्यास इस समय मेरे काम आया।'

मन में एक विचार उदय हुआ जिससे उनका हृदय संत्रस्त हो उठा। हंसा को अपने पास खींचकर मंडलेश्वर ने पुकारा—हंसा! हंसा! उसका चेहरा गौर से देखा; उसकी भयंकर निश्चलता देख वे घबड़ाये। अत्यधिक कठिनता से उसके माथे पर हाथ रखा, उसके अंतःकरण पर हाथ रखने का प्रयत्न किया किंतु अस्थिर जल में मंद

नाड़ी की गति देखना सरल नहीं था। हंसा के विचित्र बने हुए अधरों के तथा बंद नेत्रों की पलकों में शीशे जैसी पुतलियों को देख उन्हें चक्कर आ गया। दाँत पीस कर स्वस्थता धारण की क्योंकि पीछे तैरने वाले की छरछराहट पुनः सुनाई दी। किसी प्रकार हृदय की खिन्नता दूर कर देवप्रसाद जोर से तैरने लगे किंतु उनकी हिम्मत अब टूट गई थी। हंसा जीवित है या मर गई: यह संशय उनके हृदय को विदीर्ण किये डाल रहा था जिससे उनका हाथ-पैर पहले जैसा नहीं चल रहा था।

पूर्व में पौ फटने लगी: देवप्रसाद ने पीछे घूमकर देखा तो एक ही व्यक्ति पीछे दीख पड़ा जो बिलकुल पास आ गया था।

मंडलेश्वर ने पीछे घूमकर पूछा—किसकी मौत आ गई है?

एक हाथ से मुँह पर का पानी पोछ कर आनंदसूरि हर्ष से खिलखिला उठा। इकहरे शरीर एवं आवेश में होने से अधिक परिश्रम नहीं पड़ा था। उसकी शक्ति ज्यों की त्यों बनी हुई थी। दो हाथ मार कर वह पास आ पहुँचा और बोला—आपकी!

'यति! आनंदसूरि! चाण्डाल! मेरे पीछे इतना पड़ा हुआ है! तेरा भी समय आ गया है।'

यति को अब ध्यान आया कि मंडलेश्वर के साथ पानी में द्वंद्व युद्ध करना मूर्खता है। थका हुआ होने पर भी देवप्रसाद उसे पलभर में मसल डालेगा। वह युक्ति से घूमकर मंडलेश्वर को किनारे की ओर ले जाने लगा और बोला—उन मनुष्यों को देखा!

'तेरे जैसे नीच, हत्यारों को बहुत देखा है।'

'गुरुदेव की आज्ञा मैंने सुनाई थी, वह भूल गये?'

'हाँ!' एकाएक शत्रुता भूल देवप्रसाद को यति का वचन स्मरण आया; वे बोले—आनंदसूरि! तुमने उस दिन वचन दिया था, वह तुम्हें याद है?

'हाँ, क्या है ? जीवित नहीं जाने दूँगा, और जो कहो करूँगा।'

'अपने जीवन के लिए भिक्षा नहीं मांगूँगा, मंडलेश्वर मरता हुआ भी सोलंकी है। तुम्हें वैद्यक आती है ? देखो, हंसा जीवित है ?

'भुलाकर धोखा देना है ?'

हंसा का शरीर आगे बढ़ाकर देवप्रसाद ने कहा—कुत्ता ! मंडलेश्वर ने कभी धोखा दिया है ? ले, यह रही।

यति ने पास आकर हंसा के नाक पर हाथ रख तिरस्कार से हँसते हुए कहा—मंडलेश्वर ! अब इसमें क्या रखा है ?

'ऐसा ?' मरते हुए सिंह की गर्जना के समान देवप्रसाद गरजे। क्षणभर के लिए हंसा की ओर वह देखता रहा। इतनी देर में बात करते हुए यति उन्हें किनारे के पास खींच ले आया था। उसने हाथ उठाकर किनारे पर खड़े मनुष्यों को चिल्लाकर सचेत किया। तीन-चार तीर छूटे। सभी तीर पानी में गिरे केवल एक मंडलेश्वर की गर्दन में आधा घुस गया। वे पानी में उछल कर यति पर कूद पड़े—'नीच ! हरामखोर ! धोखेबाज !'

भाग जाने के पहले ही देवप्रसाद ने उसे धर दबाया और दाँत पर दाँत बैठाकर उसका गला घोंटने का प्रयत्न किया। यति बचने के लिए तड़फड़ाने लगा। उसने किनारे पर खड़े आदमियों को पानी में आने के लिए संकेत किया।

उसी समय किनारे पर जय घोष हुआ। सहसा साँड़नियों पर वल्लभ अपने साथियों के साथ आ पहुँचा और 'जय सोमनाथ !' का जयघोष किया। एक हाथ से यति का गला दबाये हुए और दूसरे हाथ से हंसा का शव ऊपर रखते हुए मंडलेश्वर ने जयघोष का उत्तर दिया।

वल्लभ ने पानी में चलने वाले युद्ध को देखा, मंडलेश्वर को पहचाना और उनके गर्दन में प्रविष्ट तीर को भी देखा। एक पल में

साँड़िनी उन्होंने बैठाया और उसपर से उतर कर तट की ओर वे दौड़े और भारी शस्त्रों को दूर फेंक पानी में कूद पड़े।

इतनी देर में देवप्रसाद यति की गर्दन अपने हाथ में पकड़े हुए हाथ से खिसक जाने वाले शव को अपने पास ले आये। उनका माथा फटा जा रहा था। पैर में झुनझुनी चढ़ गई थी; हाथ में थकावट मालूम पड़ रही थी। तीर लगे घातक घाव से खून निकल रहा था और आसन्न मृत्यु की शिथिलता क्रमशः मालूम पड़ने लगी। उन्हें मालूम पड़ा कि कोई आ रहा है।

वल्लभ ने चिल्लाकर कहा—महाराज ! मैं आया।

देवप्रसाद ने सुना और आवाज पहचान कर कहा—वल्लभ ! आवश्यकता नहीं है। उन्हें घाव गहरा लगा था एवं क्षण प्रतिक्षण अपना जीवन-दीप बुझता हुआ प्रतीत हो रहा था। क्षणभर में ही निश्चय कर वे बोले—यहाँ आवश्यकता नहीं है; वल्लभ ! त्रिभुवन के पास जाओ, उसकी रक्षा करना।

'पर महाराज !'

'अपनी हंसा बिना अब मैं जीवित नहीं रह सकता। वह गई, मैं भी जा रहा हूँ।' कह कर मंडलेश्वर ने गौरव एवं अभिमान से पूर्व में उदय होने वाले सूर्य की ओर देखा और 'जय सोमनाथ' का भयंकर जयघोष कर एक हाथ में तड़पते हुए यति को तथा दूसरे में हंसा का शव पकड़े हुए डुबकी लगाई।

'महाराज ! महाराज !' करता हुआ वल्लभ ऊपर ही रह गया। उस स्थान पर पहुँचने के पहले ही मंडलेश्वर पानी के नीचे बैठ गये। गुजरात का सर्वश्रेष्ठ महारथी, कपटी शत्रुओं के कपट एवं प्रेमासक्ति का भोग बन, संसार से ऊब कर सरस्वती की गोद में जाकर बैठ गया। वल्लभ ने दो तीन गोता लगाया पर कोई हाथ नहीं आया, जिससे निराश हो वह ऊपर चला आया। उसकी भवें चढ़ी हुई थीं,

एक अक्षर बोले बिना एक सैनिक से धनुष और बाण लेकर एक पल भी विचार किये बिना यति के जो-जो सैनिक पकड़ गये थे सबको अचूक बाणों से उसने बिंध डाला। तत्पश्चात् वह बोला—जाओ, गाँव से कोई मछुआ बुलाकर अभी नदी में जाल डलवाओ, तीनों लाशें मिलनी चाहिये।

एक सैनिक—महाराज! वह क्या है? देखिये तो पानी में कोई डुबकी खा रहा है।

वल्लभ ने घूम कर देखा, पानी में कोई डूब-उतरा रहा था। तुरंत वह तथा अन्य दो-एक आदमी पानी में कूद पड़े और डुबकी खाते हुए आनंदसूरि को बाहर निकाल लाये। मंडलेश्वर के हाथमें पड़ जाने पर और मृत्यु सन्निकट जान कर श्वाँस योग द्वारा बंद कर वह प्राणायाम करने लगा और जैसे ही मंडलेश्वर ने डुबकी लगाई और उनका हाथ शिथिल पड़ा कि वह उनके पंजे से छूट गया। प्राणायाम पूरा होने पर उसने अपने को स्वतंत्र पाया और हाथ मार कर पानी के ऊपर आ गया।

जिस समय वह पानी से बाहर निकाला गया, वह थक कर लस्त हो गया था; फिर भी नदी के सामने देख कर वह बोला—जिन प्रभु का वैरी गया! चलो गुरुदेव का वचन पूर्ण हुआ। वल्लभ ने उसे पकड़ कर जमीन पर दे मारा। जवाब में यति मूढ़ जैसा हँसा। वल्लभ ने अपना क्रोध दबाया और यति को बंदी बना लेने का आदेश देकर वह पीछे लौट पड़ा।

कुछ साथियों को मछुओं से नदी में जाल डलवा कर लाशों का पता लगाने के लिए वहाँ छोड़ दिया।

———

३३

वल्लभ ने रुद्रमहालय पहुँच कर देखा कि उसके घुड़सवारों में घोर निराशा एवं विषाद फैला हुआ है। मंडलेश्वर का नाम गुजरात के गाँव-गाँव में विचित्र प्रभाव रखता था और तत्काल दो सहस्र मनुष्यों की सेना उनके उँगली हिलाने मात्र से किसी क्षण खड़ी हो सकती थी। किंतु वह प्रभाव अब जाता रहा। उस वीर के लिए युद्ध समाप्त हो गया; उसके बाहुबल का प्रताप जाता रहा। उनके हृदय में उत्साह प्रेरित करने वाला, देवांशी समझा जाने वाला महारथी अदृष्ट हो गया। इतने वर्षों से आशा बनाये रखने वाले निराशा में डूब गये। वल्लभ ने देखा कि इन मनुष्यों को हाथ में रखना कठिन है तथापि साहस कर उन्हें पीछे सरल कूच करने की आज्ञा दी। पीछे लौटते समय सम्पूर्ण पाँचों सौ मनुष्यों ने मंडुकेश्वर की ओर, जिस धाम में क्षेमराजदेव ने संन्यस्त जीवन व्यतीत किया था और जहाँ उनके प्रभावशाली पुत्र की ऐसी दुःखद मृत्यु हुई उस धाम की ओर दृष्टि डाली और सभी की आँखें डबडबा आईं। ठंडक, धूप, भूख एवं युद्ध के अनेक दुःख साहसपूर्वक सहने वाले योद्धाओं का हृदय अपने नायक की मृत्यु से रो उठा। वज्र हृदय, मितभाषी वल्लभ चुपचाप सांड़नी पर बैठा रहा। वहाँ से कूच करने का समय होने पर उसने सिर झुका कर एक आह भरी। उसका हाथ थर-थर काँप रहा था, अपने पास बैठे हुए गंभीरमल्ल को उसने जोर से पकड़ लिया। गंभीर ने सिर उठा कर वल्लभ की ओर देखा और उसमें इतना भाव देख वह चकित हो गया।

'मेरे तो पिता चले गए!' शब्द बड़े हृदय विदारक थे।

'बापू! आपके ही नहीं समस्त गुजरात के। किंतु अब देखना है कि पिता के जाने से पुत्र की देहस्पर्शी न चली जाय। अब सभी

वैरियों की बन आयेगी और मंडल पैर के नीचे रौंदे जायँगे। अब करना क्या है? वहाँ पहुँचते ही लोग कहेंगे कि सेना तोड़ डालो और मीनलदेवी की शरण ग्रहण करो।

'त्रिभुवन सोलंकी अभी जीवित है।'

'हाँ, किंतु न जाने उसका क्या हो रहा है? महाराज परसों मंडुकेश्वर में मुझसे मिले तो कह रहे थे कि त्रिभुवनपाल पाटन में ही है।

'किंतु रानी मधुपुर में हैं और चन्द्रावती की सेना के साथ पाटन जा रही हैं।'

'तब इस समय दो ही बातें करनी हैं, एक तो यहाँ देहस्थली को तैयार रखा जाय क्योंकि रानी के पास सत्ता आते ही सर्वप्रथम वे मंडलों को अधीन करेंगी और दूसरे पाटन की ओर जाना भी आवश्यक है। वहाँ का रंग-ढंग देखना चाहिये। वहाँ अपने मित्र बहुत हैं जिससे वहाँ से त्रिभुवनपाल को ले आने में कठिनाई न होगी।

'गंभीर! पाटन की गद्दी पर त्रिभुवन बैठे तो कैसा?'

'वल्लभसेन जी! आप महाराज से जब यह कह रहे थे तभी से मैं इसे जानता हूँ; यह बहुत ही उत्तम और सरल है। पर जिसे पिता ने ठुकरा दिया उसे क्या पुत्र कभी स्वीकार करेगा? सोलंकी इस बात में दृढ़ हैं। दूसरे की गद्दी पर नहीं बैठेंगे।'

'जानता हूँ। अच्छा, तुम इन मनुष्यों को लेकर देहस्थली जाओ मैं मेरल संभालूँगा और पाटन जाऊँगा।'

'जैसी आज्ञा!'

थोड़ा खुला स्थान आने पर वल्लभ ने साँड़नी खड़ी कराई। सब सवार चारों ओर घेर कर खड़े हो गये। वल्लभ ने बुलंद आवाज में सबको संबोधन कर कहा—पराक्रमी शूरवीरों! हमारे पिताको कपट से, अत्याचार करके मार डाला गया। अब उनके देहस्थली का कोट तोड़ना

भ होगा। उनके पुत्र को पाटन में बंद कर रखा है। हमें अब अपने-अपने घर न जाकर महाराज का प्रतिशोध लेना है; उनकी देहस्थली बनाये रखना है, त्रिभुवनपाल को मुक्त करना है! बोलो है स्वीकार?

सबमें सहानुभूति थी। निराश होते हुए भी वे बोले—हाँ, हाँ; हम सब तैयार हैं।

'गंभीरमल जी! आप इन शूरवीरों को लेकर देहस्थली सँभालें, मैं त्रिभुवनपाल को मुक्त करके आता हूँ।'

साँड़नी बैठा कर गंभीर उतरा और दूसरी पर बैठा। एक व्यक्ति ने, समय बदला हुआ देख, चाटुकार की खूबी से जयघोष किया—'वल्लभसेन महाराज की जय!' कितने ही लोग जयघोष करने जा रहे थे; पर वल्लभ साँड़नी पर से चिल्लाकर बीच में बोल उठे—चुप! क्या महाराज का वंश नष्ट हो गया? बोलो त्रिभुवनपाल महाराज की जय!

सैनिकों ने यह जयघोष किया और वे गंभीरमल के साथ देहस्थली की ओर चले गये। थोड़े मनुष्य एवं हाथ-पैर बँधे हुए यति को लेकर वल्लभ मेरल की ओर बढ़े।

मध्याह्न के समय वे मेरल पहुँचे। उसने सोचा था कि वहाँ भी निराशा एवं खिन्नता व्याप्त होगी पर इसके विपरीत वहाँ उत्साह पूर्ण जीवन दीख पड़ा। सभी सैनिक पाटन पर कूच करने के लिए तैयार हो गये थे। वल्लभ की अनुपस्थिति में मधुपुर से, खिम्वराट से एवं त्रिभुवन द्वारा भेजे गये पाटन से दूत आये थे जिन्होंने रानी की गति-विधि, मुंजाल का बंदी होना एवं पाटन में उठे हुए उपद्रव का पूरा समाचार कह सुनाया था। त्रिभुवन ने वल्लभसेन के पास संदेशा भेजा था कि शीघ्रातिशीघ्र पिताजी को लेकर पाटन की ओर प्रयाण करें। इस संदेश से भी उत्साह और बल बढ़ा था।

वल्लभ को देख सभी लोग आतुरता से उसे चारों ओर घेर कर खड़े हो गये। उसका शोकग्रस्त चेहरा देख सभी लोग समाचार पूछने लगे।

'महाराज अब न रहे, इस चाण्डाल ने उन्हें मार डाला।' कह कर उसने यति की ओर संकेत किया। यति आत्मसंतोष से मुस्कुरा रहा था। पास में खड़े सैनिकों में से क्रोध से मिश्रित एक भयंकर चीख सुनाई दी। कहीं यति उनके क्रोध का शिकार न हो जाय, इससे वल्लभ ने उसको वहाँ से ले जाने की आज्ञा दी।

'अब हमें क्या करना है ?' एक सामंत ने पूछा।

'त्रिभुवनपाल महाराज की आज्ञा शिरोधार्य करें। गंभीरमल जी देहस्थली की रक्षा करने के लिए वहाँ गये हैं और हम यहाँ से पाटन पहुँचकर अपने स्वामी का प्रतिशोध लेंगे।'

सबको यह योजना पसंद आई। प्रत्येक व्यक्ति तैयार होने लगा। थोड़ी देर में सेना ने खिखराट की ओर कूच किया।

३४

जिस समय मेरल में मंडलेश्वर की सेना उनकी मृत्यु के लिये शोक एवं क्रोध का अनुभव कर रही थी, उसी समय राजगढ़ में प्रसन्न म्लान-वदन पीपल की पूजा कर रही थी। एक ही दिन में उसके नेत्रों का तेज, मद भरी चाल, हँसमुख चेहरा तथा आशावादी स्वभाव, सब एकाएक लोप हो गये थे। कल प्रातःकाल की बातचीत के बाद त्रिभुवन बिलकुल बदल गया था; अधर पर अधर बैठाये रहता। सबकी ओर क्रोधपूर्ण आँखों से देखता। मस्तक पर भयंकर त्रिवली धारण किये हुए वह इधर से उधर घूमता रहता एवं सबको आज्ञा देता

हुआ पाटन पर अपनी सत्ता बैठा रहा था। वह गिने-चुने शब्द बोलता, उसे थकावट दूर करने का तनिक भी अवकाश न था। दिनभर वैद्यजी ने अनुनयविनय किया तथापि घाव भरने देने की उसे परवाह न थी। प्रसन्न दिन भर, जहाँ तक हो सका, उसके पीछे-पीछे घूमती हुई उसके लिए आवश्यक वस्तुओंका प्रबंध करती रही पर त्रिभुवन उससे एक बार भी हँसकर बोला तक नहीं। वह समझ गई कि त्रिभुवन का रोष उसके हृदय पर अपना पूर्ण रूप से धाक जमाये हुए है जिससे अन्य एक भी अन्तर्वेग के लिए उसमें स्थान नहीं है। उसने तो त्रिभुवन का ऐसा कठोर व्यवहार उसी दिन देखा। सूर्य की उग्रता से जैसे एक लता कुम्हला जाती है वैसे ही वह भी कुम्हलाने लगी। पीपल की पूजा करते समय प्रसन्न की आँखों में आँसू आ गये। 'सुख के दिन कब आयेंगे? उनके लिए कौनसा प्रयत्न करे? इसी प्रकार त्रिभुवन बना रहेगा तो उसका क्या होगा?' सोच से व्याकुल वह लौटी। त्रिभुवन की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए वह सब कुछ करने के लिए उद्यत थी पर त्रिभुवन के इस प्रकार अलग रहने से कैसे होगा? इतने में लीलाधर वैद्य दिखाई पड़े, उन्हें पुकार कर उसने पूछा—वैद्यजी! ओ वैद्यजी! कहाँ जा रहे हैं? सोलंकी कहाँ हैं?

'मैं तो थक गया बेटा! उसके सिर तो भूत सवार है। बहुत कहने-सुनने पर तब कहीं आना स्वीकार किया। तैयारी कराओ।'

'अच्छा!' कहकर हर्ष से प्रसन्न वहाँ से चली गई और स्वयं अपने हाथों सब खाने की तैयारी कर त्रिभुवन की प्रतीक्षा करने लगी। थोड़ी देर में प्रतिशोध की ज्वाला से जलता हुआ त्रिभुवन आया। आसन पर भोजन के लिए मौन धारण किये बैठा और थोड़ा सा खाकर उठ गया। तब पट्टी बाँधने के लिए वैद्यजी उसे लिवा ले गए। उनके पीछे-पीछे प्रसन्न भी गई। चतुर वैद्यराज थोड़ी देर बाद कुछ औषधि लाने का

बहाना कर वहाँ से खिसक गये। हाथ पर सिर रखे हुए त्रिभुवन बैठा था। पास आकर प्रसन्न ने कंधे पर हाथ रखा।

उसने सिर उठाकर पूछा—क्या है ?

अवरुद्ध गले को किसी प्रकार साफ कर प्रसन्न बोली—इस प्रकार कितने दिन चलेगा ?

'क्या !'

'इस प्रकार कष्ट उठाओगे तो व्रत का पालन कैसे संभव है ? दो-तीन दिनों में ही पुनः बिस्तर की शरण लेनी होगी।' कहते-कहते प्रसन्न की आँखें डबडबा आईं।

'मेरा व्रत पूर्ण हो; बस मुझे और कोई चिंता नहीं।'

मरे-मनसे हँसते हुए प्रसन्न ने कहा—मुझे पता है; पर शय्याग्रस्त होने पर क्या कर सकेंगे ? अभी थोड़ा आराम करें। कल तो सब ठीक हो गया न; अब पाटन में कौन घुसने वाला है ?

अपनी चिंता प्रदर्शित करते हुए त्रिभुवन बोला—ऐसा ? आज शांतुसेठ से मेरी बातचीत हुई। मुझे कुछ दाल में काला मालूम पड़ता है। मैंने उदा से पता लगाने के लिए कहा है सही किंतु मेरी समझ में कुछ नहीं आता। बारह फाटकों में से कब कौन प्रवेश करेगा, यह कैसे कहा जा सकता है ?

त्रिभुवन के साथ थोड़ी-बहुत बात करके ही प्रसन्न का हृदय खिल उठा। मौन से तो बहस अच्छी ! फिर ऐसे विषय में तो वह रस भी लेती थी। उसने कहा—किंतु सभी फाटक तो बंद कर दिये गये हैं।

त्रिभुवन तीक्ष्ण दृष्टि से प्रसन्न को देखता हुआ बोला—इससे क्या ? न तो फाटक का ठिकाना है और न खिड़कियों का ? चाचाजी (कर्णदेव) तो समझते थे कि इस संसार में खा-पीकर मस्त रहने के सिवा और कुछ है हो नहीं। किसी के पास एक कुंजी हो या एक द्वारपाल मिला हुआ हो तो सब किया-कराया धूल में मिल जायगा।

'पर ऐसे कोई थोड़े ही घुस आयेगा। यदि आ भी जाय तो उसे पकड़ने में देर क्या लगेगी? इसमें इतना घबड़ाने की क्या बात है?'

त्रिभुवन की नजर अधिक तीक्ष्ण हो गई।

'मुंजाल मामा या जयदेव कुमार दो में से कोई भी यदि आ जायँ तो यहाँ सभी लोग बदल जायेंगे। तब मेरी प्रतिज्ञा का पालन कैसे होगा। अब तो त्रिभुवन की मृत्यु के पश्चात् ही मीनलदेवी का यहाँ पदार्पण हो सकेगा।

प्रसन्न कुछ समझी। क्या त्रिभुवन उसके पेट की थाह ले रहा है? क्या उसके मनमें कुछ संशय हो रहा है? उसने पूछा—अरे, ऐसा क्या कि जयदेव कुमार आ जायँगे?

'कोई ले आवे तब?'

'किंतु यहाँ कौन ऐसा है?'

'शांतुसेट! और भी लोग हैं। आजकल तो ऐसा है कि एक राही भी पाटन का सौदा करने को तैयार हो सकता है।'

त्रिभुवन का विचार जानने के लिए प्रसन्न बोली—नहीं, नहीं; पाटन-निवासी क्या इतने गये-गुजरे हो गये?

खीझ एवं स्पष्ट तिरस्कारपूर्वक त्रिभुवन ने कहा—पर यहाँ सभी पाटन निवासी हैं कहाँ? मीनलदेवी ने न जाने कितने भाड़े के टट्टुओं को यहाँ भर रखा है।

पास आकर, त्रिभुवन के कंधे पर पुनः हाथ रखते हुए और आँख से आँख मिलाते हुए स्नेह सिक्त दीनतापूर्ण स्वर में प्रसन्न बोली—त्रिभुवन! अभी भी मुझपर अविश्वास है, क्यों?

त्रिभुवन जरा खिला। वह बोला—सच कहूँ? हाँ, मुझे संदेह है!

'मुझपर! मुझपर!! क्यों? इतने वर्षों के बाद भी?'

'प्रथम तो तुम पाटन निवासी नहीं हो।'

चिढ़कर प्रसन्न बोली—हाँ अवश्य, मैं चंद्रपुर की हूँ, जैन हूँ,

और मीनल देवी की भतीजी हूँ, पुत्री जैसी हूँ। व्यर्थ ! लेकिन तुम भूल गए कि मैंने अपना संपूर्ण जीवन पाटन में ही बिताया है। सामलभाट के शब्दों ने हम दोनों को साथ-साथ ही वीरता की शिक्षा दी; यह भी भूल गये ? कल ही सोलंकी कुमार की शर्तों को मानकर पत्नी बनना स्वीकार किया; यह भी भूल गये ? नहीं जानती थी कि इतने वर्षों के बाद भी त्रिभुवन सोलंकी स्मरण दिलायेंगे कि मैं परदेशी हूँ।

प्रसन्न का दबा हुआ क्रोध बाहर निकलने लगा; उसके नेत्र क्रोध से चमक उठे; उसके म्लान मुख पर क्रोध का तीक्ष्ण प्रकाश छा गया। चिंता, क्रोध एवं आसक्ति से मन क्रांत होते हुए भी त्रिभुवन प्रसन्न का लावण्य देखता रह गया। वह पुनः बोली—आपको मैं अपना स्वामी मान चुकी हूँ और आप इस प्रकार संदेह-शलाका से दाग रहे हैं, क्यों ?

थोड़ा नम्र पड़ते हुए त्रिभुवन ने कहा—नहीं, पर अपनी मूर्खता से मैं व्रत-भंग नहीं होने देना चाहता। तुम्हारी चाल-ढाल पहले से सब भिन्न हो गई हैं; तुम पहले जैसी सरल, निष्कपट और स्नेहमयी कहाँ हो ?

'मैं त्रिभुवन के लिए भी निष्कपट नहीं ! अपना स्नेह किस पर उड़ेलूँ ? आपको कहाँ फुरसत है कि उसे स्वीकार करने का कष्ट करें ? कल क्षण भर के लिए ही मिलने के लिए मैं तड़पती रही किन्तु आपने क्या कभी सोचा कि प्रसन्न कहाँ है ?'

'मैं पागल हो गया हूँ, प्रसन्न ! पर तुम सच कह रही हो कि तुम पहले ही जैसी हो ? क्या तुम कुछ नहीं जानती ?'

'अभी दस बार और पूछिये तो विश्वास होगा। आपके लिए कौन पाटन में अकेला दौड़ता हुआ आया ? बार-बार कहते हुए तो मेरी जीभ को भी संकोच होता है !'

'तब कल कहाँ गई थी ?'

क्रोध में भी प्रसन्न को हँसी आ गई। उसके हँसमुख स्वभाव ने

प्राधान्य प्राप्त किया: 'ओ···हो ! इतनी नाराजगी इसी कारण है क्या ? तब कहते क्यों नहीं ?'

'क्यों ? सच बताना ।'

'हाँ हाँ सच; आप जो सोच रहे हैं वह बात सच है । मीनल देवी आज संध्या समय यहाँ चुपचाप आना चाहती हैं और यथासंभव चाँपानेरी दरवाजा से आवेंगी ।'

आतुरता से त्रिभुवन बोल उठे—ऐं !

'एक व्यक्ति उन्हें संध्या समय लेने जाने वाला है ।'

'वह कौन ?'

'किसी से अभी बताइयेगा नहीं, किसी को यह बात मालूम हो गई तो सब बिगड़ जायगा । मुरारपाल—'

'ऐं ? इसीने हरामखोर सबसे आगे सब दरवाजों पर डटा है । अभी—'

'नहीं, अभी कुछ नहीं ! मैं उसका प्रबंध करती हूँ ।'

'तुम क्या कर सकती हो ?'

'यह जानने की आपको न चिन्ता है और न समय ही ! मुरार बड़ा सामंत है, अभी लोगों में उसका मान है और यदि कुछ हो गया तो समाज में व्यर्थ असंतोष फैलेगा । जो लोग आज आपकी पूजा करते हैं वे कल आपकी जान लेने को तैयार हो जायँगे । इस समय जरा भी हल्ला करना ठीक न होगा ।'

'तुमने बात उड़ा दी, क्यों ? न बताना हो तो तुम्हारी इच्छा ।' त्रिभुवन को फिर शक हुआ ।

'फिर बिगड़ उठे, क्यों ? जरा दम तो लीजिये । कल संध्या समय मुरार के पास गई थी ।'

'किसलिए ? मुझसे कहे बिना ?'

'जी हाँ ! अभी मैं आपकी पत्नी नहीं हूँ । मेरा मुरारपाल से कुछ

परिचय हो गया है। परसों रात हम दोनों पाटन साथ ही आये—।'

'ऐं—'

'हाँ ! आप भले ही मनमें द्वेष करें। मैं उसे रिझाने गई थी।'

'तुम ?' त्रिभुवन गंभीरता एवं कठोरता के सिवा और कोई भाव अनुभव करने में अशक्त हो रहा था।

'हाँ मैं ! जो काम कल से होता हो उसे बल से करने से लाभ ? उसे समझाने का यथाशक्ति प्रयत्न करूँगी, आगे भगवान की जो इच्छा।'

'सचमुच ?'

'जो आपकी प्रतिज्ञा वह मेरी भी तो है; अब विश्वास हुआ या और कुछ ?'

'शाबाश, प्रसन्न ! मैं बड़ा शक्की हो गया हूँ। क्षमा करो, मैं अभी बीमार हूँ।'

'तभी तो, सोते भी नहीं और न पट्टी ही बँधवाते हो, ठीक है न ?'

त्रिभुवन का मन थोड़ा प्रफुल्लित हो गया था। वह उठा और प्रसन्न का दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—'प्रसन्न ! रुष्ट हो जाने का एक कारण और भी है।

'वह क्या ?'

बड़ी कठिनता से केवल प्रसन्न को रिझाने के लिए हँस कर उसने पूछा—तुमने सोलंकी पुकारना क्यों प्रारंभ कर दिया।

'तब क्या कहूँ ?'

'त्रिभुवन क्या बुरा है ? सोलंकी पराया जैसा लगता है।'

'बहुत अच्छा, ऐसा ही सही। आज संध्या समय मुरारपाल के पास मैं जाने वाली हूँ, साथ चलियेगा ? नहीं तो आप—तुम घबड़ाओगे कि मैं कहीं भाग तो नहीं गई।'

'अवश्य ही; समय खराब है। कुछ हो जाय तब ?'

'ओ हो ! संभव है कि कोई मुझे उठा ले जाय ! त्रिभुवन ! अब जरा निश्चिंत होकर सो रहो।'

'नहीं, आओ कुछ बातचीत करें। मेरे पास आकर यहाँ बैठो। कितने दिन बाद आज....?' कहते हुए प्रसन्न का हाथ दबा दिया।

कुछ देर पश्चात् लीलाधर वैद्य आये तो इन दो प्राणियों को एकांत में बात करते हुए देखा। सोलंकियों को तीन पीढ़ी से उसने देखा था और उनके कुटुम्ब को वह अपना समझता था। उस कुटुंब के वीर रत्न एवं उसकी युगल जोड़ी देख वैद्य का हृदय भर आया। कुछ देर तक वृद्ध अश्रुपूर्ण नयनों से दोनों को देखता रहा। वे गंभीर प्रभावोत्पादक रीति से पाटन के गौरव की बातें कर रहे थे और किस प्रकार मीनलदेवी को अब हैरान किया जाय इसकी युक्ति सोच रहे थे। बात ही बात में प्रसन्न ने त्रिभुवन का हाथ आँख से लगा लिया। वृद्ध लज्जित हो वहाँ से चला गया।

३५

अपराह्न बीत चला और संध्या होने लगी। पाटन में थोड़ी बहुत शांति हो गई थी। काम-धंधा, व्यापारादि पहले जैसा सरल गति से तो नहीं चल रहा था तो भी लोगों को अब विश्वास हो गया था कि उनकी गौरव-रक्षा का प्रबंध योग्य व्यक्ति कर रहे हैं। सारे योद्धा कोट की रक्षा तथा शत्रु के घेरा डालने पर उसके बचाव के लिए तत्पर हो रहे थे। मोढ़ेरी दरवाजा पर खंगार मंडलेश्वर ने मोरचा डाल रखा था और इसी दरवाजा की खिड़की केवल खुली रखी गई थी। इसमें से होकर जाने और भीतर आने वालों का हिसाब खंगार लेता और आवश्यक सूचना त्रिभुवन के पास पहुँचाता था। खिखराट में चंद्रावती की सेना

लिये हुए मीनलदेवी पड़ी हैं यह समाचार नगर भर में फैल गया था जिससे लोग उससे अत्यधिक क्रुद्ध हो गये थे।

संध्या से कुछ पूर्व राजगढ़ के पिछले द्वार से तीन व्यक्ति निकले। सर्व प्रथम शाल ओढ़े हुए एक लड़की, उसके पीछे वस्त्र से साधारण श्रेणी का लगता हुआ साफा से मुँह ढँके हुए एक राजपूत और सबसे पीछे मूँछों पर ताव देता हुआ डूंगर नायक। सभी तीव्र गति से चाँपानेरी दरवाजा की ओर चले जा रहे थे और उदा के घर के पास पहुँच कर रुक गये। लड़की राजपूत की ओर देखकर बोली—देखो, तुम यहीं खड़े रहो, मैं अभी आती हूँ; आज मेरा शासन है।

लड़की की आँखें हँस रही थीं।

राजपूत को वह हँसी अच्छी न लगी हो ऐसा जान पड़ा। वह कठोरता से देखकर बोला—तुम्हारा कहना वह न माने तब?····नहीं मानेगा तो मैं बल-प्रयोग करूँगा!

'तुम्हें अपना काम निकालना है या ताकत दिखानी है? अप्सरायें किसी से कभी पराजित हुई हैं?'

'अच्छा मैं जरा दूर खड़ा रहूँगा, वह अभी आवेगा।' कह कर राजपूत जरा दूर हट गया।

इस प्रकार अभिसारिका बनकर बाहर निकलने में प्रसन्न की सुसंस्कृत आत्मा कुछ दुःखित हुई तथापि अपने निश्चय के सामने दूसरे विचारों को दूरकर सामने शिवमंदिर में वह चली गई। संध्या के कुछ देर पश्चात् मुरारपाल ने आने के लिए कहा था।

धांड के सेनापति ने चाँपानेरी दरवाजा पर पहरा देने का काम अपने सिर लिया था। ऐसा करने का कारण न मालूम होने से खेंगार एवं त्रिभुवन ने उसे यह कार्य दे दिया था। इस बीच में जिस बाला के पीछे वह पागल हो रहा था और जिसकी स्मृति उसके मन में खलबली मचाये हुए थी, उसने भी अनायास इस मंदिर में मिलने का

संकेत किया जिससे मुरार के हर्ष का ठिकाना न रहा। रानी के लिए दरवाजा खोलने में देर थी जिससे बाला के साथ घड़ी दो घड़ी वार्तालाप में व्यतीत करने का उसे अच्छा अवसर मिल गया। प्रसन्न को भीतर गये शायद ही कुछ क्षण हुए होंगे कि उसने भी मंदिर में प्रवेश किया। जितना उसे अपने शौर्य का गर्व था उतना ही अपने रूप का भी था। इस अवसर के लिए अपने स्वस्थ एवं सुंदर शरीर पर साढ़े नर आकर्षक वस्त्र भी उसने धारण किये थे और अपना अहोभाग्य समझ मनमें प्रफुल्लित हो रहा था।

भीतर जाकर उसने इधर-उधर देखा, दर्शन किया, घंटा बजाया एवं शिवजी के सामने बैठकर वह बोला—जय शंभो! भोलानाथ!

प्रसन्न शिवजी की प्रदक्षिणा वाली गली में आते हुए बोली—माँग, जो माँग वह दूँ।

'ओ हो हो! आप आ गई हैं?'

'दिये हुए वचन का तो आप जैसे लोग पालन नहीं करते, मैंने मना किया था फिर भी पता लगाया न कि मैं कौन हूँ!'

'मेरी तबियत नहीं मानी तो मैं क्या करूँ?'

पहले दिन प्रसन्न मुरार से राजगढ़ में मिली थी और आज इस समय मिलने के लिए कहा था। यह सुंदरी कौन है, यह जानने की आतुरतावश उसने उदा से पूछ लिया था। उदा ने यह बात प्रसन्न से कह दी थी।

'इसी प्रकार भले आदमियों की लाज रखते हो? यह तो अच्छा था कि मैंने कुछ किया नहीं।'

प्रसन्न को शांत करने के विचार से वह बोला—मैंने किसी से नहीं कहा कि हम साथ-साथ आये हैं।

उतावली का ढोंग कर प्रसन्न बोली—बड़ा अनुग्रह हुआ; अच्छा, अब मैं चलूँ।

मुरार ने बाहर आकाश की ओर देखा, अभी अंधकार पूरा छाया हुआ नहीं था जिससे अभी उसे समय था।

'नहीं, नहीं, क्या आईं और क्या चलीं? इतने ही के लिए मुझे बुलाया था।'

'मैंने आपको क्या वचन दिया था? एक बार मिलने का, सो आकर मिली। रात में मुझे कोई इस प्रकार देखेगा तो क्या कहेगा?'

'थोड़ी देर तो बैठिये। इस उत्पात के समय कौन देखने के लिए बैठा है? और आपकी बूआजी भी तो नहीं हैं।'

दो खंभों के बीच में जड़े हुए कटघरे पर बैठते हुए वह बोली—अच्छी बात है, लो थोड़ी देर के लिए बैठ जाती हूँ, अब बोलो—क्या कहते हो?

'उस दिन मीनलदेवी को छोड़कर आप क्यों आईं?'

'वह निजी बात है, किसी से कहने की नहीं है।'

'मैंने एक बात सुनी है वह सच है क्या? वे आपका विवाह अवंती में करना चाहती हैं।'

मुरारपाल के महत्त्वाकांक्षी-मन के सामने एक स्वप्न दिखाई पड़ रहा था। जबसे उसे मालूम हुआ कि उसके साथ आनेवाली बाला मीनलदेवी की लाड़ली भतीजी है तबसे उसकी आशाओं का पार नहीं था। मीनलदेवी के हाथ में यदि सब राजसत्ता आ गई और देवप्रसाद की शक्ति क्षीण हो गई तो मालवा के साथ युद्ध अवश्यंभावी है। ऐसे युद्ध के अवसर पर उसके जैसे सुदक्ष एवं अनुभवी योद्धा को अग्रस्थान मिलेगा, यह भी स्वाभाविक है और यदि प्रसन्न मालवा से विवाह न करे तो नवीन उत्साही योद्धा को यह सुंदरी क्यों न वरण करेगी? पता लगाने पर उसे यह भी मालूम हुआ था कि देवप्रसाद के पुत्र के साथ प्रसन्न का संबंध करने की बातचीत कुछ अवश्य चल रही थी पर मीनलदेवी के दबाव से यह बात जहाँ की तहाँ रह गई। इस समय देव-

कृपा से मीनलदेवी पर उपकार चढ़ाने का अच्छा अवसर हाथ आने वाला था। यदि रानी को नगर में प्रविष्ट कर, राजगढ़ पहुँचा दे तो दूसरे ही क्षण नगर में फैली हुई सब अशांति दूर हो जायगी। उसकी सत्ता पूर्ववत् जम जायगी; सत्ता के तेज को प्रज्वलित करने वाला मुरार गुर्जरेश्वरी का दाहिना हाथ हो जायगा। पीछे प्रसन्न के साथ विवाह तो एक मामूली बात हो जायगी। इस स्वप्न का व्यूह रचते समय सामने आनेवाली बाधाओं की उसने जरा भी चिन्ता नहीं की थी। इस स्वप्न को सिद्ध करने के लिए उसने प्रसन्न को रिझाना प्रारंभ किया और धीरे-धीरे यह जानने का प्रयत्न करने लगा कि उसे मालवराज के साथ विवाह करना पसंद है या नहीं। प्रसन्न इस प्रकार जालमें फँसने वाली नहीं थी अतः उसने भी मुरार को आसमान पर चढ़ा दिया।

थोड़ी देर में देवालय का रक्षक दीपक जलाने आया, तब मुरार उठकर बोला—अच्छा अब चलिये, आपको देर होती होगी।

'वाह! वाह!! काम निकला और दुःख विसरा! अब मैं क्या करूँ? राजगढ़ का दरवाजा तो बंद हो गया होगा और जिस व्यक्ति से खिड़की खुली रखने के लिए कह आई थी वह भोजन करने गया होगा।'

'मुझे कुछ काम है. जहाँ कहिये पहुँचा दूँ।'

'इस समय कहाँ जाओगे? तुम्हारा पहरा तो रात में चाँपानेरी दरवाजा पर है। सामने उदा के मकान में सोते हो न?'

अंधेरा बढ़ता जा रहा था। मुरार प्रलोभन में पड़कर बोला—जी हाँ, मुझे इस समय अत्यन्त आवश्यक काम है।

'तो मैं बैठी हूँ। काम कर आओ, तब मुझे पहुँचा देना।'

'मैं तुरंत नहीं आ सकूँगा।'

चिढ़ जाने का ढोंग कर प्रसन्न बोली—तब क्या एक दिन के लिए भी अपना काम टाल नहीं सकते?

'जी नहीं।'

क्रोध का ढकोसला करते हुए प्रसन्न बोली—अच्छी बात है तो जाओ। मैं यहीं बैठी रहूंगी और जब इच्छा होगी चली जाऊँगी। तुम अपना काम करो।

'नहीं, नहीं, किंतु—'

'बस-बस ! मुझे स्वार्थी आदमी का मुँह अच्छा नहीं लगता।'

'ऐसा कहियेगा !'

'जाओ चाहे मत जाओ; मैं तो पहले से ही जानती हूँ कि पाटन की सभ्यता धांड में पड़े-पड़े नष्ट हो गई।'

'बहुत जरूरी काम से जा रहा हूँ, यदि आपको मालूम हो जाय तो मुझे तुरंत जाने को कह देंगी।'

जरा लचक के स्वर में प्रसन्न बोली—मुझे भी बताओ; ऐसा क्या काम है ?

प्रसन्न का हाव-भाव क्षण-क्षण में बदल रहा था। कठोरतम हृदय वाले मनुष्य का भी हृदय पिघल जाता। फिर वह तो पिघलने के लिए एक पैर से तैयार खड़ा था।

'क्षमा कीजिये ! कहने लायक बात नहीं है, कल प्रातः बता दूँगा। मालूम होने पर आप समझ जाइयेगा। मुझे जाने दीजिये, समय नजदीक आता जा रहा है।'

तिनककर प्रसन्न बोली—दरवाजा खुला है, जाओ। मुझपर विश्वास नहीं है तो मुझे भी सुनने की कौन सी परवाह है !

'यह क्या कह रही हो ? प्रसन्नमुखी ! आप बुद्धिमती हैं, चतुर हैं; इतना भी नहीं समझ सकतीं ?'

'मेरी बुद्धि पथरा गई है, बस ! जाओ न, खड़े देख क्या रहे हो ?'

'आप तो मेरे दिल के टुकड़े-टुकड़े किये जा रही हैं।'

'मेरा दिल तो कभी का टुकड़े-टुकड़े हो चुका, जानते हो !'

कह कर प्रसन्न जहाँ बैठी थी वहाँ से छलांग मार कर उतर पड़ी। उसके पायल की झंकार ने योद्धा का हृदय जीत लिया।

'प्रसन्नमुखी ! आप मुझे बड़ा परेशान कर रही हैं। बाहर आइये। मैं आपको बता दूँ किंतु देखिये, गुप्त रखियेगा।'

'मुझे कुछ सुनना ही नहीं है।' कहकर प्रसन्न शिवजी के भीतर के कमरे में जाने लगी।

निराशा से नुगार ने पुकारा—प्रसन्नमुखी !

तिरस्कार से पीछे देख कर प्रसन्न ने पूछा—कहो क्या है ?

'इधर आओ, मैं बताता हूँ।'

'क्या बताना है ?'

'चलो, बाहर चलो तो बताऊँ।' कहकर प्रसन्न के साथ-साथ मंदिर के द्वार तक वह आया। 'प्रसन्नमुखी ! मुझे आपकी बूआजी ने एक बहुत बड़ा काम सौंपा है।'

उपेक्षा से प्रसन्न ने पूछा—क्या ?

'उन्हें नगर में ले आना ! वे इस समय इसी दरवाजे से आयेंगी।'

कुछ जानती न हो इस प्रकार बाला ने पूछा—पर भीतर कैसे आयेंगी ? दरवाजे तो सब बंद हैं और कुंजी त्रिभुवनपाल के पास है।

'मेरे पास भी कुंजी है; किसी से कहना मत।'

'तुम कहाँ से ले आये ?'

'महारानी ने मुझे दिया है। दरवाजा के पास चलिये ! अभी बाहर से कोई दरवाजा ठोंकेगा। वहाँ के द्वारपालों को मैंने छुट्टी दे दी है जिससे वहाँ कोई न होगा।'

'किंतु खेंगार सिंह, त्रिभुवन एवं अन्य लोग क्रुद्ध होंगे तो ?'

'कैसी बात कर रही हो ? यह सब उपद्रव तो चंद्रावती की सेना के कारण है, जो बाहर पड़ाव डाले पड़ी है। जहाँ रानी भीतर आई

और लोगों को मालूम हुआ कि शांति हो जायगी। त्रिभुवनपाल से कहो कि जाकर झख मारे।'

अंतिम शब्द सुन प्रसन्न का मन हुआ कि मुरार की नाक काट ले। वह क्रोध दबा कर बोली—पर आप तो पाटन निवासी हैं!

'सात पीढ़ी से। क्यों, इससे क्या?'

'अपने नगरजनों की नाक कटाओगे?'

'लोगों को नाक है कहाँ? यदि हो भी तो मीनलदेवी की आज्ञा मेरे सिर-माथे है। किंतु आप ऐसा क्यों कह रही हैं? रानी का आना आपको अच्छा नहीं लगता क्या?'

'यहाँ से न गई होतीं तो सब ठीक था किंतु शोक त्याग, पाटन छोड़ चंद्रावती के दल के साथ जाकर मिल गईं जिससे मेरा मन खट्टा हो गया। पाटन की रानी को तो उसके प्रभाव की मूर्ति होना चाहिये न कि उसे पराधीन बनाने वाली!

'प्रसन्नमुखी! आपकी बात तो सामलभाट की तरह होती है।'

'उनके चरण-रज जितना भी अभिमान तुममें होता तो कहीं अच्छा था। पर यह कर क्या रहे हो?'

'दरवाजा के पास खड़ा होता हूँ कि कोई बाहर आये तो खबर पड़ जाय।'

इस समय चाँपानेरी दरवाजा के पास आवागमन न होने से वे निश्चिंत हो बात कर रहे थे।

'मुरारपाल! तुम किसके हो? पाटन के या उसकी रानी के?'

'पाटन की रानी मेरी स्वामिनी हैं।'

अपने नगर को बिकते हुए देखा करोगे? राजा-रानी तो आज आवेंगे और कल चले जायँगे, किंतु गई हुई टेक क्या वापस आयेगी? तुम्हारे लिए पाटन का तो पृथ्वी में सर्वप्रथम स्थान होना चाहिये।

'है ही किंतु इससे क्या रानी की आज्ञा का अनादर करूँ?'

'एक निर्जीव आज्ञा के अनादर के भय से अपने पाटन निवासियों को जीवित बेच दोगे ? उनके गौरव पर, उनकी स्वतंत्रता पर पानी फेर दोगे ?'

'व्यर्थ नाराज होती हैं ? मेरा धर्म स्वामी का आज्ञापालन ही है ।'

'ऐसा ही यदि आपके पूर्वज सोचते होते तो आज पाटन पर गजनी के प्रतिनिधियों का शासन होता । मुरारपाल, तुम शूरवीर हो, बुद्धिमान हो । मैं रास्ते की चलने वाली नहीं हूँ, राजा की पुत्री हूँ । आँचल पसार कर भिक्षा माँगती हूँ कि पीछे लौट चलो और जिस रानी ने पाटन को छोड़ दिया, मुंजाल एवं मंडलेश्वर को धोखा दिया उस रानी को धूल फाँकने दो; अपने नगर की नाक काट कर उसे संसार में तिरस्कृत न बनाओ ।'

'मैं नहीं जानता था कि बूआ-भतीजी में इतना वैर है ।'

'मैं भी नहीं जानती थी कि धांड का सेनापति इतना चापलूस है ।'

'प्रसन्नमुखी ! मैं किसकी प्रशंसा करूँ ? आपके शब्दों की या आपके प्रोत्साहन की ? इच्छा होती है कि जीवन भर आपकी फटकार और आपके नजरों का तीक्ष्ण प्रहार सहन करता रहूँ । किंतु इस समय आपका कथन चिकने पत्थर पर पानी के समान है ।'

इतने में बाहर से दरवाजे को किसी ने दो-तीन बार ठोका । तुरंत मुरार घूम पड़ा और कान लगा कर सुनने लगा और कुंजी निकालने के लिए उसने जेब में हाथ डाला ।

प्रसन्न उसका हाथ पकड़ते हुए बोली—मुरारपाल ! तुम सच्चे राजपूत होकर क्या कर रहे हो ?

'हाँ, आप मुझे रोकें नहीं, मैं अटल हूँ ।' कहकर मुरारपाल ने कुंजी निकालकर दरवाजे पर ठोंका और अर्गला उठाने के लिए हाथ बढ़ाया ।

उतावली से प्रसन्न ने कहा—ऐसा अधम काम करोगे ? जरा सुनो तो !

अर्गली हटा देने से खिड़की केवल साँकल से ही बंद रही और उसके मोटे दरवाजे में दराज दिखाई दी। बाहर के मनुष्य ने इस दराज में से पूछा—कौन, मुरारपाल ?

साँकलपर हाथ रखकर मुरार बोला—जी हाँ, रानी जी आई हैं ?

'हाँ, थोड़ी दूर पर हैं, ले आऊँ ?'

'जाओ, जल्दी करो।' कहकर मुरार ताला खोलते खोलते रुक गया। प्रसन्न को ढाढ़स हुआ, अभी थोड़ा समय था।

'मुरारपाल ! तुम नहीं मानोगे ?'

'जी नहीं।'

'क्यों ? रानी की खुशामद से लाभ ? जो कहो तुम्हें दिला दूँ।'

बिचारा मुरारपाल प्रसन्न को नाराज कर अलग नहीं कर सकता था जिससे वह बोला—लाभ ! मेरा धर्म—

'अपना नगर खोना, टेक छोड़ देना, प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता से हाथ धो बैठना यही तुम्हारा धर्म है कि और कुछ ?' प्रसन्न के शब्दों में तिरस्कार था।

मुस्कुराते हुए प्रसन्न के तेजस्वी, मदपूर्ण सौन्दर्य की ओर देखते हुए मुरारपाल बोला—आपसे मेरा क्या लाभ होगा ?

प्रसन्न ने मुरार के भाव को देखा और उसे अपनी धारणा की अपेक्षा मुरार कहीं अधिक तुच्छ एवं स्वार्थी जान पड़ा। उसे पराजित करने का निश्चय कर वह बोली—क्या चाहिये ? यथाशक्ति जो कुछ मुझसे हो सकेगा दूँगी। मैं पाटन निवासियों के पक्ष में हूँ। इस समय यदि रानी को नगर में लाओगे तो मैं तुमसे कभी बात तक नहीं करूँगी। कायर, खुशामदी, नगरद्रोही का मैं नाम लेना भी पाप समझती हूँ !

आँखों से रसीले चुटीले तीर मारते हुए प्रसन्न ने पूछा—रानी को खुश कर क्या पाओगे ? पदवी ! वह तो है ही। सत्ता ! वह भी है।

कीर्त्ति ! वह तो द्रोहियों को मिलती नहीं। अब क्या चाहते हो ?

'सुंदरी ! लाभ कहो, धर्म कहो, जो चाहे कहो किंतु मुझे सीधे मार्ग से क्यों हटा रही हो ? तुम्हें क्या लाभ है ?'

'मुझे ? तुम्हारे जैसा शूरवीर योद्धा द्रोही न बने यह लाभ क्या कम है ! मुरारपाल, रानी सब कुछ देंगी किंतु जो मैं दे सकूँगी वह वे नहीं दे सकतीं।'

प्रसन्न की आँखों के तेज का सामना न कर सकने के कारण नीचे देखते हुए उसने पूछा—क्या ?

'पद्मिनी का हाथ !' प्रसन्न ने गर्व से कहा। उसके स्वरूपवान चेहरे पर मदभरे नयनों में अभिमान का प्रकाश पड़ रहा था। मुरार, इस प्रकार पीछे हट कर चौंक उठा मानो सिरपर वज्र गिरा हो।

'तुम्हारा ?'

'हाँ मेरा, प्रसन्नमुखी का। पद्मिनी बिना सारा संसार सूना, समझे ! संसार सुधारोगे या बिगाड़ोगे ?'

प्रसन्न ने अपने दोनों हाथ मुरार के दोनों कंधों पर रख दिये। साहसी प्रसन्न अंतिम पासा फेंक रही थी, उसके बड़े-बड़े नेत्रों की चमक मुरार के हृदय में दावानल उत्पन्न कर रही थी। प्रसन्न के स्पर्श से वह काँप उठा, उसकी दृढ़ता जाती रही।

'प्रसन्नमुखी ! मुझे कहाँ घसीटोगी ? सच कह रही हो ?'

'अपनी कुंजी मुझे दो फिर जो कहो मुझे स्वीकार है।'

प्रसन्न का हाथ पकड़ते हुए प्रेमोमंग में वह बोल उठा—सचमुच ?

मुरारपाल के शिथिल हाथ से प्रसन्न ने कुंजी लेते हुए कहा—हाँ, लाइये। वह अर्गली बंद करिये।

काँपते हुए हाथ से मुरार ने वैसा ही किया।

जरा मुस्कुराते हुए प्रसन्न बोली—मुरारपाल जी ! आज आपने पाटन को जीवन दान दिया।

'आप हमें कब जीवन दान देंगी ?'

सहसा स्वरूप बदलकर धिक्कार पूर्ण स्वर में प्रसन्न बोली—मुरारपाल ! मेरा वश चले तो चौरासी जन्म में भी नहीं।

'ऐं !'

'ऐं क्या ? हाँ, जो कार्य तुमने पाटन के लिए नहीं किया, उसके गौरव, उसके स्वातंत्र्य, अपने बापदादा की टेक के लिए नहीं किया, वह इस मिट्टी की पुतली के लिए कर दिया। मैं ऐसे के साथ विवाह करूँगी ? अरे ! तुम्हें स्पर्श भी नहीं करूँगी। यहाँ सब धांड की भीलनी नहीं हैं।'

लज्जा, क्रोध एवं निराशा से मुरार दिग्मूढ़ जैसा प्रसन्न को देखता रहा। उसने पूछा—क्या सच कह रही हो ?

'हाँ, हाँ ! दस हजार बार सच। तुम्हारा मुख देखकर मेरी आँखें लज्जा से झुक जाती हैं। तुम्हारे जैसे द्रोहियों को तो कोल्हू में पेर कर समाप्त कर देना चाहिये। तुमने मेरा कहना माना होता और पाटन को टेक के लिए कुंजी दे दिया होता तो अपने भाई से अधिक तुम्हें मानती, किंतु अब ? अब, तुम्हारा मुँह देखने से भी पाप लगता है।'

'कपटी ! मेरी भलमनसाहत का यह परिणाम ? तुम्हें पता है कि तुम्हारे हाथ से कुंजी छीन लेना कितना सरल है ?

'साहस हो तो ले लो, देखूँ ? अब चुपचाप चले जाओ, नहीं तो लोग तुम्हारी फजीहत कर डालेंगे।'

'ऐसा ?' कहकर मुरार सहसा प्रसन्न की ओर झपटा।

प्रसन्न जानती थी कि दरवाजे की आड़ में त्रिभुवन एवं डूंगर नायक खड़े हैं अतः वह पीछे हटी और बीच में त्रिभुवन की तलवार आ गई।

त्रिभुवन की शांत सत्तापूर्ण गर्जना सुन पड़ी—मुरारपाल ! एक राजपूत वीर का यही कर्त्तव्य है ? यह कहो कि आज इस प्रसन्न ने तुम्हें पाप करने से बचा दिया।

मुरार सब खेल समझ गया। अब ध्यान आया कि उसने कैसी मूर्खता की! उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या करे। उसने देखा कि चारों ओर कृतघ्नता, विद्रोही रूप में लज्जा एवं अपयश ही मिलेगा। वह जहाँ का तहाँ पाषाणवत खड़ा रह गया। पश्चात् वह बोला—त्रिभुवनपाल! मुझे नगर से बाहर जाने दीजिये, अब मैं यहाँ नहीं रहना चाहता।

'प्रातःकाल मोढेरी दरवाजा से चले जाना, छुट्टी दे दूंगा। इस समय घर जाओ। प्रसन्न! मुरारपाल का कुछ काम है?'

दूर खड़ी वस्त्र ठीक करती हुई प्रसन्न बोली—जी नहीं। नमस्कार!

डूंगर! तुम इस फाटक पर पहरा दो, सावधान रहना।

'त्रिभुवन! यह डूंगर आपकी ठीक तरह से सेवा करता है। सब कार्य हो जाने पर एक जागीर इसे भी दे देना।'

डूंगर फूलकर कुप्पा हो गया, वह हर्ष से बोला—बहन को अखंड सौभाग्य मिले।

प्रसन्न और त्रिभुवन एक ओर चले गये। मुरार सिर नीचा किये हुए धीरे-धीरे दूसरी ओर चला गया।

थोड़ी देर बाद बाहर किसी ने दरवाजा खटखटाया। भीतर डूंगर नायक मुँह पर हाथ दिये हँस रहा था। आखिर थक कर ठोंकने वाले ने दरवाजा पीटना बंद कर दिया। डूंगर ने भीतर से दरवाजे को संबोधन कर कहा—नमस्कार!

३६

त्रिभुवन और प्रसन्न राजगढ़ की ओर चले तो उस समय उनका मन प्रफुल्लित था एवं प्रसन्न की चुहल सुनकर त्रिभुवन का क्रोध बहुत

कुछ दूर हो गया था। गढ़ में पैर रखते ही कल्याणमल ने सूचित किया कि दो-तीन व्यक्ति कोई समाचार लेकर आये हैं। त्रिभुवन ने उन्हें अपने पास बुलवाया। पहला सैनिक पाटन के एक टुकड़ी का था जो यह सूचित करने के लिए आया था कि संध्या समय विखराट के सैनिकों के साथ थोड़ी हाथावाँही हो गई। दूसरा व्यक्ति यह सूचना देने आया था कि मालवराज ने गुर्जराष्ट्र में प्रवेश किया। तीसरा व्यक्ति बड़ी कठिनता से आया हो ऐसा जान पड़ रहा था।

'महाराज! बापू! मुझे क्या पहचानते नहीं? मैं—'

'कौन? रामसिंह!' कहते हुए त्रिभुवन आगे आया। 'कैसे हो? कोई नया समाचार? पिताजी, वल्लभ—'

'जी हाँ, बापू! मुझे वल्लभसेन महाराज ने ही भेजा है।'

'कहाँ हैं वे?'

'अन्नदाता! वे मेरल की सेना के साथ विखराट से कुछ आगे आ गये होंगे। मुझे सूचना देने के लिए पहले भेज दिया है।'

प्रसन्न की ओर घूम कर त्रिभुवन ने कहा—शाबाश! अब अपनी बूआ से कहो कि चत्वें मजा! पिताजी का पुण्य अभी तप रहा है। पिताजी—

'पर महाराज! एक बात और।' रामसिंह के स्वर में घबड़ाहट और कंपन था।

'क्या?' त्रिभुवन के मन में कुछ संदेह उत्पन्न हुआ।

'मैं गंभीरमल के साथ था।' घबड़ाहट में समझ में ही नहीं आया कि बात कैसे शुरू करे।

त्रिभुवन ने व्यग्र होकर पूछा—हाँ मंडुकेश्वर में। तत्पश्चात् पिताजी वहाँ यथा समय आ गये होंगे, कहाँ हैं? घबड़ा क्यों रहे हो? तुम्हारी आँखों में पानी क्यों भरा आ रहा है, बोलो!

रामसिंह रो पड़ा—महाराज ! क्षमा करो, मुझसे कहा नहीं जाता। मंडलेश्वर महाराज····अब····न····रहे········!

त्रिभुवन के मुँह पर जो कठोरता, उग्रता कल थी वही पुनः आ गई। अपने मनोविकार को वश में रख उसने पूछा–कहाँ ? कब ?

'महाराज ! कल रात्रि में; सरस्वती की धारा में।'

'सरस्वती की धारा में ! तब माताजी कहाँ हैं ?

रामसिंह ने सब घटना संक्षेप में कह सुनायी। त्रिभुवन ने उसे सुना। लीलाधर उदा आदि गढ़ के लोग भी वहाँ आ गये थे। सभी शोक से व्याकुल हो उठे। प्रसन्न ने वैद्यजी से त्रिभुवन के साथ रहने के लिए कहा ! समाचार सुनने के पश्चात् कुछ देर त्रिभुवन मौन रहा। उसकी आँखों में न आँसू था, न चेहरे पर शोक ! उसका मुख शववत् जड़ हो गया था। उसके नेत्र दो अंगारे के समान चमक रहे थे।

कठोर आवाज में त्रिभुवन बोला—उदा ! नगर में डुग्गी पिटवा कर पंडित, शास्त्री, सामंत तथा महाजन सेठों को तुरंत बुलवाओ।

आदेश दे त्रिभुवन वहाँ से चला गया; किसी ने उसके पीछे जाने का साहस नहीं किया। केवल प्रसन्न गई। इस समय त्रिभुवन के क्रोध का उसे अत्यधिक भय होने पर भी आश्वासन देना अत्यावश्यक था। भीतर जाकर, वहाँ कोई है या नहीं, यह देखे बिना वह गद्दी पर पड़ गया।

प्रसन्न क्षण भर असमंजस में खड़ी रही। इतने वर्षों से दोनों निर्दोष साथी एक साथ खिलवाड़ करते रहे। पर गत दो दिनों से आपस के संबंध में कुछ परिवर्तन हो गया था। भविष्य के संबंध का उन्हें ज्ञान हो गया था। प्रसन्न की मानसिक स्थिति के परिवर्तन का कारण भी यही ज्ञान था। त्रिभुवन को स्पर्श करना, भावावेश में उसके हाथ को लेकर अपने हाथ में दबाना उसके लिए अब बड़ा ही सुखद

पर गुरुतर कार्य था। आज चाहते हुए भी वह लजा गई और वैसा न कर सकी। ऐसे समय स्त्रियों के सुलभ ज्ञान द्वारा उसने देखा कि त्रिभुवन संतप्त हो गया है; उसकी चित्तवृत्ति इतनी उत्तेजित हो गई है कि साधारण मार्ग से उसका प्रवाह नहीं निकल पाता। उसकी अनुभूतियाँ उसे निस्सहाय एवं विकराल बना रही थीं। यह स्थिति बड़ी ही बुरी होती है और इससे त्रिभुवन की केवल वही रक्षा कर सकती थी। यह उसने देखा और लज्जा, मर्यादा आदि सबको दूर कर त्रिभुवन के पास गई और उसका हाथ अपने हाथ में लेने का प्रयत्न करने लगी। त्रिभुवन ने उसका हाथ जोर से झटकार दिया और अपनी विकराल आँखों से प्रसन्न को तरेर कर देखता रहा। प्रसन्न तनिक भी नहीं डरी, उसने पुकारा—त्रिभुवन !

'तुम यहाँ से चली जाओ, मुझे किसी की आवश्यकता नहीं है।'

वह उठ कर बैठ गया। प्रसन्न ने पास जाकर उसका हाथ पकड़ा और दूसरे हाथ से उसका सिर अपनी गोद में रखने का प्रयत्न करने लगी।

'जाती हो या नहीं ?' कह कर त्रिभुवन ने धक्का देकर प्रसन्न को दूर ढकेल दिया। बैठते हुए बोला, 'इस समय भी हँसी-मजाक।'

प्रसन्न को चोट लगी फिर भी वह उठी और त्रिभुवन के पास जा बैठी। उसके कंधे पर उसने हाथ रखकर पूछा—क्या करना चाहते हो, यह तो मुझे बताओ ?

त्रिभुवन और भी उत्तेजित हो उठा। क्रोध से हाथ की मुट्ठियाँ बाँधकर उसने ऊपर उठाया किन्तु स्नेहमयी प्रसन्न की सुधारस से डबडबायी आँखों को देख अपना हाथ नीचे गिरा दिया। 'प्रसन्न ! मुझे क्यों व्यर्थ चिढ़ा रही हो? तुम देखती नहीं हो कि अब मैं बिना माँ-बाप का संसार में अकेला और निराधार हूँ ?'

रुकी हुई उर्मियों का प्रवाह सहसा निकल पड़ा। त्रिभुवन की कठो-

रता दूर हो गई। वह रो पड़ा; हिचकियों ने उसके संपूर्ण शरीर को हिला डाला। वह चिल्ला उठा—पिताजी ! हाय पिताजी !

एक शब्द-उच्चारण किये बिना प्रसन्न ने उसे अपने हाथ में ले लिया और एक छोटे बालक की तरह उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। दुःख के भार से क्रांत त्रिभुवन उसके वशीभूत हो गया। स्त्री जाति में सदा मातृत्व का अंश रहता है। यही अंश उनमें सहिष्णुता, क्षमा एवं स्नेह प्रेरित करता है। दुःख शमन करने की शक्ति देता है और यही कारण है कि उनका दिग्विजय इतना सरल हो जाता है।

जैसे ही नगर में यह समाचार फैला कि यति ने रुद्रमहालय में आग लगाकर मंडलेश्वर को भस्म कर डालने का प्रयत्न किया और उसमें से निकल, तैरकर भागते समय यति के कपटाचार से वे स्वर्गवासी हुए, तो लोगों में खलबली मच गई। विलाप का स्वर चारों दिशा से सुनाई पड़ने लगा। वीर पाटन निवासी शौर्यभक्त थे और चाहे जैसे रहे हों पर मंडलेश्वर थे शौर्य की मूर्ति। उनका स्वभाव, उनकी कीर्ति, उनका बाहुबल, उनके विवाह एवं मृत्यु के प्रसंग नीरस मनुष्य के हृदय को भी प्रशंसा, और भक्ति से पूर्ण कर देने वाले थे। संपूर्ण नगर में ऐसी ग्लानि व्याप्त हो गई मानो आज ही सबके पूज्य पिता की मृत्यु हुई हो। सबके मन में रानी तथा चंद्रावती की सेना का सामना कर प्रतिशोध लेने का संकल्प दृढ़ होने लगा।

प्रातःकाल उदा ने प्रत्येक जाति के सरदार एवं प्रतिष्ठित सेठ सामंतों को एकत्र होने के लिए कहला भेजा था। सभी शोकग्रस्त एवं क्रोध से भरे हुए दरबार में आये। सबके आ जाने के पश्चात् खेंगार मंडलेश्वर त्रिभुवन को बुला लाये। त्रिभुवन बहुत ही नरम पड़ गया था। केवल उसके नेत्रों में ही प्रतिशोध का तेज चमक रहा था। उसके आते ही सबने उठकर उसका सम्मान किया। सबके बैठ जाने पर त्रिभुवन बोलने लगा। उसकी आवाज शांत एवं धीमी थी:—

बंधुत्र्रो गुजरात की गद्दी किस प्रकार कलंकित की गई है, यह आपने सुना होगा। आपको बुलाने का एक ही कारण है। अपने माता-पिता के हत्यारे के प्रति पुत्र रूप में मेरा एक ही धर्म है: उसे मेरी यह तलवार पूरा करेगी ! आप क्या इससे सहमत हैं ? अब तक हम लोगों का दृष्टिकोण था कि विदेशी राज्य में प्रवेश न करने पायें, पर अब मैं राजद्रोही हूँ। आप भी क्या साथ देंगे ? मेरी राय से मीनल-देवी के लिए अब एक ही मार्ग है। चंद्रपुर यदि वे चली जायँ तो जयदेव कुमार सोलंकियों की गद्दी पर बैठेगा अन्यथा जीवित रहते पाटन में मीनलदेवी को मैं पैर न रखने दूँगा। यदि आप मेरे विचार से सहमत न हों तो मैं चला जाऊँ। मेरी तलवार अपने माता-पिता का बदला लेने के लिए तड़प रही है। आप सब नगर के वयोवृद्ध जन हैं, विचार कर देखिये। अपने मंडलेश्वर का प्रतिशोध लेंगे या चुपचाप बैठे रहेंगे ?

सभी एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। त्रिभुवन ने यह देख कर कहा—मैं जाता हूँ। आप सब निर्णय कर कहला दें।

यह कह कर वह भीतर चला गया।

❀ ❀ ❀

वहाँ पर राजकुटुंब की कई स्त्रियाँ, कर्णदेव की दो रानियाँ खड़ी थीं। जिनका काम निश्चिंततापूर्वक खा-पी कर मौज करना था। चाहे जो सोलंकी गद्दी पर बैठे उन्हें कोई मतलब नहीं था। वहाँ प्रसन्न नहीं दिखलाई दी जिससे त्रिभुवन आगे बढ़ा। प्रसन्न जल्दी-जल्दी अपना गहना कपड़ा इकट्ठा कर रही थी।

'क्या कर रही हो ?'

'पाटन से बाहर जाने की तैयारी।'

त्रिभुवन उसके नजदीक गया, उसकी कठोरता कुछ कम हुई। प्रसन्न का हाथ लेकर कृतज्ञतापूर्वक उसने उसे दबाया। अनजान में

ही प्रसन्न का हाथ त्रिभुवन की कमर से लिपट गया। कुछ देर तक दोनों इसी प्रकार चुपचाप खड़े रहे।

वहाँ दरबार में मुखियों में कुछ देर तक उग्र वादविवाद होता रहा। सभी दो बात पर एकमत थे। प्रथम देवप्रसाद की मृत्यु बड़ी ही हृदय-विदारक एवं पाटन के गौरव के लिये बड़ी अपमानजनक थी अतः उनके लिए कुछ करना आवश्यक था। द्वितीय मीनलदेवी पर लोगों का विशेष भाव नहीं रह गया था। पंडितों एवं शास्त्रियों में लीलाधर तथा गजानन को छोड़ सभी रानी के विरुद्ध थे। सामंतों में भी अनेक या तो मंडलेश्वर के कारण या चंद्रावती की सत्ता पसंद न होने से, रानी के विरोधी थे। सेठों में पहले कुछ मतभेद दिखाई दिया किंतु थोड़ी बातचीत के पश्चात् सभी ने देखा कि मीनलदेवी के रहते पाटन को क्षणभर के लिए भी सुख की नींद सोने को नहीं मिलेगा। इन सब कारणों से वे सब एक निर्णय पर पहुँचे और खेंगार तथा लीलाधर त्रिभुवन के पास गये।

'महाराज ! पधारें, हमने निर्णय कर लिया।' खेंगार ने कहा।

'क्या ?'

'आपके पक्षमें संपूर्ण पाटन है। जहाँ आप वहाँ हम, चलिये।'

त्रिभुवन ने निश्चितता की साँस ली। वह वहाँ से बाहर आया। प्रसन्न भी गहना कपड़ा जुटाना छोड़ पीछे-पीछे गई।

कुछ देर पश्चात् सभा विसर्जित हुई और लोग अपने-अपने घर गये। त्रिभुवन ने संपूर्ण सत्ता अपने हाथ में ली और मुरारपाल से रानी के पास संदेश भेजने के लिये उदा को भेजा। मुरारपाल ने त्रिभुवन का संदेश ले जाना स्वीकार कर लिया क्योंकि उसे अब पाटन साल रहा था।

त्रिभुवन ने दूसरा संदेश वल्लभ के पास भेजा कि पाटन अब अपने हाथ में है, अतः सेना तैयार रख वल्लभ वहीं रुके रहें।

३७

चाँपानेरी दरवाजा पर कोई उत्तर न मिलने से मीनलदेवी के क्रोध एवं किचकिचाहट की सीमा न रही। उसने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मुरारपाल इस प्रकार फँसा देगा। किस पर क्रोध उतारे यह समझ न पड़ने से उसका क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। संध्या के अंधकार में निकली हुई टुकड़ी अधिक रात गये थकी-माँदी वहाँ पहुँची जहाँ अन्य लोग डेरा डाले हुए पड़े थे। रानी अपने पटमंडप में चली गई। सद्‌भाग्य से सेनापति को छोड़ कोई न जान सका कि रानी पाटन जाने के लिए निकली थीं।

इस विपत्ति के समय किसकी सलाह ले? अभी तक आनंदसूरि नहीं आया था। रानी उसे क्रोध में कोसने लगी। अन्य कोई ऐसा न था जिसकी सहायता वह लेती। हाँ, एक मुंजाल था, पर नाक नीची कर रानी उससे पूछने जाय? मुंजाल बंदी हो प्रहरियों के साथ घूमा करता। कभी एक शब्द भी न बोलता। इस समय उसकी मंत्रणा बहुमूल्य होती किंतु अपना अभिमान त्याग उससे पूछने के लिए जाय? रानी ने ऐसे विचार मस्तिष्क से निकाल फेंके; इस समय उसे अपनी स्थिति का कुछ-कुछ ज्ञान हुआ। मुंजाल सदैव कहा करता था कि मेरी बुद्धि से तुम्हारी सत्ता टिकी है; उस समय रानी हँसती थी। सोचती कि जान बूझ कर मुंजाल ही उसकी सत्ता नहीं जमने देता। इस समय उस राजनीतिज्ञ की महत्ता का कुछ-कुछ उसे ज्ञान हुआ। सामने पाटन फाटक बंद कर बैठा था। पीछे मंडलेश्वर सेना के साथ सिर पर सवार होगा। केवल चंद्रावती की सेना का सहारा! विदेशी रानी के समान, दूसरे की सेना के सहारे वह यहाँ राज लेने के लिए पड़ी थी। ज्यों-ज्यों वह अधिक विचार करती गई त्यों त्यों उसकी उलझन

भी बढ़ती गई। अपनी निःसहाय अवस्था का चित्र उसके मनःचक्षु के सामने खड़ा हो गया।

'माजी! एक संदेशवाहक कुछ समाचार लेकर आया है। सेनाध्यक्ष ने उसे यहाँ भेजा है।' रानी ने सिर उठाकर ऊपर देखा। अपने पुराने चोबदार समर को देख उसकी आँखों में पानी आ गया। वह नमकहलाल चोबदार रानी के साथ ही साथ रहता था।

'भीतर बुला।'

'जी!' कहकर समर संदेशवाहक को भीतर बुला लाया।

'माजी! यहाँ से कुछ ही दूर पर वल्लभसेन की सेना आ पहुँची!'

'ऐं! तब मंडलेश्वर भी साथ में होंगे?'

'नहीं माताजी, मंडलेश्वर तो सरस्वती में डूब कर मर गये। यह भी खबर मिली है कि मंडुकेश्वर के महालय को यतिजी ने जला डाला।'

रानी ने चौंककर पूछा—तुमने कैसे जाना? क्या यह सच है?

'माजी! यह सुन कर ही तो मैं यहाँ आया हूँ।'

'अच्छा, और कुछ कहना है?'

'जी नहीं; विजयपालजी ने खोजने के लिए सैनिकों को भेजा है।'

'बहुत ठीक!'

उसके जाने के पश्चात् रानी गंभीर विचार में पड़ गई। मंडलेश्वर गये और वल्लभ सेना लेकर यहाँ आया। विश्वपाल ने अटल वल्लभ की सब बात रानी से बता दिया था। विचारमग्न सोये हुए पुत्र की ओर बार-बार देखती हुई रानी ने सारी रात रोकर बिता दी। प्रत्येक क्षण उसे अधिकाधिक भयंकर मालूम पड़ रहा था। प्रातःकाल समाचार मिला कि वल्लभ का सेना के साथ दो योजन पर पड़ाव डालने का विचार था और उसके साथ आनंदसूरि भी है, पर बंदी रूप में। जासूसों से यह भी पता चला कि मंडलेश्वर के मर जाने पर भी उसके

सैनिक दृढ़ हैं। चंद्रावती की सेना अधिक होने से ही वल्लभ ने इस प्रकार पड़ाव डाला है।

'माँ! कल वापस क्यों चली आईं? पाटन चलिये न!' जयदेव ने पूछा। 'चलूँगी, अभी कुछ देर है।' मीनलदेवी ने सांत्वना दी।

जयदेव कुमार को इन विदेशियों के बीच में अच्छा न लगता था। पर उसे लगा कि स्थिति गंभीर है। वह चुप हो गया।

दिन चढ़ जाने पर मीनलदेवी ने विश्वपाल एवं दूसरे विश्वसनीय सामंतों को, शांतुसेठ के पुत्र विनयचंद्र तथा चन्द्रावती के सेनापति विजयपाल को बुलवाया। सेना में मंडलेश्वर की मृत्यु से कुछ हर्ष छा गया था। रानी के गत दिवस के अनुभव से अनभिज्ञ होने से सबको विजय प्राप्त करना बायें हाथ का खेल मालूम पड़ रहा था। पाटन में लोग बिगड़ गये हैं यह समाचार भी मिला था किंतु वहाँ कोई योग्य व्यक्ति नहीं है, जिससे कुछ होना जाना नहीं है। लोगों का उत्साह क्षणभंगुर होता है—यह भी सबको निश्चय था; अतः लोग विजय की पूर्ण आशा के साथ आये!

आगे क्या करना चाहिये? सब लोग इसी पर विचार करने लगे। रात की घटना को विनय एवं विश्वपाल ये ही दो व्यक्ति जानते थे। ये दोनों रानी के साथ थे, दूसरों को यह बात मालूम न थी। रानी ने भी इसे नहीं छेड़ा।

विजयपाल अनुभवी योद्धा था। उसने सोचकर कहा—रानीजी! सब बात सच है, हमारे सैनिक विश्वसनीय हैं और उनकी संख्या भी अत्यधिक है किंतु इस समय तो हम दो पाटों के बीच में हैं। एक ओर पाटन और दूसरी ओर वल्लभ! अतः यथाशीघ्र दो में से एक भय से मुक्ति मिलना आवश्यक है। यदि आपका विचार हो कि पाटन आपकी ओर है तो उसे आप ठीक करें। खेंगार या किसी की सहायता से हमें पाटन का भय दूर करना चाहिये नहीं तो पाटन पर घेरा डालिये।

इस प्रकार बैठे रहने से सैनिकों का उत्साह भंग हो रहा है।

रानी विश्वपाल और विनय ने एक दूसरे की ओर देखा। पाटन के प्रति विश्वास क्षण-प्रति-क्षण घटता जा रहा था किंतु कहा किससे जाय? इतने में सूचना आई कि पाटन से एक सामंत संदेश लेकर आया है। सबने आतुर हो उसे बुला लाने की आज्ञा दी। सब चुपचाप द्वार की ओर एकटक देखने लगे। कुछ देर पश्चात् मुरारपाल लज्जावनत, अपनी कृतघ्नता से क्षुब्ध और पाटन में प्राप्त अनुभव से काँपता हुआ भीतर आकर खड़ा हो गया।

उसे देखते ही रानी हर्ष से चीख उठी। ऐसे संकट के समय अपने शूरवीर नमकहलाल सामंत को देख उसके आनंद का ठिकाना न रहा—मुरार! आओ, आओ! बोलो क्या समाचार है?

'माँजी! दुःखद समाचार लाया हूँ।'

'कोई बात नहीं, यहाँ बैठो।' रानी ने अपनी गद्दी के पास उसे बैठने के लिये संकेत किया और अपनी आँख से सचेत कर दिया कि कल संध्या की बात इस समय कहने की आवश्यकता नहीं है।

मुरार यह समझ गया। 'माँजी! मैं पाटन से संदेशा लाया हूँ।'

विनयचंद्र ने पूछा—पाटन से! पाटन से माँ जी के पास संदेश भेजनेवाला कौन है?

'और कौन? त्रिभुवन जो इस समय पाटन का मालिक बन बैठा है।'

सब चकित हो बोल उठे—ऐं-ऐं-ऐं!

'यह छोकड़ा भला क्या कर सकता है?'

'माँ जी! वह छोकड़ा नहीं है। आप, मुंजाल मेहता या अन्य कोई क्या शासन करेगा जैसा कि वह करता है। यह तो सचमुच एकछत्र शासन कर रहा है। आपके पास संदेशा भेजा है। कहूँ?'

यह कहकर मुरारपाल ने सेनापति विजयपाल की ओर देखा।

'हाँ, कहो; यहाँ सब अपने ही हैं।'

'कहलाया है कि मीनलदेवी के रहते जयदेव कुमार पाटन में पैर नहीं रख सकेंगे। दो में से एक—पाटन या मीनलदेवी।'

क्षणभर के लिए सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। रानी ने किसी प्रकार स्वस्थ हो पूछा—सबकी बुद्धि पथरा गई है क्या ?

'माँ ! सच कहूँ तो क्षमा कीजियेगा; गत तीन दिनों में कुछ ऐसे नये-नये अनुभव मुझे प्राप्त हुए हैं कि कह नहीं सकता। ऐसी घटना तो किसी जमाने में भी न घटी होगी।' उसने पाटन का सविस्तृत समाचार कह सुनाया।

सभी चकित हो गये। रानी अधिकाधिक निराश होती गई। स्वप्न में भी न सोची हुई विपत्तियाँ उसके समक्ष आ रही थीं। जब कभी कोई पाटन के गौरव की, पाटन-निवासियों के नगरप्रेम की बातें करता तो वह हँस देती। सत्ता के सामने पाटन की बुद्धिमत्ता को वह कुछ समझती ही न थी। इस समय पाटन की बुद्धि उसकी सत्ता की अपेक्षा अधिक शक्तिवान प्रमाणित हुई। बात ही बात में मुरारपाल ने प्रसन्न की भी कुछ चर्चा की जिसे सुन रानी चकित हो पूछ बैठी—कौन ? मेरी भतीजी ?

भीतर से लजाते हुए मुरार बोला—जी हाँ, माँ जी ! वह भी बड़ी वीरांगना बन गई है।

रानी का विस्मय और बढ़ा। सब समाचार सुन लेने के पश्चात् 'क्या करना चाहिये' इसपर सबने पुनः विचार करना प्रारंभ किया। मुरारपाल को तो सब कुछ असम्भव जान पड़ा। अंत में किसी निश्चय पर न पहुँच सबको यह विश्वास हो गया कि किसी प्रकार भी पाटन को समझा कर वश में करना चाहिये।

सबके चले जाने के पश्चात् मुरार को बुलवा कर रानी ने पूछा—कल तुमने फाटक क्यों नहीं खोला ?

मुरार ने पकड़ जानेका बहाना कर बात उड़ा दिया।

'मुरार! प्रसन्न और त्रिभुवन में बहुत बनती थी, अब कैसा है?'

क्या उत्तर दे, यह समझ न पड़ने से मुरार ने उत्तर दिया—मुझे पता नहीं, वैसा ही होगा।

'प्रसन्न द्वारा कुछ उपाय संभव है।'

मुरार ने निराशा से सिर हिला दिया। अधिक बातें बताना उसने उचित न समझा। नहीं तो रानी की सभी आशाओं पर उसी समय पानी फिर जाता।

'मुरार! तुम तो घबड़ा गये हो; अभी विनय को भेज पाटन से थोड़ी दूर पर प्रसन्न को मिलने के लिए बुलवाती हूँ।'

'आपकी इच्छा; पर मुझे इसमें कुछ सार दिखाई नहीं पड़ता।'

'देखा जायगा!' कहकर थोड़ी आशा हो जानेसे, कुछ प्रफुल्लित हो रानी उठी। वस्तुस्थिति भयंकर थी; डूबता हुआ मनुष्य तिनके का सहारा ले बचने की आशा करता है। उसी प्रकार रानी भी अपना काम आशा के बल पर कर रही थी।

अपराह्न के बाद विनयचंद्र पचीस सवार के साथ पाटन की ओर रवाना हुआ और मोंढेरी दरवाजा पर खेंगार मंडलेश्वर से मिल कर उनसे बतलाया कि मीनलदेवी प्रसन्नमुखी से कुछ बात करना चाहती हैं। बहुत देर बाद त्रिभुवनपाल ने आकर विनय का आमंत्रण स्वीकार किया। दूसरे दिन प्रातःकाल दोनों ओर के पचीस पचीस अस्त्र-शस्त्र हीन सैनिकों के साथ क्षेमराज देव की बावली में मिलने का निश्चय हुआ।

मीनलदेवी के मन में एक निश्चय दृढ़ होता गया कि पाटन के साथ कभी युद्ध नहीं करना; उसे समझा बुझा कर वशीभूत करने में ही लाभ है। कारण यह था कि संपूर्ण गुजरात में उसके पक्ष में यदि कोई नगर था तो केवल पाटन एवं कर्णावती। मोंढेरी कई आदमियों को

भेजा किंतु वहाँ से स्पष्ट उत्तर नहीं मिला। ऐसी स्थिति में पाटन पर घेरा डाल देने से देश में उसका कोई नाम न रह जायगा और यदि पराजय हुई तब चंद्रपुर जाने के सिवा कोई दूसरा चारा न रहेगा। दूसरा कारण यह भी था कि चंद्रावती के नेतागण पाटन के साथ विग्रह करने के लिए तैयार हैं या नहीं, इसका निश्चय रानी को नहीं था। अभी चंद्रावती का सेनापति विजयमल घेरा डालने के लिए तैयार है यह सच है; किंतु कल उसका अस्वीकार कर देना भी संभव था, फिर घेरा डालने से पाटन हार ही जायगा, यह कैसे कहा जा सकता है?

इस निश्चय पर स्थिर रहना कठिन था। पाटन में उपद्रव उठ खड़ा होगा, यह रानी ने कभी न सोचा था। तत्काल इस उपद्रव के कारण पाटन ने सामना करने का निश्चय इतना स्पष्ट कर दिया था कि रानी के लिए अब दो ही मार्ग थे; घेरा डालना या गौरव से हाथ धोना। किंतु रानी घेरा डाले बिना अपना गौरव रखना चाहती थी।

३८

दूसरे दिन प्रातःकाल पाटन और बिखराट के बीच में स्थित क्षेम-राजदेव की बावली के पास एक मंदिर में पाटन की पदभ्रष्ट रानी बैठी हुई हैं। उनके बुद्धिदर्शक कपाल पर चिंता की क्षीण रेखायें पड़ी हैं; उनकी छोटी आँखें पहले की अपेक्षा अधिक कोटर के भीतर धँस गई हैं। चारो ओर से विपत्तियों से घिरे रहने पर भी उनकी गर्दन अभि-मान से उठी हुई थी। उनके अधर कठोरतापूर्वक बंद थे। कर्णदेव की मृत्यु के क्षण से ही उसने अपने संकल्पों को दृढ़ कर लिया था। आज वे बदल न जाँय इसके लिए उसे अधिक निश्चलता धारण करनी पड़ी थी। क्रमशः उसका मान छिन्न होता जा रहा था; इस समय जिसे

वह तुच्छ समझती थी उस भतीजी की प्रतीक्षा में इस प्रकार बैठना उसे बहुत खल रहा था। चाहे जैसे भी हो उसे जीतना था।

'दो में से एक; मीनलदेवी या पाटन!' मुरारपाल के शब्द उसके कान में भयंकर नाद कर रहे थे। इतने वर्षों बाद क्या मीनलदेवी पाटन से वापस चली जाय?

इतने में समर चोबदार ने आकर रानी की विचार शृंखला भंग कर दी। सभी अवसरों एवं स्थलों पर राजभक्त समर रानी का वैसा ही सम्मान करता जैसा कि राजमहल में। 'माँ जी, ऐसा जान पड़ता है कि सामने से कुछ मनुष्य आ रहे हैं।'

'अच्छा! प्रसन्न के पहुँचते ही उसे भीतर भेजना।'

'जो आज्ञा।' कहकर समर चला गया।

कुछ देर बाद घुड़सवारों के आने की आवाज सुनाई दी; पायल की झंकार आई और समर प्रसन्न को लेकर भीतर आया। मीनलदेवी ने प्रयत्न कर अपने चेहरे पर से चिंता के चिह्न दूर कर सत्तादर्शक गौरव धारण किया। वह रोब से प्रसन्न की ओर घूमी पर उसे देखते ही वह फीकी पड़ गई। केवल पाँच दिन पहले जो उसके शब्दों पर काँप उठती, जो उसके इशारे पर नाचती रहती, उसने वही निर्दोष बाला देखने की आशा की थी। पर अब वह बात कहाँ! आज प्रसन्न की आँखों में, उसके चेहरे पर, उसके पद-पद पर गर्व और सत्ता झलक रही थी। रानी के हृदय ने तो उसे देखते ही हार मान ली। प्रसन्न ने आकर पैर छूकर पूछा—बूआजी! कैसी हैं? आपकी तबीयत ठीक नहीं मालूम पड़ती।

'नहीं, यात्रा से कुछ थकावट आ गई है।'

इस प्रकार बोलने वाले को पहले मीनलदेवी बंदी कराये बिना न छोड़ती। आज स्वयं उसे ही नम्र शब्दों द्वारा उसे रिझाना था।

'तुम कैसी हो? बैठो न!'

रानी ने समर की ओर देखा जिससे वह बाहर चला गया।

'सब ठीक है, कहिये इस समय क्यों बुलाया है?'

प्रसन्न बाहर से साहसी दिखाई पड़ रही थी पर मीनलदेवी के साथ बात करते समय भीतर से घबड़ा रही थी। कब उसकी बूआ उसे दबा बैठे, इसका भरोसा न था। इसीलिए उसने तुरंत आवश्यक बात-चीत प्रारंभ कर दी।

'बेटी, इस समय मैंने तुम्हें अपनी जानकर बुलाया है। पाटन में यह नया उपद्रव क्या खड़ा कर रखा है? पाटन-निवासी तो मेरे पुत्र के समान हैं। वे ऐसे पागल क्यों हो रहे हैं? मुझे खिझाने से कोई लाभ होगा?' महारानी के स्वर में प्रेम प्रदर्शन था।

'बूआजी! यह मुझसे क्यों कह रही हैं? मुझसे कहने से क्या होना जाना है?'

धीरे-धीरे एक-एक शब्द बोलते हुए रानी ने कहा—प्रसन्न! मैं जानना चाहती हूँ कि वहाँ क्या हो रहा है? वहाँ लोग इतने उग्र क्यों हो गये हैं? मेरी प्रजा का रक्तपात होने के पूर्व मुझे मालूम तो हो कि वे चाहते क्या हैं?

प्रसन्न ने कुछ उत्तर नहीं दिया। अतः रानी नीचे देख पुनः कहने लगीं—कोई कहता नहीं, सुनता नहीं और इस प्रकार का पागल-पन हो रहा है। इतना ही अच्छा है कि अभी किसी को मालूम नहीं हुआ है; नहीं तो संसार में पाटन की कितनी हँसी हो!

प्रयत्न कर धीरे से प्रसन्न ने मीनलदेवी के शब्दों का प्रभाव दूर करना चाहा किंतु रानी की तेजस्वी आँखें, उसके मीठे गौरवशील शब्द, प्रसन्न की बुद्धि को चारों ओर से जकड़ रहे थे। मीनलदेवी की अप्रतिम सत्ता को उसने पहचाना, और यह सत्ता उसपर प्रभाव न डालने पाये, इसलिए उग्रता से उसने उत्तर दिया—बूआजी! मुझसे यह सब क्यों कह रही हैं? यह उपद्रव आप ही ने तो खड़ा किया है।

'क्या ? कोई बतायेगा भी ! तुम्हारे देश की शांति के लिए अपना शोक दूर रख मैं बाहर गई। आज मैं यदि न गई होती तो मुंजाल और मंडलेश्वर आपस में लड़ मरते, यह भी किसी को पता है ? मैं यदि न गई होती तो आज मंडलेश्वर की सेना यहाँ पड़ी होती, इसे भी कोई सोचता है ?

'बूआजी ! यह कोई नहीं मानता। सब तो कहते हैं कि परदेशियों को आपने बुलाया और मंडलेश्वर महाराज को मरवा डाला।'

रानी ने 'महाराज' शब्द का नया प्रयोग देखा और कुछ खीझ कर कहा—चंद्रावती तुम्हारे लिए परदेशी है क्यों ? और देवप्रसाद को मरवा डालने से मुझे लाभ ? मैंने तो सुना है कि रुद्रमहालय में आग लग गई जिसमें वह जल मरा।

प्रसन्न ने देखा कि इस प्रकार की बातचीत से कोई लाभ नहीं होगा अतः वह बोली—बूआजी ! आपसे बातचीत करने में मैं पार नहीं पा सकती। यह बताइये न कि आपने मुझे क्यों बुलाया है ?

'बेटी ! मैंने तुम्हें इतने ही के लिए बुलाया है कि मुझसे अपने देश में यह विरोध देखा नहीं जाता। मेरे और पाटन निवासियों के बीच में न जाने किस कारण से विरोध पड़ गया है ? तुम बीच में पड़कर इस विरोध को मिटा दो।'

'मैं भला कैसे मिटा सकती हूँ ? क्या मेरे हाथ की बात है ?'

'सुना है कि सब सत्ता त्रिभुवन पाल हथियाकर बैठा है—'

'नहीं, पाटन निवासियों ने सौंपी है।'

'ऐसा ही सही; पर त्रिभुवन तो तुम्हारे हाथ में है।'

प्रसन्न मुस्कुराई, अब उत्तर उसे सूझ पड़ा।

'कैसे समझ लिया कि वह मेरा कहना मान लेंगे ? उनकी माँ को जीवन भर आपने बंदीगृह में बंद रखा, अपने पति से विलग कर रखा। उन्हें अपनी माँ का सुख भी भोगने नहीं दिया

और अंत में उनके माँ-बाप को आपने जलवा डाला। अब वह कैसे मानेंगे ?'

'बेटी ! एक बात संपूर्ण संसार मानता है।'

'क्या ?'

रानी ने धीरे से कहा—अपनी प्रियतमा की याचना !

प्रसन्न चौंकी। अब सब कुछ उसकी समझ में आ गया। वह बोली—बूआजी ! सच्ची प्रियतमा पति की प्रतिज्ञा का विरोध कभी न करेगी।

'प्रतिज्ञा का विरोध कहाँ करना है ? त्रिभुवन को क्या चाहिये ? मैं खुशी मन से उसके साथ तेरा विवाह कर दूँगी, और कुछ ?'

प्रसन्न खिलखिला पड़ी। 'बूआजी ! तीन दिन में तीन लोक बदल गये। इसे भी सोचा है ?'

'क्या ?'

'अब पहले की प्रसन्न नहीं है। जिस दिन मुझे अनजान में मादक वस्तु खिलाकर अपने साथ ले गईं, उसी दिन से मैं बदल गई, समझीं ! आप स्वीकार करें या न करें मैं तो त्रिभुवन के साथ विवाह करूँगी ही। यों कहिये कि कर चुकी।'

ये शब्द कह कर प्रसन्न मुस्कुराई। उसके गाल लाल हो गए।

मीनलदेवी की भृकुटी चढ़ गई, पर दूसरे ही क्षण वह कृत्रिमता से हँसकर बोली—प्रसन्न ! तब तो मेरा काम तुम्हें सबसे पहले करना चाहिये। जो कुछ कहो मैं त्रिभुवन को वही दूँगी। और क्या चाहती हो ?

'बूआजी ! ऐसी स्थिति में मुझे कुछ बोलना न चाहिये किंतु आप उत्तेजित कर रही हैं तो बोलना ही पड़ता है। इस समय आपके पास त्रिभुवन को देने के लिए है ही क्या ? त्रिभुवन ही आपको कुछ दे सकते हैं।'

रानी ने किसी प्रकार अपना क्रोध दबाया।

'ऐसा ! फिर क्या ? तब तुम्हीं कुछ करो जिससे तुम्हारा नाम भी भारतखंड में अमर हो जाय।'

प्रसन्न ने सिर हिलाया 'मुझे नाम नहीं चाहिए। किंतु आपका मनोरथ सिद्ध नहीं होगा।'

मनकी निराशा को छिपाने का निष्फल प्रयत्न करते हुए बोली—क्यों ?

'त्रिभुवन ने प्रतिज्ञा की है।'

'क्या ?'

'पाटन में या तो आप नहीं या वे नहीं।'

रानी काँप उठी. उसने पूछा—और तुम !

'जहाँ मेरा स्वामी वहाँ मैं।'

मीनलदेवी ने कठोर परिश्रम से स्वस्थता धारण कर सत्ता दर्शक एवं क्रुद्ध स्वर में पूछा--छोकड़ी ! इस प्रतिज्ञा का अर्थ क्या है, समझती है ?

'जी हाँ. प्रतिज्ञा लेने वाले ने ही मुझे समझाया है।'

'बड़े मंडलेश्वर का तो पता नहीं लगा और तू समझती है कि तेरे त्रिभुवन का लगेगा ?'

'बाप से बेटा सवाया ! ऐसा क्या नहीं सुना है ?'

'छोकड़ी ! छोकड़ी ! तू भी पछतायेगी। तू समझती होगी कि मीनलदेवी का हाथ दबा हुआ है किंतु यह तेरी भूल है। वह विम्बराट में पड़ी हुई सेना तूने देखी ? लाट से थोड़े दिन में और सेना आने वाली है। पंद्रह दिनों में पाटन के कोट के एक ईंट का भी पता नहीं लगेगा।'

प्रसन्न भयभीत हो उठी तथापि बाहर से साहस दिखाते हुए बोली—बूआजी ! यवनों के दल तो आकाश के तारे जितने थे फिर भी पाटन का कोट खड़ा है।

'अच्छी बात है। देखो, अभी भी विचार करने का समय है। कल सबेरे तक निर्णय कर कहला भेजना।'

'बूआजी! उत्तर तो मैंने कहा है वही आयेगा।'

मीनल ने क्रोध से कहा—तब अपने किये का फल भोगना।

'ठीक, तब मैं जाती हूँ। जयदेव-कुमार को बुलाइयेगा?'

'वह तो तुम्हें कभी से याद कर रहा है।'

एक विचार मनमें एकाएक आ जाने से नम्रता से प्रसन्न पुनः बोली—बूआजी! मेरी बात मानियेगा?

'क्या?'

'जयदेवकुमार को मेरे साथ बिदा कर दीजिये और आप रेवा-तटपर जाकर निवास करें। कल ही प्रातःकाल जयदेव का पट्टाभिषेक करा दूँ।'

सगर्व मीनल ने उत्तर दिया—मूर्ख! समझ-बूझकर बोलना सीख! मीनलदेवी रहेगी तो पाटन की राजमाता; नहीं तो चाहे मेरा पतन हो या पाटन का। मुझे इसकी तनिक भी परवाह नहीं है।

'जैसी आपकी इच्छा।' कहकर प्रसन्न गर्व से चली गई।

बहुत देर तक रानी जिस दरवाजे से प्रसन्न गई उस ओर देखती रही और बड़बड़ाई—'भगवान्! यह क्या होने वाला है? चार-चार बित्ते के लड़के ऐसे कहाँ से हो गये? आज मेरी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखते!'

उसकी आँखों के नीचे अँधेरा छा रहा था। उसने अपनी हथेली आँखों पर रख ली। उसमें सोचने का साहस ही नहीं था कि भविष्य में क्या होगा। किससे कहे? किससे सलाह ले? क्या मुँह लेकर विख-राट वापस जाय?

बड़े परिश्रम से साहस बटोर कर वह उठी। समर को बुलाकर वापस चलने का आदेश दिया।

———

३६

जब रानी विश्वराट पहुँची उस समय उसका दुःख असीम था। प्रसन्न के सामने भी उसकी कुछ न चली। अब? और कौन अपमान और अधमता का स्वाद चखना बाकी है? उसने शांति रख विजयपाल आदि को उनके प्रश्न का संक्षेप में उत्तर दे उन्हें टालते हुए कहा—मैंने प्रसन्न को समझाया है दो-एक दिन में कुछ उत्तर आयेगा।

दिन बीतते-बीतते उत्तर आया किंतु वह संतोषप्रद न था। रानी एकांत में जाकर सिरपर हाथ दे रोने लगी। उसका हृदय भर आया।

इतने में जयदेव कुमार ने आकर उससे पूछा—माँ! वहाँ जाकर क्या कर आईं? पाटन कब चलना होगा?

मीनलदेवी की आँखें पुनः डबडबा आईं। स्नेह से पुत्रको छाती से लगाते हुए निराधार रानी बोली—चलेंगे, चलेंगे। इतने व्यग्र मन बनो, अभी कुछ देर है। जाकर निश्चिंत हो सो जाओ। सवेरे घुड़-सवारी कर आये! थक गये होगे। जाओ!

'अच्छा!' कहकर जयदेव चला गया।

रानी पुनः विचार में लीन, विमनस्क हो जहाँ की तहाँ बैठी रह गई। चारों ओर से विपत्तियाँ उमड़ी पड़ रही थीं; उसे दबा देना चाहती थी। अब तक उसने साहस न छोड़ा था, किंतु अब उसे लाये कहाँ से? पाटन का नाम जिस दिन सुना था उस दिन से आज तक की सब घटनायें उसकी आँखों के सामने नाच उठीं। ऐसी स्थिति क्यों उत्पन्न हुई? प्रश्न हृदय-भेदक था।

स्वाभिमान एवं बड़प्पन को दूर कर रानी विचार करने लगी—क्यों? कौन से पाप उदय हुये हैं? सत्ता के लिए, महत्त्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए चंद्रपुर छोड़ इतनी दूर पाटन के नरपति के साथ विवाह करने आई। उसे इतिहास में कीर्ति प्राप्त करना था, अपना नाम

मनुष्य-हृदय के अमर शिलालेखों में मुद्रित कराना था, उसे नाम की रानी नहीं बल्कि सचमुच विजयवती रानी बनने की आशा थी। इस तृष्णा के लिए उसने बहुत कष्ट सहन किया किंतु उससे कोई लाभ न निकला। मुंजाल जैसे बुद्धिमान राजनीतिज्ञ मंत्री सदैव सेवा में उपस्थित रहते हुए भी यह स्थिति कैसे उत्पन्न हो गई? क्या इसका कारण स्वयं मेरा अविश्वास है? क्या जैनमत को प्रधानता दी इससे, या इसलिए कि राज्य में भिन्न-भिन्न पक्ष थे? शायद देवप्रसाद की शत्रुता के कारण ऐसा हुआ हो। इतनी दूर रहते हुए भी उस महा-रथी का लोग इतना सम्मान क्यों करते थे? आज उसके पुत्र को ईश्वर मान उसकी आज्ञा पालन करने के लिए क्यों तैयार रहते हैं? देवप्रसाद में जो शक्ति थी वह क्या मुझमें है? कारण? रानी गंभीर विचार में लीन हो गई। मुंजाल के इतना घमंडी होने पर भी लोग क्यों उससे इतना स्नेह करते हैं? विचार करते-करते रानी विक्षिप्त हो गई और संध्या समय जब मुरारपाल आया तब उसका चित्त कुछ ठिकाने हुआ।

'क्यों माँ जी! क्या हुआ? कुछ सफलता मिली?'

रानी ने सिर हिला दिया।

'मैंने क्या कहा था? आपकी भतीजी····! ओफ, बड़ी जबरी है!'

'ठीक है! मुरारपाल! बेटा, मुझे कुछ सलाह दो। मैं चक्कर में पड़ गयी हूँ, मुझे कुछ भी समझ में नहीं आता।'

'मैं क्या कहूँ माँ जी! पाटन का उत्पात देख मैं तो स्तब्ध हो गया। अब मुझे मालूम हुआ कि गुजरात में पाटन क्यों सब नगरों पर नेतृत्व करता है।'

'क्यों करता है?'

'क्योंकि प्रत्येक पाटन निवासी के मन में बड़े योद्धा का साहस,

गौरव एवं स्वातंत्र्य भरा हुआ है। मैंने अनेक नगर देखे किंतु यह तो अनुपम है।'

'मुगार ! तुम भी जले पर नमक छिड़क रहे हो; क्यों ? पाटन जब मेरा था तब तो किसीने कुछ नहीं कहा और आज सभी बुद्धिमान बन गये हैं।'

'नहीं माँ जी ! मेरा तात्पर्य यह नहीं था। मैं तो केवल यह बताना चाहता था कि क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं।'

'किस प्रकार ? स्पष्ट कहो, मेरा चित्त ठिकाने नहीं है।'

'पाटन निवासियों को समझाना हो तो किसी व्यक्ति को भेजना चाहिए जिसपर उनकी निष्ठा हो।'

रानी ने चिढ़कर कहा—पर ऐसा लावें कहाँ से ? जो हो सो तुम ही तुम तो हो।

'दो दिन पूर्व मैं किसी लायक था, आज तो मैं बेकाम हूँ। विश्वपाल किसी गिनती में नहीं है। शांतुमेंट को कोई पूछता भी नहीं, तब विनय की कौन मानेगा ?'

'यह सब तो मैं जानती हूँ, यदि कोई नई बात न कहनी हो तो बस करो।'

'मैं और क्या कहूँ ? यदि आप आज्ञा दें तो मैं पाटन पर घेरा····।'

'नहीं नहीं, इससे तो बात बढ़ जायगी। यदि हार गई तो कहीं की न रहूँगी।'

मुगार सिर हिलाते हुए बोला—इन सब पर मैंने विचार किया है। माँ जी ! मुझे एक दूसरा डर भी लग रहा है।

'क्या ?'

'इस चंद्रावती की सेना का कोई विश्वास नहीं। कुछ लोगों में घबड़ाहट-सी मालूम पड़ रही है और इस प्रकार यदि हम दस पंद्रह दिन बैठे रहेंगे तो सबके सब भाग खड़े होंगे। इस प्रकार पड़े रहने से

उनका उत्साह बिलकुल भंग हो गया है। यति होता तो बड़ा काम निकलता।'

रानी की घबड़ाहट और बढ़ी। यह बाजी भी हाथ से निकली जा रही थी।

रानी का चेहरा उतरा हुआ देख मुरार बोला—माँ जी! घबड़ाओ मत, विजयपाल दक्ष है जिससे अभी भी समय है किंतु मंडलेश्वर के मर जाने से जैन तो समझ रहे हैं कि तीनों लोक जीत लिया। किंतु—

'किंतु क्या?'

'किंतु उसका पुत्र उससे भी चढ़-बढ़कर है। मंडलेश्वर तो केवल योद्धा थे पर यह अपने मामा से भी अधिक श्रेष्ठ है।'

मुंजाल का नाम सुनते ही रानी का जैसे संपूर्ण शरीर झन-झना उठा। उसके मस्तक पर त्रिबली पड़ गई।

मुरार कहता गया—माँ जी! दुःख मालूम पड़े तो क्षमा कीजियेगा किंतु मेरी सलाह पूछ रही हैं तो मेरी राय में भानजा को समझाने के लिए मामा को क्यों नहीं भेजतीं?'

गौरव से सिर ऊँचा कर रानी ने कहा—मुरार! छोड़ो इस बात को। जीवित रहूँगी तो रानी होकर। नहीं तो मर भले ही जाऊँ पर इन द्रोहियों का मुँह भी नहीं देखूँगी।

'जैसी माँ जी की इच्छा!' मुरार चुप हो गया।

कुछ देर तक रानी चुपचाप बैठी रही, वह पुनः निराशा में डूब गई। मुरार ने एक नई बात कही थी, एक नवीन चिंता उत्पन्न कर दी थी। क्या यह सेना तितर-बितर हो जायगी? फिर क्या होगा? मनमें एक विचार आ जाने से रानी ने पूछा—मुरार! तब सच पूछो तो अपने साथ कोई मंडलेश्वर या कोई राज्य है ही नहीं।

'चंद्रावती छोड़—'

'हाँ, हाँ ! मुरार, तुम पर विश्वास करूँ ! तुम तो धोखा नहीं दोगे ?'

'माँजी ! जो कहना हो निश्चिंत होकर कहें ।'

'मालवराज यहाँ से कितनी दूर है ?'

'घोड़े पर जाने से चार दिन लगेगा ।'

'ठीक है, आवश्यक होने पर वह भी काम आवेगा ।'

मुरार कितने पानी में है यह जानने के लिए रानी ने कहा किंतु इस कथन का अर्थ समझते ही मुरार की भृकुटी चढ़ गई, वह तन कर खड़ा हो गया और बोला—माँ जी ! मैं आपकी सेवा करते हुए जीवन अर्पण कर देने के लिए तैयार हूँ किंतु मैं गुर्जर हूँ । मालवा के साथ अघटित संबंध की बात चलेगी तो मैं साथ न दे सकूँगा ।

रानी ने खीझ कर दाँत पीसा; प्रत्येक सामंत देशाभिमानी एवं अपनी बात का पक्का दीख पड़ा । अतः बात उड़ाते हुए वह बोली—नहीं, नहीं; यह मैं कहाँ कह रही हूँ ? अच्छा जाओ, अब कल देखा जायगा ।

मुरार चला गया । रानी को रात भर नींद न आई । सभी योजनायें बेकार-सी जान पड़ीं । चंद्रावती की सेना तितर-बितर हो गई और त्रिभुवन ने पाटन बंद रखा तो क्या होगा ? मुरार की बातों से यह भी पता चला था कि मालवा से सेना की सहायता माँगी गई तो एक भी गुजराती उसकी सहायता में खड़ा नहीं रहेगा । हाथ से राज का निकल जाना ही असह्य है; पर इस तरह तो नीचा भी देखना पड़ेगा और राज भी जायगा । रानी को बिछौने पर करवटें बदलते हुए स्वयं अपने ऊपर तिरस्कार हो आया । राज्य था, मंत्री थे, थोड़ी बहुत सत्ता भी थी; उसे छोड़ अधिक सत्ता के पीछे वह क्यों गई ? लोगों में विश्वास न रख अविश्वास क्यों किया ? मंडलेश्वर को प्रसन्न रखने के बदले उसे क्यों छेड़ा ? क्या इस समय मंडलेश्वर मर कर भी प्रतिशोध ले रहा है ?

रानी के विक्षिप्त मनके सामने एक मूर्ति खड़ी हो गई। रूप, बुद्धि एवं इच्छाशक्ति में ईश्वर समान लगती हुई मूर्ति गत पंद्रह वर्षों के दुःख की ओट में खड़ी हो उसकी भर्त्सना कर रही थी। उसके बड़े-बड़े नेत्रों का अकल्प्य तेज उसे मूर्खता करने से रोकते थे; उसका अनुपम वाक्-चातुर्य, प्रेम, शिक्षा, भर्त्सना एवं क्रोध के वचन उसे नाच नचाते थे। उस मूर्ति को देख रानी उसमें तल्लीन हो गई। उसके हास्य, उसके शब्दों को वह पुनः अनुभव करने लगी। उस समय के दुःखों को भुलाकर, मीनल को ऐसा जान पड़ा कि वह रानी से स्त्री हो गई। उसके हृदय पर उस मूर्ति का अधिकार निश्चल लगा।

वह मनमें बड़बड़ाने लगी—'यह मूर्खता है; यह मूर्ति एक तुच्छ मंत्री की है। वह मंत्री द्रोही है, उसे उसने बंदी बनाया है।' पर हृदय ने इन शब्दों को नहीं सुना। वर्षों पूर्व हुए नाटक का पर्दा उठाकर, हृदय उस मूर्ति को प्रभु मानने लगा। सोलह वर्ष के समय को भुला कर मन चंद्रपुर का निर्दोष आनंद अनुभव करने लगा; पिता के दरबार में भोगे हुए सुखों का पुनः अनुभव करने लगा; वह स्वच्छंद, आकांक्षी मन कुमार अवस्था में था; किसी स्वामी के लिए तरस रहा था; उसने दरबार में दूर देश से व्यापार के लिए आये हुए एक नर-रत्न को देखा। नवीन, मोहक अंतर्वेग के अधीन हो उसके चरण में प्रणिपात किया। उस क्षण के आह्लाद, तत्पश्चात् के अनुभूत प्रसंगों के अवर्णनीय सुख सरस हो गये। मन उस नर-रत्न के चले जाने पर रो पड़ा; उससे मिलने के लिए उसने मेघ-धनुष के रंग में रंगी हुई, दूरस्थ भूमि की ओर प्रयाण करना आरंभ किया; उस भूमि के नरपति को वरण कर उस नर-रत्न के समीप रहना स्वीकार किया। मनने पूर्व आह्लादों को नूतन बनाते हुए एक चिरस्मरणीय सुख के अनुभवों का पुनः अनुभव कराया; उसके हृदय के आस-पास कुछ वेष्टन सा मालूम पड़ा; उसका सुख—

रानी चौंक कर उठ बैठी; उसका शरीर काँप रहा था; छाती उछल रही थी; आँखें भयभीत बन गई थीं. उसके मुखपर नवोढ़ा की तरह प्राण-हर तेज चमक रहा था।

उसने हाथ बढ़ाया। 'मुंजाल! मुंजाल!' हृदय के गंभीर तल से ध्वनि आई। मीनल खड़ी हो गई। निद्रा टूटी और उसे वास्तविकता का ज्ञान हुआ। मुंजाल बंदी है, स्वयं निराधार अवस्थामें है, यह स्मरण आया। वह अपने मनका धिक्कारने लगी, अपना सतीत्व स्मरण आया। 'कर्णदेव! प्रभु! स्वामी!' उसने मनमें संबोधन किया; पास ही दूसरे पलंग पर लेटे हुए जयदेव का उसने मुख देखा; उसकी प्रत्येक रेखा को ध्यान से देखा; उस मुख में, उन रेखाओं में कुछ अपरिचितता, कुछ कुरूपता दीख पड़ी। तुरंत उसके सामने त्रिभुवन का मुख आ गया; उसके मुख की रेखायें उसने देखा। उन्हें देखकर हृदय क्यों आर्द्र होता है? उन रेखाओं में दूसरे किस नर रत्न की मुख रेखा दीख पड़ रही है? उसी की जो उसके मनमें—'नहीं, नहीं, प्रभु! क्या करना चाहते हो?' विचारों के निष्फल प्रयत्नों को दूर करते हुए वह बोल उठी। वह पुनः बैठ गई; सिर फटा जा रहा था। ऐसा लग रहा था मानो पागल हो जायगी। किस लिए मन 'मुंजाल, मुंजाल' रट रहा है, नेत्र उसका मुख देख रहे हैं, कान उसके शब्द सुन रहे हैं। मुंजाल के बालपन की सखी एवं गुजरात की रानी क्या दोनों एक हैं? 'नहीं, नहीं' रानी ने चिल्ला कर कहा। पर हृदय में 'हाँ' की ही प्रतिध्वनि होती रही।

सूर्य रश्मि ने कल संध्या समय जिस मीनलदेवी को अंधकार के हाथों में सौंपा था, वह प्रातःकाल होने पर पुनः उसे वापस नहीं मिली। रानी मिटकर स्त्री और अभिमानी, आकांक्षी योगमाया के बदले हृदय के भाव से नम्र बनी हुई मीनल दीख पड़ी। उसके मुख पर से सत्ता और चिंता की कठोर रेखायें विलीन हो स्नेह एवं दुःख की

मृदुता आ गई थी। स्वरूपवान न होते हुए भी उसपर छाया हुआ बुद्धि का तेज मोहक हो गया था। तैंतीस वर्ष के वय में भी बीसवें वर्ष की सी घबड़ाहट आ गई थी। उसकी दृढ़ता नष्ट हो गई थी; आँसुओं ने अपना अधिकार जमा लिया था।

प्रातः जब समर आया तो रात्रि के रुदन के चिह्न उसके मुखपर स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे। वृद्ध नौकर कुछ देर तक खड़ा रहा। पश्चात् सिर हिलाकर बोला—माँ जी! चिंता न कीजिये, सोमनाथ सब भला करेंगे।

'समर! जो प्रभु करे वही ठीक।'

'माँजी मैं गरीब बुद्धिहीन आदमी हूँ; मेरी सलाह मानियेगा?'

'क्या? जो कहना हो अवश्य कह; तेरे जैसा नमक हलाल व्यक्ति आज कल है कहाँ?'

'माँजी तब इस समय मुंजाल मेहता से क्यों नहीं पूछतीं? वे कोई रास्ता बतावेंगे।'

मीनलदेवी को ऐसा लगा जैसे किसी ने चाबुक लगा दी हो। सभी 'मुंजाल, मुंजाल' कर रहे हैं। यह क्या? उसका हृदय धड़क उठा।

'समर! मैं भी यही सोच रही हूँ, पर वह मदद नहीं करेगा।'

'मुंजाल और चाहे जैसे हों पर ऐसे नहीं हैं।'

इतने में जयदेव आ गया जिससे बात अधूरी ही रह गई।

'माँ, आप रो क्यों रही हैं?'

मीनल को इस लड़के पर कुछ विरक्ति हो आई; अनजान में उसके मुखपर उसकी दृष्टि गई; वह काँप उठी। प्रयत्न कर पुत्र को अपने पास खींच लिया और कहा—कुछ नहीं बेटा! तू बड़ा राजा हो जायगा तब क्या मुझे याद करेगा?

अनजान में इतिहास को आदेश दे रहा हो इस प्रकार बालभूप बोला—माँ! माँ! जयसिंह महाराज की जहाँ दोहाई फिरेगी वहाँ मीनलदेवी की पूजा होगी; घबड़ा क्यों रही हैं?

'तेरे मुँह में घी-शक्कर बेटा ! अब घूमने जाओ। समर, महाराज के साथ किसी को भेजो।'

'यहाँ घूमते-घूमते तो थक गया, मैं पाटन जाऊँगा।' मुँह बिगाड़ कर जयदेव ने कहा और समर को ले वह बाहर चला गया।

रानी के मन में अभी थोड़ा अभिमान बाकी रह गया था। 'मुंजाल के पास जाकर सहायता माँगें ? स्वमान भूल उनके पैर पड़ें ?' इसी उधेड़-बुन में संध्या हो गई। इसी समय विजयपाल आया। कुछ इधर-उधर की बातों के पश्चात् वह मुख्य विषय पर आया और बोला—माजी ! कितने ही सामंतगण रात रात में अपने-अपने सैनिकों के साथ भाग गये और उनमें से अधिकांश वल्लभ से जा मिले; अब कुछ करना चाहिये। आप आज्ञा दें तो पाटन पर घेरा डाल दें अन्यथा वल्लभ से ही मोर्चा लिया जाय। इस प्रकार बैठे रहने से सब लोग चले जायँगे।

अपना गौरव बनाये रखने का अंतिम प्रयत्न करते हुए रानी बोली—आपसे मैं कल कहूँगी, कल संध्या के पूर्व मेरा निश्चय हो जायगा।

'जैसी आज्ञा।' कह कर विजयपाल चला गया।

रानी ने देखा कि निर्णय करने में विलंब करना अब ठीक नहीं; अतः यथाशक्ति शांति के उपाय सोचने लगी। उसका जोश ढीला पड़ गया था जिससे वह अधिक बुद्धिमत्ता के साथ विचार कर सकी। पाटन का घेरा डालने से अथवा मालवराज के साथ मिल जाने से शायद विजय मिल जाय पर पराजय होनेपर जयदेव को गद्दी से भी हाथ धोना पड़ेगा। तब दूसरा मार्ग क्या है ? प्रसन्न का कथन स्मरण आ गया। 'रेवातट पर जाकर निवास करें।' तब क्या मेरे ही लिए यह सब उत्पात है ? रेवातट पर जाऊँ या चंद्रपुर चली जाऊँ ? नहीं, नहीं ! यदि मेरे हट जाने से जयदेव सुखी होता हो तो मृत्यु भी सुखद है ?

कर्णदेव के पीछे सती हो जाऊँ ? 'बहुत ठीक' ! यह उपाय उसे पसंद आया। मेरी लाज, मेरे कुल की गद्दी अग्निदेव रखेंगे।

'क्या जीवित नहीं रहा जा सकता ? किसके लिए मरूँ ? जिसकी कर्तव्यपरायण पत्नी रहते हुए भी जो हृदय में नहीं बस सका, उसके लिए ?' तुरंत मुंजाल याद आ गया; मुरारपाल, समर एवं अपने हृदय की राय स्मरण आई। 'मरने के पूर्व यह अंतिम उपाय क्यों न कर लूँ ?' मीनलदेवी में स्वार्थ था, उसकी आकांक्षायें बड़ी थीं, उसकी जीने एवं राज करने की प्रबल इच्छा थी। यह सब पूर्ण हो, ऐसा उपाय हाथ से क्यों जाने देना ? इसपर गतरात्रि उसका हृदय मुंजाल के दर्शन के लिए तड़प रहा था। उससे मिलने के लिए पागल हो रहा था।

सहसा मीनलदेवी खड़ी हो गई और चिल्ला उठी—समर !

समर ने आकर रानी में एकाएक परिवर्तन देख चकित हो गया।

'समर ! मुंजाल मेहता को मेरे पास भेज दो।'

समर प्रफुल्लित हुआ और 'जैसी आज्ञा' कहकर चला गया।

४०

मीनलदेवी छाती पर हाथ रख अपने उछलते हुए हृदय को शांत करती हुई खड़ी थी। काल, वस्तुस्थिति प्रसंग सब कुछ वह भूल गई। केवल इतना ही ज्ञान रहा कि उसका मुंजाल आ रहा है। पंद्रह वर्ष पूर्व चंद्रपुर में जो मीनल थी, अधिकांश रूप में वही बन गई। वर्ष पर वर्ष व्यतीत हो गये थे, दुःख झेला किंतु हृदय में कुछ भी परिवर्तन न हुआ था।

बहुत देर तक वह इसी प्रकार खड़ी रही। क्या नहीं आयेगा? आयेगा तो क्या कहेगा? किस प्रकार बात प्रारंभ होगी? किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। उसने मुंजाल के पैरों की आवाज पहचानने का प्रयत्न किया पर असफल रही। आवाज दूर चली गई जिससे उसका हृदय अधिक खिन्न हो गया। फिर दूसरी बार आहट आई, उसका हृदय एकाएक कह उठा 'मुंजाल आ गया।'

इतने में समर ने कहा—माँ जी! बाहर मुंजाल मेहता खड़े हैं।

'भीतर भेज दो, बिना मेरी आज्ञा किसी को भीतर न आने देना।'

'जैसी आज्ञा।' कहकर समर चला गया और मुंजाल को भीतर ले आया। समर बाहर जाकर एवं दरवाजा अच्छी तरह बंद कर द्वार के बाहर खड़ा हो गया।

मुंजाल के हाथ पैर से हथकड़ी बेड़ी उतार दी गई थी जिससे वह पूर्ववत् सत्तादर्शक चाल से आया। उसका सिर पहले की अपेक्षा अधिक गर्व से हिल रहा था। पर उसके मुख पर अत्यंत ग्लानि छाई हुई थी। उसके अधरोष्ठ भयंकर दृढ़ता से बैठे हुए थे; उसकी आँखों में भी उदासी दिखाई पड़ रही थी, साथ ही दया भी थी। वह सिर नीचा किये खड़ा रहा।

उसे देख रानी उलझन में पड़ गई कि अब कैसे बात प्रारंभ की जाय? वह सशंक हो उठी और नीचे से ऊपर न देख सकी। रानी ने सोचा था कि पहले वही बोलेगा किंतु वह एक अक्षर भी नहीं बोला। कुछ देर पश्चात् रानी ने सिर उठा कर देखा तो स्वस्थता की मूर्ति बना हुआ मुंजाल खड़ा नीचे देख रहा था।

'मुंजाल! किस प्रकार मैं बात प्रारंभ करूं? मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया है, मुझे क्षमा करोगे?' कह कर प्रत्युत्तर की आशा से रुकी।

मुंजाल ने केवल नीचे से सिर उठा कर ऊपर देखा।

'तुम मेरी ओर तिरस्कार से देखते हो? अच्छा, देखो। मेरा गर्व

कर्णदेव के पीछे सती हो जाऊँ ? 'बहुत ठीक' ! यह उपाय उसे पसंद आया। मेरी लाज, मेरे कुल की गद्दी अग्निदेव रखेंगे।

'क्या जीवित नहीं रहा जा सकता ? किसके लिए मरूँ ? जिसकी कर्तव्यपरायण पत्नी रहते हुए भी जो हृदय में नहीं बस सका, उसके लिए ?' तुरंत मुंजाल याद आ गया; मुरारपाल, समर एवं अपने हृदय की राय स्मरण आई। 'मरने के पूर्व यह अंतिम उपाय क्यों न कर लूँ ?' मीनलदेवी में स्वार्थ था, उसकी आकांक्षायें बड़ी थीं, उसकी जीने एवं राज करने की प्रबल इच्छा थी। यह सब पूर्ण हो, ऐसा उपाय हाथ से क्यों जाने देना ? इसपर गतरात्रि उसका हृदय मुंजाल के दर्शन के लिए तड़प रहा था। उससे मिलने के लिए पागल हो रहा था।

सहसा मीनलदेवी खड़ी हो गई और चिल्ला उठी—समर !

समर ने आकर रानी में एकाएक परिवर्तन देख चकित हो गया।

'समर ! मुंजाल मेहता को मेरे पास भेज दो।'

समर प्रफुल्लित हुआ और 'जैसी आज्ञा' कहकर चला गया।

४०

मीनलदेवी छाती पर हाथ रख अपने उछलते हुए हृदय को शांत करती हुई खड़ी थी। काल, वस्तुस्थिति प्रसंग सब कुछ वह भूल गई। केवल इतना ही ज्ञान रहा कि उसका मुंजाल आ रहा है। पंद्रह वर्ष पूर्व चंद्रपुर में जो मीनल थी, अधिकांश रूप में वही बन गई। वर्ष पर वर्ष व्यतीत हो गये थे, दुःख झेला किंतु हृदय में कुछ भी परिवर्तन न हुआ था।

बहुत देर तक वह इसी प्रकार खड़ी रही। क्या नहीं आयेगा? आयेगा तो क्या कहेगा? किस प्रकार बात प्रारंभ होगी? किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। उसने मुंजाल के पैरों की आवाज पहचानने का प्रयत्न किया पर असफल रही। आवाज दूर चली गई जिससे उसका हृदय अधिक खिन्न हो गया। फिर दूसरी बार आहट आई, उसका हृदय एकाएक कह उठा 'मुंजाल आ गया।'

इतने में समर ने कहा—माँ जी! बाहर मुंजाल मेहता खड़े हैं।

'भीतर भेज दो, बिना मेरी आज्ञा किसी को भीतर न आने देना।'

'जैसी आज्ञा।' कहकर समर चला गया और मुंजाल को भीतर ले आया। समर बाहर जाकर एवं दरवाजा अच्छी तरह बंद कर द्वार के बाहर खड़ा हो गया।

मुंजाल के हाथ पैर से हथकड़ी बेड़ी उतार दी गई थी जिससे वह पूर्ववत् सत्तादर्शक चाल से आया। उसका सिर पहले की अपेक्षा अधिक गर्व से हिल रहा था। पर उसके मुख पर अत्यंत ग्लानि छाई हुई थी। उसके अधरोष्ठ भयंकर दृढ़ता से बैठे हुए थे; उसकी आँखों में भी उदासी दिखाई पड़ रही थी, साथ ही दया भी थी। वह सिर नीचा किये खड़ा रहा।

उसे देख रानी उलझन में पड़ गई कि अब कैसे बात प्रारंभ की जाय? वह सशंक हो उठी और नीचे से ऊपर न देख सकी। रानी ने सोचा था कि पहले वही बोलेगा किंतु वह एक अक्षर भी नहीं बोला। कुछ देर पश्चात् रानी ने सिर उठा कर देखा तो स्वस्थता की मूर्ति बना हुआ मुंजाल खड़ा नीचे देख रहा था।

'मुंजाल! किस प्रकार मैं बात प्रारंभ करूं? मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया है, मुझे क्षमा करोगे?' कह कर प्रत्युत्तर की आशा से रुकी।

मुंजाल ने केवल नीचे से सिर उठा कर ऊपर देखा।

'तुम मेरी ओर तिरस्कार से देखते हो? अच्छा, देखो। मेरा गर्व

नष्ट हो गया है; अपनी मूर्खता मेरी समझ में आ गई है; मेरी नष्ट-भ्रष्ट सद्बुद्धि वापस आ गई है; मैं तुम्हारे तिरस्कार की पात्र हूँ, पर क्या तुम मुझे क्षमा नहीं करोगे ?'

मुंजाल ज्यों का त्यों खड़ा रहा।

'तुम क्या देख रहे हो ? क्या विचार कर रहे हो ? बोलते क्यों नहीं ?

'सुन रहा हूँ।' उसकी प्रभावशाली आवाज नरम पड़ गई थी।

'मुंजाल ! तुम चतुर हो। तुम्हारे साथ छल करने से कोई लाभ नहीं है या तुम अब यह समझ लो कि तुम्हारे साथ प्रवंचना करने की मेरे में शक्ति नहीं है। तुम सुदक्ष हो, पाटन में तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारे हाथ में मेरा राज्य, मेरे पुत्र का ताज है। तुम जाकर पाटन को समझा दो !

'मैं बंदी हूँ मुझे क्या पता कि पाटन में क्या हो रहा है ?'

'पाटन में ? पाटन से मेरे निकल आने के पश्चात् लोगों ने वहाँ क्रान्ति मचा दी, शांतु मेहता से लोगों ने कोट की कुंजियाँ छीन लीं और तुम्हारा भानजा त्रिभुवनपाल वहाँ का शासक बन बैठा है। मंडुकेश्वर का रुद्रमहालय भस्म हो गया। देवप्रसाद एवं हंसा उसीमें जल मरे।'

'हंसा !' मुंजाल जैसे कुछ चैतन्य हुआ।

'हाँ, हंसा ! अंत में हंसा को मैंने मंडलेश्वर के पास भेज दिया था। लड़का समझता है कि उसके माँ-बाप को मैंने मरवा डाला जिससे वह प्रतिज्ञा लेकर बैठा हुआ है।'

मीनल ने सोचा था कि मुंजाल चौंक कर 'क्या' पूछेगा पर वह मौन रहा। तब वह आगे बढ़ी, 'या तो पाटन नहीं रहेगा या मीनल नहीं रहेगी।' कह उसने फिर मुंजाल की ओर देखा किंतु वह तो तटस्थ-सा खड़ा था। उसे निराशा हुई। वह पुनः कहने लगी—इस समय

चंद्रावती की सेना दो तरफ से घिर गयी है; एक ओर वल्लभसेन देव-प्रसाद की सेना लेकर पीछे पड़ा हुआ है दूसरी ओर त्रिभुवन पाटन का फाटक बंद कर बैठा हुआ है। पाटन का क्या विरोध करूँ? वल्लभ के साथ युद्ध करने से शायद जयदेव को गद्दी से बिलकुल ही हाथ धोना पड़ जाय। अतः यदि पाटन के साथ समझौता हो जाय तो अच्छा किंतु यह हो कैसे?

मुंजाल तब भी चुप रहा।

'बोलो न! तुम्हारी क्या सलाह है?'

'बंदियों की सलाह कैसी?'

'मुंजाल! मेरी एक भूल को बराबर रटते रहोगे? मैं मूर्ख हूँ; गत तीन दिनों में बहुत कुछ ज्ञान हुआ है, मैं मानती हूँ कि मेरी मूर्खता की सीमा नहीं है।'

यह कह मीनलदेवी माथे पर हाथ दे आसन पर बैठ गई।

'मुंजाल! तुम्हारा कहना नहीं माना, उसी का यह फल है। तुम समझते होगे कि मैं ढोंग कर रही हूँ, नहीं! मैंने देख लिया कि लोगों में जो विश्वास तुमने एवं मंडलेश्वर ने प्राप्त किया वह मैं क्यों नहीं प्राप्त कर सकी।'

रानी ने अब तक बहुत कुछ मन में रख छोड़ा था किंतु विचार, पीड़ा, एवं मुंजाल के लिए उमड़ पड़ते हुए अंतर्वेग का प्रवाह जब बह चला तब उसे रोकना कठिन था। जिससे मुंजाल के उत्तर की प्रतीक्षा न कर वह आगे बोलने लगी—'तुम्हारी अपेक्षा मैं अपने को अधिक बुद्धिमती समझती थी और दूर रह कर लोगों को वश में रख, उन्हें शतरंज का मुहरा समझ खेलना चाहती थी—तुम गुण एवं दोष दोनों में लोगों के आदर्श थे जिससे लोगों का तुमपर प्रेम था। इसमें तुम्हारी विजय हुई और मेरी पराजय। एकतंत्र-शासन स्वप्न मात्र है पर यह ज्ञान मुझे बहुत देर में हुआ।'

'ऐसा ?' मुंजाल के नेत्रों में तिरस्कार चमक रहा था।

'हाँ, तुम कुछ सहयोग दोगे ? मेरी बाजी बिगड़ गई है, मेरे गद्दी का ठिकाना नहीं है। अब उसे सुधारना तुम्हारे हाथ में है। जैसे हो अपने भानजे को जाकर समझाओ, मैं सब कुछ देने के लिए तैयार हूँ; केवल मेरे पुत्र का राजमुकुट अमर रखो, मुझे राजमाता बन पाटन में रहने दो।'

भावहीनता से मुंजाल ने पूछा—वह क्या कहता है ?

'उसकी तो नहीं मालूम पर मेरी चार अंगुल की भतीजी आकर मुझसे कह गई कि मैं रेवातट पर जाकर निवास करूँ तो वह जयदेव का पट्टाभिषेक करा दे। क्या कहूँ, मेरे में शक्ति नहीं है और राज्य में मेरा कोई सहायक नहीं है, नहीं तो इस छोकड़ी एवं त्रिभुवन की जीभ खींच कर निकलवा लेती। मैंने सुना है कि इस लड़के ने प्रतिज्ञा की है कि पाटन में वह रहेगा या मैं। अब क्या करना चाहिये ? तुम कुछ क्यों नहीं कहते ? तुम्हारी बुद्धि कहाँ गई ?'

रोब से मुंजाल ने कहा—जब तक मैं मंत्री था तब तक मेरी बुद्धि काम करती थी, अब नहीं चलती।

'बुद्धि नहीं चलती ? मुंजाल ! तुम क्या कह रहे हो ? तुम्हें छोड़ इस समय मुझे दूसरा सहारा नहीं है—नहीं, तुम्हें छोड़ अन्य कोई सहारा मुझे था ही नहीं। तुम कोई रास्ता बताओ; तुम्हारी बुद्धि काम न दे यह कभी हो सकता है ? लड़कपन में तुम कहा करते थे कि मैं क्या नहीं कर सकता। यह तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है ?'

'हाँ, मैं सब कुछ कर सका। पत्नी को मरने दिया, बहन को मार डाला। एक प्रकार से बहनोई को भी मारा। नगर को कुचल डाला पर अब भानजे को नष्ट करने की बुद्धि मुझमें नहीं है।'

'तब मैं मर जाऊँ ? मुंजाल ! इन सबकी मूल मैं हूँ; सबकी आँख का काँटा मैं हूँ। क्या मैं मर जाऊँ ? इसका भी मैंने विचार किया है

अग्निदेवता तो मुझे नहीं ही छोड़ेगा किंतु उनकी शरण में जाने के बजाय क्या तुम दूसरा उपाय न बताओगे ?'

कठोर आवाज में मुंजाल ने कहा—मृत और जीवित में तो मुझे कोई भेद नहीं मालूम पड़ता।

'तुम्हें कहाँ से मालूम पड़ेगा ? तुम्हारी शरण में आई हूँ, इसमें जो कुछ तुम कहो सब ठीक है पर तुम कोई मार्ग निकालो।'

तिरस्कारपूर्वक मुंजाल बोला—प्रभु की इच्छा के अधीन हो जाओ।

'अर्थात मैं जान दे दूँ, क्यों ? अपने पुत्र के राज्य को हाथ से निकल जाने दूँ ?'

भयंकर रीति से हँसकर मुंजाल बोला—योगमाया बनकर सोलंकी कुल का विनाश करने के लिए उत्पन्न हुई हो !

रानी ने देखा कि उसे द्रवित करने के लिए चुप रहने की अपेक्षा उसकी गाली कहीं अच्छी है।

'जी हाँ, मैं विनाश करने आई हूँ, तुम क्यों बताने लगे ? एक सोलंकी जायगा, दूसरा आयेगा। तुम्हारा तो भानजा चक्रवर्ती बनेगा।'

'संसार की उन्नति-अवनति से मेरा कोई संबंध नहीं है।' छोटा-सा उत्तर दे मुंजाल चुप हो रहा।

वह इस प्रकार मीनल की वाग्चातुरी में फँसने वाला नहीं था।

'तब तुम कुछ सहायता नहीं करोगे ? मुंजाल, आज पंद्रह वर्ष के संपर्क के पश्चात भी तुम इतना नहीं करोगे ?'

उत्तर में मुंजाल कठोरता से हँसा।

झुँझला कर रानी ने कहा—हँस लो, हँस लो। इसी से प्रसन्न हो जाओ। मैं इतना कह रही हूँ और तुम्हारे गले के नीचे बात तक नहीं उतरती ! एक बार क्षमा नहीं करोगे ? अबसे तुम्हारी आज्ञा बिना मैं एक कदम भी नहीं रखूँगी, कुछ तो रास्ता बताओ।'

'रास्ता बताने का काम मैंने छोड़ दिया है।'

'ऐसा क्या कह रहे हो ? तुम्हें तनिक भी दया नहीं आती ? मैंने मंत्रीपद से विलग किया, तुम्हें बंदी बनाया; मैं कृतघ्न हूँ, और भी जो कहना हो कहो; किंतु तुम्हारे पैर पड़ती हूँ इतना काम मेरा कर दो।'

ज्यों-ज्यों रानी को अपने प्रयत्न निष्फल होते हुए जान पड़े, त्यों-त्यों वह अधिक प्रयत्न करने लगी और प्रयत्न करते समय उसमें जो कुछ स्वस्थता एवं गौरव था, वह भी नष्ट हो गया। उसके प्राकृतिक स्वभाव में जो कुछ भाव थे वे बाहर निकलने लगे। गत रात्रि से वह उसी सरल मार्ग पर चलने लगी थी। अब प्रतिक्षण जैसे-जैसे वह हृदय की सीधी सरल भाषा बोलने लगी, ज्यों-ज्यों समक्ष उपस्थित प्रभावशाली पुरुष का व्यक्तित्व उसके क्षुब्ध हृदय को अधिक विक्षिप्त बनाता गया, त्यों-त्यों उस पथ का अंत नजदीक आता गया। अनुभवहीन, कृत्रिमता रहित, सत्ता की आकांक्षा के दाँव-पेंच से दूर, वह पंद्रह वर्ष पूर्व की मीनल हो गई। उसने हाथ जोड़ दिये।

'रानी ! यदि और कुछ न कहना हो तो आज्ञा दो। इसमें मैं कुछ कर सकने में असमर्थ हूँ। जिस दिन तुम्हारा बंदी हुआ, उसी दिन से मैं मुंजाल मिट गया।'

सहसा रानी मुंजाल के सामने आकर खड़ी हो गई। हाथ मलते हुए बोली—फिर वही बात ! मैंने अपराध किया तो उसके बदले में मारना हो तो मारो। पर मुझे पाटन ले चलो जो कहोगे, वही करूँगी। एक ही बात क्या रट रहे हो ? मुझे देख घृणा उत्पन्न होती है क्यों ? घड़ी भर मेरे साथ बात करते हुए तुम्हें झुंझलाहट होती है ? यह भी नसीब की बलिहारी है। मुंजाल मैं मर जाऊँ ! यही क्या तुम्हारा अंतिम फैसला है ? अन्य कोई मार्ग नहीं है ? किंतु इस तैंतीस वर्ष की उम्र में मरना भारी लगता है।'

क्रूरतापूर्ण शांति से मुंजाल ने कटाक्ष किया—सेठानी को तो पचीस

ही वर्ष में मरना पड़ा। हंसा को भी तीस वर्ष की कच्ची उम्र में संसार छोड़ना पड़ा।

माथा जोर से पीटकर रानी बोली—हाँ! हाँ! एक भाग्यशाली होकर मुंजाल जैसे पति के कंधे पर चढ़ कर गई, दूसरी भी भाग्यशालिनी थी जिसने मंडलेश्वर जैसे वीरनर की गोद में प्राण त्याग किया। भाग्य-हीन तो मैं हूँ कि मेरे साथ कोई आने वाला नहीं। मेरे पीछे कोई रोने वाला भी नहीं। मेरा भी कौन-सा भोग था जो पाटन के लालच में यहाँ आई? नहीं तो यह दिन क्यों देखने को मिलता? इस भूमि पर तो शाप है कि जिसे तिखे खा जाती है।

'रानी! जो कुछ दोष देना हो मुझे दो, मेरी माता को मत देना।'

आक्रंदन करते हुए मीनल बोली—दूँगी, क्यों न दूँ? तुमने चंद्रपुर आकर इस भूमि की प्रशंसा न की होती तो मैं यहाँ पैर भी न धरती।

'अपनी जन्मदातृ भूमि का कीर्तन करना मेरा धर्म है। मेरी भूमि जैसी तो स्वर्गलोक में भी मिलना कठिन है। अपना दोष दूसरे के सिर क्यों मढ़ती हो?'

आँख से आँसू गिराते हुए रानी ने कहा—ऐसा ही सही, मुझे हठ नहीं है। इस भूमि के नाथ के पीछे कल प्रातः मैं सती हो जाऊँगी; इसके सिवा इस विपत्ति से छूटने का दूसरा मार्ग नहीं है। मुझे गौरव-हीन बन कर जीवित नहीं रहना है। मैंने नहीं सोचा था कि कभी यह दिन भी देखना पड़ेगा।

दुःख के आवेश से सिसकते हुए रानी पुनः बोली—मुंजाल! अब तो दया करो। यह तुम्हारी कठोर दृष्टि, तिरस्कार पूर्ण मुख मेरा हृदय चीर डाल रहा है। तुमसे और कुछ नहीं कहूँगी, और कुछ नहीं माँगूँगी; दो शब्द नहीं बोलोगे? मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि तुम मेरे साथ ऐसा व्यवहार करोगे।

मुंजाल ने सिर नीचा कर लिया। क्षण भर वहाँ शांति रही।

रानी मानो पागल हो गई हो इस प्रकार रुदन के राग में, सिसकी भरते हुए पुनः कहने लगी—मुंजाल क्षण भर के लिए तो बीती बातें भूल जाओ, यदि क्रोध है तो दो तमाचा मार लो। इस समय मैं चंद्रपुर के राजा की पुत्री नहीं हूँ, पाटन के महाराज की पत्नी नहीं हूँ, नवीन महाराज की माँ भी नहीं हूँ बल्कि मीनल हूँ। पंद्रह वर्ष पूर्व तुम्हें देख पागल हो जाने वाली मीनल हूँ! मैं मरूँगी किन्तु मरने के पूर्व तुम्हारे मुख से निकले हुए दो शब्द तो मुझे अपने साथ ले जाने दो। मुंजाल! वह दिन तुम भूल गये? तुम्हारे कथन से ही लुभाकर मैं गुजरात पर पागल हो गई थी। याद है? तुम पाटन का कैसा यशोगान कर रहे थे? इस समय मुझे प्रत्येक शब्द स्मरण आ रहा है। मुंजाल! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, क्षण भर के लिए सब वर्त्तमान भूल जाओ। जैसे थे वैसे ही हो जाओ। मैं पागल हो गई हूँ, मेरी शान नष्ट हो गई। पंद्रह वर्ष तक स्वप्न में भी जो मैंने नहीं देखा वह लड़कपन का अंतर्वेग ताजा हो रहा है। मुंजाल! ओ मुंजाल!—कह कर रानी उद्वेग के कारण जहाँ खड़ी थी वहीं पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

मुंजाल उसे बचाने के लिए पास आया, कुछ रुका और तनकर खड़ा हो गया। दुःख से दयार्द्र स्वर में वह बोला—मीनलदेवी! इस आक्रंदन से लाभ? गुजरे हुए जमाने को स्मरण करने से क्या लाभ होगा? वे तो अब अतीत के स्वप्न हैं। इस समय आप कर्णदेव महाराज की विधवा रानी हैं।

'सच है मुंजाल! मृत्यु के समय भी सच्चे मन के वेगों को प्रकट करने का मुझे भला क्या अधिकार? मैं पहले से ही झूठी हूँ। तुम्हारे देश में आने के लिए, तुम्हारे पास रहने के लिए, दूसरे का हाथ स्वीकार किया। अब अपने हृदय के साथ मेरा संबंध ही क्या रह गया? मनसा-वाचा जिसका जीवन अधर्मी है उसे मरने के समय भी सुखी होने का क्या अधिकार है?'

'आप विपरीत अर्थ न निकालें। संभव है! पर इन मृत प्रसंगों को इस समय जीवित करने से लाभ?'

पागल के समान उठते हुए रानी बोली—इस समय मेरे लिए लाभ की कोई गणना नहीं है। मरनेवाले के लिए लाभ हानि की क्या परवाह? जो कुछ भी हूँ वह हूँ पर मुंजाल, मरने के पूर्व एक बार तो बोल-हँस लो। मैं और कुछ नहीं चाहती। मैं तो अपने मुंजाल का मुख देखते हुए मरना चाहती हूँ। मुझे छूने से विष चढ़ जायगा, क्यों? तुम प्रतिशोध ले रहे हो? हाँ, उस दिन का बदला ले रहे हो। विवाह के दिन मैंने तुम्हें ढकेल कर दूर कर दिया। उस दिन तुमसे मैंने कहा कि मैं गुजरातकी रानी हो गई, जन्मदात्री हो गई। मैंने तुमसे कहा कि क्षुद्र वासना का त्याग कर हमें गुजरात का स्तंभ बनकर रहना चाहिये। मैंने तुम्हें निकाल बाहर किया, दुत्कार दिया। उसीका बदला ले रहे हो, क्यों?

इन शब्दों का मुंजाल पर जादू-सा प्रभाव हुआ। उसकी कठोरता दूर होने लगी। चेहरे पर कोमलता छा गयी। उसकी छाती उछलने लगी, स्वर काँप रहे थे।

'मीनलदेवी! उन दिनों की याद से मेरा हृदय फटा जाता है। बस करो, मत याद दिलाओ, उन दिनों की!'

'क्या मेरा हृदय पत्थर का है? स्वार्थी, बेवफा, हृदयहीन मुझे जो चाहे समझ लो पर मैं वैसी हूँ नहीं। उन्हीं स्वप्नों में ही मेरा जीवन है। उन दिनों का ठुकराई हुई उमंगों ने मेरे हृदय को स्वार्थी और कठोर बना दिया है। मुंजाल! विवाह के बाद मैं प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए ही राजमहल में उतरी तुम्हारी ही सलाह से; याद है? वह क्षण याद करते ही मुझे नशा-सा चढ़ जाता है। क्या किया था उस दिन तुम····?'

'बस करो, मीनलदेवी! प्रत्येक मनुष्य के धैर्य की सीमा होती है, अब मुझसे अधिक सहन नहीं हो रहा है।'

'क्यों सहन कर रहे हो ? मैं यही तो चाहती हूँ। क्षण-भर के लिए. उस रात्रि के मुंजाल बन जाओ तो मैं सुख से कल मरूँगी। मुंजाल ! ओ मुंजाल !' कहकर रानी मुंजाल का हाथ पकड़ने के लिए आगे बढ़ी। वह पीछे हट गया। रानी की उन्मत्त आँखें एवं उसके आवेशपूर्ण मुखपर जो ताप दिखाई पड़ रहा था, वह उसे भी जलाने लगा। उसके स्वस्थ गात्र काँप उठे, उसके समक्ष पहले की मीनल आकर खड़ी हो गई। दाँत पर दाँत बैठाकर उसने किसी प्रकार शांति प्राप्त करने का प्रयत्न किया किंतु वह असफल रहा और बोला—रानी ! क्या कह रही हो ?

'मुंजाल ! तुम मेरे क्यों न रहे ?'

हृदय के साथ भयंकर द्वंद्व युद्ध करता हुआ मुंजाल बोला—तुमने मुझे उस दिन दूर किया, परसों तो एकदम अलग ही कर दिया।

जोर से हाँफते हुए मीनल बोली—किंतु तुम कैसे बदल गये ? मुंजाल, मैं अधम हूँ पर तुम तो नहीं हो।

सिर हिलाकर, हृदय में उठने वाली ज्वाला को शमन करने का प्रयत्न करते हुए मुंजाल ने कहा—मैं अब भी वही हूँ।

यह सुनते ही मीनल के नेत्रों से भयंकर विद्युत निकली, 'सचमुच !'

मुंजाल ने सिर नीचा कर लिया। उसने निष्फल प्रयत्न करना छोड़ दिया—'देवी ! मीनल—!' निराधार हो चिल्ला उठा। उसकी आवाज में पुष्पधन्वा के धनुष की टंकार थी।

मीनल मौन मूढ़वत् खड़ी रही। उन्मत्त के समान मुंजाल आगे बढ़ा, मीनल को उसने अपने बाहुपाश में जकड़ लिया और झकझोर डाला। दूसरे ही क्षण उसे दूर ढकेल जमीन पर पटक कर वहाँ से भागा।

४१

बाहर से घूम कर आने पर जयदेव ने मीनलदेवी को बिछौने पर पड़ी हुई देखा और पूछा—माँ ? क्या हुआ ? दिन में तो अच्छी थीं ?

उसकी आवाज सुन रानी काँप उठी. वह बोली—जयदेव ! मेरे सिर में जोर का दर्द हो रहा है और माथा घूम रहा है। तुम घूम आये ?

'जी हाँ. आज बड़ा मजा आया. वह समर कहाँ गया ? यह बुड्ढा अब बिलकुल बेकार हो गया है।'

'होगा बेटा ! पुराने आदमियों पर क्रोध नहीं करना चाहिये।'

'समर ! समर कहाँ गया ?'

'आया मेरे महाराज !' कहता हुआ चोबदार भीतर आया। आज उसका चेहरा बड़ा प्रफुल्लित था।

'मेरा मुकुट और तलवार पकड़ो. अब तक कहाँ थे ?'

'मुंजाल मेहता ने बुलाया था, लाइये।' कहकर उसने मुकुट और तलवार को हाथ में ले लिया और जयदेव कुमार के बाहर चले जाने पर रानी से कहा—माँ जी ! मुंजाल मेहता ने संदेश कहलाया है कि अब चिंता करने की जरूरत नहीं है।'

निराशा से मंद पड़ी हुई आवाज में रानी ने पूछा—क्या ?

'कहलाया है कि जो कुछ करना हो कल न कर परसों करें। कल मुंजाल मेहता पाटन जा रहे हैं।'

'क्या कह रहा है ?' बिछौने पर उठ कर बैठते हुए रानी ने पूछा। खेद से व्याकुल उसके मुख की अशांति कम हो गई।

'जी हाँ, कल सबेरे जाने वाले हैं. अब कोई चिंता की बात नहीं है।' मुंजाल की शक्ति को दैवी मानने वाला श्रद्धावान चोबदार बोला। उसकी असंस्कृत आवाज में भी विजय-ध्वनि थी।

रानी का हृदय थोड़ा प्रफुल्लित हो उठा। उसके मस्तिष्क में कुछ

'क्या ? अब कहने के लिए कुछ रह ही नहीं गया। अब तो काम करना है। जयदेव कुमार कल प्रातःकाल गुजराज की गद्दी पर बैठेंगे। मैं कल से भागा हूँ और पाटन की भी खोज खबर लेता आया हूँ। तीन दिन में पाटन का पतन होना निश्चित है। अब घबड़ाने का कोई काम नहीं है। पीछे पड़ा हुआ वल्लभ भी दो दिन में पराजित हो पीछे हट जायगा।

सबने रानी की ओर देखा किंतु वह शांत एवं ग्लानिपूर्ण नेत्रों से उनको देख रही थी। इतनी आशा दिलाने पर भी उसमें उत्साह उत्पन्न नहीं हुआ। मुंजाल के साथ बात करते समय व्याकुल हो जाने के पश्चात् उसका हृदय बैठ गया था।

जयदेव बीचमें बोल उठा—माँ! क्या विचार कर रही हैं ? हम पाटन लड़कर लेंगे।

शांति धारण कर गंभीर आवाज में रानी ने कहा—नहीं, बेटा! मुझे ऐसा नहीं करना है। भले ही पाटन की जो इच्छा हो करे, वह कुपुत्र भले ही निकल जाय, मुझे कुमाता नहीं होना है।

सभी स्तब्ध हो देखते रह गये। विजयपाल ने कहा—पर माँजी! तब दूसरा मार्ग ही क्या है ? कल तो हम इतने विचार में पड़ गये थे।

रानी ने स्पष्ट कहा—विजयपाल जी! कल हम विचार कर रहे थे पर आज मैंने निश्चय कर लिया है कि मुझे कुछ नहीं करना है। कल मुंजाल मेहता पाटन जा रहे हैं।

जबसे उसके हृदय ने वर्षों की बेड़ी तोड़ अपने प्राकृतिक स्वभाव को निज मार्ग पर जाने दिया तभी से उसकी बनावटी दीप्ति दूर हो गयी थी और उसमें निर्दोष गौरव चमकने लगा था। वह सरलता से साधारण रूप में बोलने लगी।

यह परिवर्तन देख यति को विस्मय हुआ। जिस पर मुंजाल का नाम सुन वह अधिक झुंझलाकर बोला—मुंजाल ?

'कौन माँ ? अपने मुंजाल ?' जयदेव भी बोल उठा।

रानी ने सुधार कर धीमे से कहा—हाँ, मुंजाल मंत्री पाटन जा रहे हैं। वह पाटन के नेताओं से मिलेंगे। इसपर भी यदि कुछ न हुआ और केवल मेरे ही कारण पाटन निवासियों ने हठ पकड़ा तो मैं परसों अपने स्वामिनाथ के साथ स्वर्ग में विहार करूँगी। मैं केवल अपने पुत्र एवं देश के लिये सती नहीं हो रही थी किंतु यदि मेरे बिना वे सुखी होते हों तो अपने प्रभु का वियोग मैं क्यों सहन करूँ ? अपने लिए मैं अपने देश का विनाश क्यों करूँ ?

वहाँ पर खड़े सभी लोगों को लगा कि वे कहीं स्वप्न में तो रानी का कथन नहीं सुन रहे हैं। उनमें जो पाटन निवासी थे उन्होंने हर्षसह रानी को इस प्रकार बोलते हुए सुन गौरव से सिर ऊँचा कर लिया। कृतज्ञतावश वे रानी के साथ थे तथापि पाटन उन्हें प्रिय था। किंतु यति के मुख पर भयंकर परिवर्तन हुआ: उसकी लाल-लाल आँखों में हिंसा का तेज चमक रहा था। दाँत पीसते हुए वह बोल उठा—क्या कह रही हैं ? पास में विजय खड़ी देख कर भी आप ऐसा कह रही हैं ? संपूर्ण भुवन की आप आशा हैं, आपकी महत्ता पर श्रद्धा रख सब लोग बैठे हुए हैं। अर्हन्तों की कृपा से आपके हाथ में सत्ता है, बुद्धिमत्ता है, विजय प्राप्त करने की शक्ति है और आप ऐसा कह रही हैं ?

आसपास में खड़े योद्धा बीच में बोलने जा रहे थे किंतु रानी ने कहा—सत्ता और विजय की अपेक्षा मुझे अपनी प्रजा अधिक प्रिय है। यतिजी ! गुजरात की रानी के साथ बात करते समय किस प्रकार बोलना चाहिये यह भी भूल जाते हैं ?

यति ने दाँत तले उंगली दबा ली। 'नहीं माँ जी ! मैं भूल नहीं रहा हूँ किंतु अपनी जिस राजनीति के लिए मैं इतना मर मिटा, वह जब पूर्ण होने जा रही है, उस समय आप ऐसा कह रही हैं ? ऐसा

अवसर इतिहास-क्रम में एक ही बार आता है, उस अवसर को छोड़ देना कहाँ तक बुद्धिमानी होगी ?'

'आनंदसूरि जी ! मेरा निश्चय दृढ़ है, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। यदि मुंजाल को सफलता मिली तो मैं कल पाटन जाऊँगी।'

'आपको पता है कि त्रिभुवनपाल ने प्रतिज्ञा की है ? दस मुंजाल के जाने पर भी वह डिगने वाला नहीं। तब क्या करियेगा।'

रानी ने कठोरता से कहा— तब मैं सती हो जाऊँगी। पुत्र के राज्य से बढ़ कर तो मेरा जीवन नहीं है !

'माँ ! यह क्या कह रही हैं ?' जयदेव चिल्ला-सा उठा।

बेटा ! क्षत्रियत्व की प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये गुजरात की रानी को किसी बात का भी विचार नहीं करना चाहिये।

'किंतु धर्म की ध्वजा के सामने प्रतिज्ञा का क्या महत्व ? केवल प्रतिज्ञा ने कभी राज्य की रचना की है ? क्षत्रियों की प्रतिज्ञा ने तो संपूर्ण गुजरात, संपूर्ण भरतखंड को छिन्न-भिन्न कर डाला। और यदि यथावसर एक धर्म की सत्ता प्रबल न होगी तो विधर्मी यवनगण कल ही आपको दास के भी दास बना डालेंगे। अभी भी विचार कीजिये। ऐसा अवसर हाथसे न जाने दें। सृष्टि पर चक्रवर्त्ती होने का यही मार्ग है; उसे आप क्यों खो रही हैं ?

मीनल ने विरक्तिपूर्वक कहा—आनंदसूरिजी ! तुम्हारे संप्रदाय में मुझे अब श्रद्धा न रही। चक्रवर्त्तीपद मिल सकता है तो प्रजा के उत्साह से, उनकी महत्वाकांक्षा सजीवित करने से।

'यह महत्वाकांक्षा तो इस समय जैनमत ही प्राप्त करा सकता है।'

'जब प्रजा नहीं चाहती तब मुझे भी वह नहीं चाहिये।'

कमर में बँधी हुई तलवार पर हाथ ठोंकते हुए यति बोला—उन्हें स्वीकार करने के लिए तैयार कराना राजाओं का काम है।

'अहिंसा परमो धर्मः!' रानी ने उत्तर दिया। यति चुपचाप हो गया।

'यतिजी! चाहे जो हो मेरा निश्चय अटल है। जीवित रहूँगी तो पाटन की इच्छा से, मरूँगी तो पाटन का गौरव बढ़ाने के लिए।'

यति ने अशिष्टता से कहा—व्यर्थ पीछे पछताना पड़ेगा।

जयदेव कुमार क्रुद्ध हो कुछ कहने जा रहा था, रानी ने उसे रोककर कहा—आनंदसूरि जी! तुम धर्मात्मा हो, नहीं तो इन शब्दों के लिए तुम्हारी जीभ खिंचवा लेती, जाओ!

यह कह द्वार की ओर संकेत किया, पश्चात् कहा—विजयपालजी! तुमने मेरा निश्चय सुन लिया, तुम चंद्रावती के सेनापति हो, अब तुम्हारे नगर का हित किसमें है इसका विचार तुम स्वयं कर लो।

तिरस्कारपूर्वक आनंदसूरि बोला—धर्म की विजय के बीच स्वार्थी हृदय की प्रेरणा के आने से ही इस संसार का पतन हुआ है।

मुरारपाल—यति जी! आपके यति होने की मुझे भी परवाह नहीं है पर माँजी के समक्ष यदि आपके मुंह से ऐसे शब्द फिर निकले तो आपका सिर धड़ पर दिखाई नहीं देगा। विजयपाल जी! अब हम लोग यहाँ से चलें; महारानी जी की तबीयत ठीक नहीं है।

सब लोग चुपचाप बाहर निकल गये। मुरारपाल केवल रह गया और रानी को संबोधन कर बोला—माँजी! अंतमें आपने पाटन की लाज रख ली। एक बार आपकी आज्ञापालन करना मैंने अस्वीकार कर दिया था, अब यदि मेरे सिर की आवश्यकता हो तो वह भी हाजिर है।

'मुरारपाल! जब मैं तुम लोगों की रानी थी उस समय कैसे अवसर खो दिया, वह आज मेरी समझ में आ रहा है! तुम विश्वासी हो, यदि मुझे कुछ हो जाय तो जयदेव को संभालने वाले अकेले तुम हो, याद रखना।'

'माँजी ! तन में प्राण रहते जयदेव कुमार को जरा भी आँच नहीं लगने दूँगा। अब आप थक गई होंगी, आराम करें।'

जयदेव कुमार अकेला रह गया। उसके स्वार्थी हृदय में अपनी माँ के लिए प्रेम, उसके वचन के लिए मान एवं उसकी बुद्धि पर विश्वास था। उसकी ऐसी प्रतिज्ञा सुन उसे विस्मय हुआ। उसे समझ नहीं पड़ा कि क्या करे। वह सती क्यों होने जा रही है, यह पूछना चाहा पर मीनल ने दूसरे दिन बताने का वचन दे उसे शांत कर दिया। रानीका मन विचारों में लीन था।

४२

त्रिभुवन ने थोड़े ही दिनों में अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन किया एवं नगर की रक्षा के लिए यथायोग्य प्रबंध कर लिया था। खेंगार का अनुभव एवं उदा की राजनीतिज्ञता के कारण बहुत काम हुआ था पर त्रिभुवन जैसा उत्साह किसी में नहीं था। लोग उसे गत शूरवीर सोलं-कियों का मुकुटमणि समझने लगे। उसके वचन पर प्राण अर्पण करने के लिए तैयार रहने में बड़प्पन मानने लगे। स्त्रियाँ उसका कोमल पर भव्य मुख देख उसपर न्योछावर होने लगीं; पुरुषगण उसका साहस-पूर्ण एवं जागरूक चरित्र देख आत्मत्याग करने लगे; वृद्ध उसमें माँ-बाप की पुरानी बातें ताजी कर उसकी पूजा करने लगे। डूंगरनायक तो उसे देवता समझता और उसके पीछे-पीछे नमकहलाल कुत्ते की तरह घूमने में बड़प्पन समझता। प्रसन्न उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में तथा उदासी उत्पन्न होने पर उसे दूर करने में व्यस्त रहने लगी।

पाटन निवासियों में उत्साह अधिकाधिक बढ़ता ही गया। लोगों को इस प्रकार फाटक बंदकर बैठे रहना नहीं रुचा। कितने ही लोग

दिग्विजय की तैयारी करने का विचार करने लगे किंतु दिग्विजय के इच्छुकों को त्रिभुवन की दृढ़ता एवं उदा की व्यवस्था बहुत कुछ वश में रखने लगी। अपनी वर्तमान सत्ता से लाभ उठाकर उदाने राजतंत्र पूर्ववत् चलाने का प्रयत्न किया और लोगों में एक ही महात्वाकांक्षा होने से उसे बहुत कुछ सफलता भी मिली। इन दोनों के रात-दिन के अथक परिश्रम के साथ किये हुए प्रबंधों से लोगों के मन में दुर्व्यवस्था का जो भय उत्पन्न हो गया था वह दूर होने लगा एवं निडर हो स्वस्थता पूर्वक पाटन की रानी का सामना करने के लिए प्रस्तुत हो गये।

त्रिभुवन के पास जो सूचनायें आया करती थीं उनसे पता चला कि रानी फिलहाल कुछ करने वाली नहीं है। अतः वह पाटन की सत्ता बढ़ाने के उपाय में लगा। प्रातःकाल जब वह उठा तो माँ-बाप का शोक होते हुए भी उसका मन प्रफुल्लित था। उसके महात्वाकांक्षी मनको भरतखंड जीतना भी सरल जान पड़ा। सूतक के कारण नित्यकर्म कोई न होने से स्नान कर बाहर निकलने का उसने विचार किया किंतु अभी भी सूर्योदय में देर थी। उदा को बुलाकर कुछ मंत्रणा करने के पश्चात हाथी लाने का आदेश दिया।

दुपट्टा की तह करते हुए उदा बोला—बापू! सब लोग एक ही आदमी की बात कर रहे हैं।

'किसकी ?'

आँखें मार कर मारवाड़ी बोला—आपकी !

उदा की बात करने की शैली पर हँसते हुए त्रिभुवन ने कहा—पर किस बातकी ?

'क्यों, आपको—पर नाराज तो नहीं होंगे ?'

'अच्छा कह तो सही।'

'आपको सब लोग उपालंभ दे रहे हैं।'

'किसलिये ?'

'जो मैंने कल कहा था, उसके लिए ?'

'उदा ! तुम चाहे जितनी चतुरता दिखाओ पर मैं चित से पट नहीं होने का। जो वचन मेरे दादा ने दे दिया उसे मैं तोड़ने वाला नहीं हूँ। पाटन की गद्दी पर कर्णदेव महाराज के पुत्र के रहते हुए मैं बैठूँ ? पागल ! यह भला संभव है ? पाटन के पति तो वे ही हैं। मैं तो उनका सेवक हूँ।'

'इसमें—'

'बस यह बात उठाना ही व्यर्थ है।' यह कह वह घूमने जा ही रहा था कि इतने में एक नौकर हाँफता हुआ आया और किसके साथ बात कर रहा है इसका ख्याल न कर वह पूछने लगा—खेंगार बापू हैं ? खेंगार बापू ?

एक दृष्टिपात मात्र से त्रिभुवन ने उसे डराकर विनयी बनाया और पूछा—क्यों ? कौन-सा पहाड़ टूटा पड़ रहा है ? तू कौन है ?

'महाराज ! महाराज ! मैं द्वारपाल हूँ। मोंढेरी दरवाजे पर....' कहकर वह श्वाँस लेने के लिए रुक गया। कठोरतापूर्वक त्रिभुवन सुन रहा था। 'बापू ! खेंगार महाराज से कहने आया था कि फाटक के बाहर नगरसेठ आये—पधारे हैं।'

'नगरसेठ !' त्रिभुवन और उदा दोनों इस प्रकार पीछे हट गये मानों धरती फट गई हो।

'जी हाँ, महाराज ! मुंजाल मेहता।'

दोनों श्रोता विचलित हो उठे। त्रिभुवन ने कठिन परिश्रम से चित्त शांत कर पूछा—सेना के साथ ? कितने सैनिक साथ में हैं।

'महाराज ! वे अकेले हैं।'

'ऐं !'

'जी हाँ, कह रहे हैं कि वे आपसे मिलना चाहते हैं, आज्ञा हो तो भीतर आयें नहीं तो आप ही बाहर चले आवें।'

'उदा ! जाओ खेंगार सिंह को बुला लाओ ।'

खेंगार मंडलेश्वर को बुलाने के लिए जाते समय उदा सोचने लगा। वह बिलकुल घबड़ा गया था, किंतु उसकी निर्मल स्वार्थ-बुद्धि तुरंत उसकी सहायक हुई। मुंजाल यहाँ आया कि सब खेल समाप्त हो जायगा। उसका व्यक्तित्व, वाक्चातुर्य, उसकी सुदक्षता सबको वशीभूत कर लेगा, तब? खेंगार से मिलने के पूर्व ही एक योजना उसने गढ़ ली। वह खेंगार से बोला—बापू! बापू! फाटक के बाहर मुंजाल मेहता आकर खड़े हैं। त्रिभुवन महाराज से मिलने की अनुमति माँग रहे हैं। चलिए, आपको महाराज बुला रहे हैं।

'एँ! रानी ने भेजा होगा।'

'जी हाँ, किंतु देखिये कुछ उलटा सीधा न करें, बड़े ही कूट-नीतिज्ञ हैं।'

मूँछ पर ताव देते हुए खेंगार बोले—अजी चलो! कोई हँसी खेल है क्या?

'बापू! न हो तो इतना कीजिये कि त्रिभुवनपाल को नगर के बाहर बात करने के लिए भेज दीजिये, मुंजाल मेहता को यहाँ बुलाना ठीक न होगा।'

'चल पागल! मुंजाल मेहता कभी भी ऐसा कार्य नहीं करेंगे जिससे पाटन को लांछन लगे।' यह कहते हुए वह त्रिभुवन के पास आ पहुँचे और संबोधन कर बोले—क्यों ठीक है न? मुंजाल मेहता आये हैं तो उन्हें बुलाओ यहाँ।

'जी हाँ, मेरा भी यही विचार है।'

उदा अपनी बात आगे रखते हुए बोला—महाराज! आप उनसे मिलने के लिए नगर के बाहर जांय तो कैसा?

क्यों? मेहता भी पाटन के हैं और बात करके चले जायंगे।'

उदा ने गहरी साँस ली। उसके विचार से यह सब मूर्खतापूर्ण बातें थीं। वह बोला—जैसी आपकी इच्छा, बापू!

'खेंगार चाचा! यदि आप कहें तो अपना हाथी भेज दूँ! उनका स्वागत नगरसेठ के योग्य ही होना चाहिये।'

'किंतु साथ में अन्य कोई न आने पाये।'

'जी नहीं, यह द्वारपाल तो कह रहा है कि वे अकेले हैं।'

'तब ठीक है, भेजिये! कहिये तो मैं चला जाऊँ।'

उदा अधिक विचार में पड़ गया, नगरसेठ के नामका मांत्रिक प्रभाव पड़ने लग गया। ऐसा अवसर वह चूकने वाला नहीं था जिससे वह भी बोल उठा—मैं भी जाऊँ?

'हाँ' कहकर त्रिभुवन वहीं रहा और खेंगार एवं उदा बुलाने गये। कुछ ही समय बीता होगा कि समाचार सुनते ही प्रसन्न दौड़ती हुई आई। 'मुंजाल महता आ रहे हैं।' इस समाचार से राजगढ़ में खलबली मच गई।

'ऐं! यह समाचार क्या सच है?' प्रसन्न पगला-सी गई थी।

'हाँ, इतना घबड़ा क्यों रही हो?'

'देखना, आपका व्रत भंग न करावें।'

'जरा भी न घबड़ाओ; मैं अटल हूँ।' त्रिभुवन के शब्दों में दृढ़ता थी।

बहुत देर तक दोनों एक दूसरे को एकटक देखते रहे। मुंजाल से मिलने की आतुरता एवं अधीरता में दो में से कोई भी बात नहीं कर सका। इसी समय दो एक सामंतगण भी यह समाचार सुनकर आ पहुँचे। थोड़ी देर में अत्यधिक अधीरता का अनुभव करने के पश्चात् राजगढ़ में कुछ लोगों के आने की आहट सुन पड़ी। त्रिभुवन ने बरामदे में जाकर मुंजाल, खेंगार, उदा एवं रास्ते के कुछ अन्य लोगों को पैदल ही आते हुए देखा।

मुंजाल के वस्त्र बिल्कुल साधारण एवं मैले थे। जिस वेश में उसे बंदी बनाया गया था, उसी वेश में वह यहाँ आया था। उसके लंबे सुगठित शरीर में कुछ ढीलापन; सिर के मोड़ में पहले की अपेक्षा गर्व कुछ कम एवं नम्रता अधिक, नेत्रों के तेज में सत्ता के स्थान पर अधिक तिरस्कार स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। पर चाल पहले की ही भांति दृढ़ और सत्तादर्शक थी। उसका व्यक्तित्व पूर्ववत् शोभा दे रहा था—तेजस्वी एवं सबसे निराला!

त्रिभुवन सहसा मुंजाल का स्वागत करने के लिये आगे बढ़ा। उसने अभिमानी मंत्री, राजनीतिज्ञ नगर सेठ एवं रानी का मान्य मुंजाल को देखने की आशा की थी। इसके विपरीत वह तो एक साधारण-सा भिक्षुक की तरह अपनी याचना रखने के लिए आया दिखाई पड़ रहा था। त्रिभुवन को मुंजाल के शब्द स्मरण आ गये कि 'त्रिभुवन! मेरे रिक्त हृदय की आशा पूर्ण करोगे?' और वह सब कुछ भूल गया। मात्र अपने मामा को जिसे रानी ने बंदी बनाया था—देखता रह गया। दौड़कर त्रिभुवन मुंजाल के गले से लिपट गया। 'मामा!' उसके मुंह से निकला ही था कि उसकी आँखें डबडबा आईं और गला रुंध गया। मुंजाल के नेत्र वैसे ही स्थिर बने रहे।

उसे कमरे में ले जाकर बैठाते हुए त्रिभुवन बोला—मामा! आपने यह कष्ट क्यों किया?

मुंजाल धीमे, दुःखपूर्ण स्वर में कहने लगे—त्रिभुवन! मेरे आने का कारण तो तुम समझ ही गये होगे किन्तु मैं रानी की ओर से नहीं आया हूँ, बल्कि अपने मन से आया हूँ। तुम लोगों में से यदि किसी का ख्याल हो कि मैं पाटन की प्रतिज्ञा तुड़वाने आया हूँ तो वैसा नहीं है। मैं तुम लोगों में से दो एक नेताओं से बात करने के लिए आया हूँ। मुझे दो-एक बात कहनी हैं यदि उसपर ध्यान दोगे तो पाटन के गौरव में अधिक वृद्धि होगी।

'मेहताजी ! हम आपकी सब कुछ सुनने के लिए तैयार हैं। हमने यह कार्य कुछ खिलवाड़ में प्रारंभ नहीं किया है। जो कुछ कहना हो खुशी से कहिये।'

'ठीक है किंतु यहाँ नहीं। हम तीन-चार लोग बैठें। बहुत सी बातें इधर-उधर सब लोग करें यह ठीक नहीं जँचता।'

'आपका कथन बिलकुल ठीक है। खेंगार चाचा ! वस्तुपाल सेठ को बुलाना ठीक होगा। वे, आप, मैं और उदा। बस, ठीक है न ?'

'बिलकुल ठीक है।'

'चलिये हम लोग ऊपर चलें।'

सब लोग उठकर सीढ़ी की ओर बढ़े। मुंजाल की तीक्ष्ण दृष्टि प्रसन्न पर पड़ी। वह दौड़कर बगल के कमरे में घुस गई थी।

दृढ़ता से उस ओर देख कर मुंजाल ने कहा—कौन, प्रसन्न ?

'जी हाँ, प्रसन्न है; बुलाऊँ ? प्रसन्न ! ओ प्रसन्न ! मामा बुला रहे हैं।'

तुरंत हँसती लजाती हुई प्रसन्न नीची दृष्टि किये आई।

'मजे में है ? तू रानी से मिली थी, क्यों ? तू भी चल। तुम लोगों को कोई आपत्ति तो नहीं है ?'

'जी नहीं, चल प्रसन्न !'

थोड़े ही दिनों के अनुभव से वृद्ध भी प्रसन्न के पीछे पागल सा बन गया था।

पाँचों व्यक्ति ऊपर जाकर चुपचाप बैठ गये। थोड़ी देर में वस्तुपाल सेठ आये। उनकी घबड़ाहट का ठिकाना नहीं था जिससे वे मुंजाल की तबीयत का हाल पूछने लगे।

मंद, दयाजनक हास्य मुख पर लाकर मुंजाल ने कहा—वस्तु सेठ ! अब तबीयत किसकी ? गत पाँच दिन तो मेरे लिए पाँच युग के समान व्यतीत हुए। यह शांत पड़ जाय तो मैं आबूजी की शरण में जाने का

विचार कर रहा हूँ, संसार का बहुत कुछ आनंद-भोग कर चुका। तब खेंगार एवं त्रिभुवन को संबोधन कर बोले—और जो कुछ बाकी था उसे तुमलोगों ने पूरा कर दिया।

दोनों ने एक साथ पूछा—क्या ?

'मैं जानता था, मैं सदैव कहता था कि पाटन जीता जागता नगर है, इसे छेड़ने से किसी का भला नहीं होगा, इसे तुमने सिद्ध कर दिखाया।'

'तब क्या यह सब आपको पसंद है ?'

'पसंद ! जब मैंने सुना कि विदेशियों का आगमन सुन पाटन एक स्वर से उनका सामना करने के लिए तैयार हो गया है तब मैंने अपना जीवन सार्थक समझा। यह पुण्यभूमि है, यहाँ के वीर-पुत्र देव तुल्य हैं, इसका मुझे उसी समय विश्वास हुआ।'

यह कह कर गर्व से मुंजाल ने अपना सिर ऊँचा किया; उसके विषण्ण पर स्वरूपवान मुखपर पहले का गौरव दीप्त हो रहा है ऐसा सबको जान पड़ा।

'मामाजी ! क्या यह सब आपको अच्छा लग रहा है ? तब आप क्या कहने के लिए आये हैं ?'

'बेटा ! लोगों को जो कहना हो कहें किंतु मैं तो इतने वर्षों से पाटन को चक्रवर्ती बनाने का विचार करता रहा हूँ। यह सब मुझे अच्छा लगता है; तुम्हारी वीरता देख मेरी छाती हाथ-हाथ भर ऊँची उठती है और आया तो हूँ केवल इतना ही कहने के लिए कि अब जो कुछ करो खूब सोच-विचार कर करो। इस समय भूल करोगे तो तुम्हारे नगर का पतन होना निश्चित है।

'कैसे ?' खेंगार की उत्सुकता बढ़ी।

'मंडलेश्वर ! मेरी एक बात सुनो तब दूसरी कहूँ। रानी ने मुझे समझाने के हेतु यहाँ आने के लिए कहा किंतु मैंने अस्वीकार कर

दिया। तत्पश्चात् मेरे हृदय ने मुझे प्रेरित किया और मैं यहाँ आने के लिए तैयार हो गया। वह अपने लिए नहीं, रानी के लिए नहीं, बल्कि पाटन के लिए।'

'वह कैसे?'

'खेंगार सिंह जी! आपको इस क्षण का मूल्य मालूम है? नहीं! मैं जानता हूँ। आपको पता है कि पंद्रह वर्ष तक हाथ पर हाथ रखे मैं क्यों बैठा रहा और क्यों कुछ नहीं कर सका? केवल समय की इंतजारी! कितने ही वर्षों से लोग पाटन की महत्ता के लिए तरस रहे हैं किंतु कोई कुछ क्यों नहीं कर सका? कारण, समय नहीं आया था।'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।'

'त्रिभुवन! तुम्हें क्या पता कि पाटन विश्वका मुकुट कब बन सकता है? उसी समय जबकि जो उत्साह इस समय एक मात्र पाटन में है वह संपूर्ण गुजरात में फैल जाय। चुटकी बजाते भीमदेव ने पाटन वापस लिया, इसका कारण? संपूर्ण देश में एक प्रेरणा उत्पन्न हुई। हम सब लोगों को उठकर खड़ा होना चाहिये, हमारी ताम्रचूड़ की ध्वजा के नीचे समस्त प्रजा को आना चाहिये। यह उत्साह इतने वर्षों से नहीं आया पर अब आयेगा।

'कैसे?'

'तू अभी बालक है, पुराने विरोधों को तूने नहीं देखा। ये सब लोग जानते हैं। पाटन को राजस्व देने में कितना विरोध है? त्रिभुवन! बाहर मंडलेश्वरों में से तुम्हारे पिता, खेंगार सिंह जी, मदन-पाल एवं वल्लभसेन ये चार व्यक्ति पाटन आने का कष्ट भी करते थे, बाकी सब अपने मंडलों में विलास करते थे। हमारे बावन नगर गिने जाते हैं उनमें से केवल मोढेरा, कर्णावती और अधिक से अधिक सोमनाथ एवं पाटन हैं। बाकी सब कहाँ हैं? सभी ने पाटन का नेतृत्व स्वीकार किया है किंतु नामका।

'पिताजी भी यही कहते थे।'

'बेटा ! तुम्हारे पिता के उद्देश्य बड़े ऊँचे थे किंतु स्वभाव बड़ा जल्दबाज था। प्रत्येक मंडल को स्वतंत्र रखते हुए वे पाटन की सत्ता बढ़ाना चाहते थे. यह भला कैसे संभव है ? पश्चात् हमारे श्रावकों की अलग खिचड़ी पकती थी। विमलशाह द्वारा स्थापित सत्ता के पीछे वे पागल हो घूमते थे जिससे जहाँ-तहाँ वे वही चाहते थे।'

'तब आप क्या चाहते थे ?'

'मैं सभी में से रास्ता निकालने का प्रयत्न किया करता। जहाँ तक मेरा वश चला मैंने सब ठीक रखा: मेरा विचार भिन्न था। पाटन के नरपति का गौरव बढ़ा कर उसका डंका समस्त देश में बजाना चाहता था। जब तक एक हाथ में सत्ता न हो तब तक राज्य चलाना कठिन है।'

'यही तो मीनलदेवी का भी अभिप्राय है।'

'नहीं. यह तुम्हारी भूल है। वह सत्ता चाहती थी और वह भी किसी प्रकार से। उसका फल वह आज चख रही है। उसी सत्ता के लिए उसने चंद्रावती के सेना की सहायता ली—'

'और आनंदसूरि को रखा।' उदा ने वाक्य पूरा किया।

'यह यति बड़ा ही प्रबल है। इसके सिद्धांत भयंकर हैं। यह जैन धर्म के विजय पर पाटन का राज्य स्थापित करना चाहता है।'

'यह कैसे हो सकता है ?' वस्तुपाल ने अपनी राय दी क्योंकि वह वैष्णव-वणिकों का नेता होने से श्रावकों के विरुद्ध था।

'हो क्यों नहीं सकता ? इसमें मूर्खता नहीं है। धर्म की शक्ति पर राज्य की रचना करने से दस वर्ष में संपूर्ण भरत खंड पर विजय प्राप्त की जा सकती है किंतु अपनी स्थिति ऐसी नहीं है और न जैन-धर्म में इतना उत्साह ही है।'

'तब आप क्या करना चाहते थे ?'

'मेरा तो एक ही मार्ग था। दो-चार मंडलेश्वर यदि मिल जायँ तो समस्त गुजरात की सेना एकत्र कर मालवा पर आक्रमण किया जाय और जो इसमें साथ न दे उसे अपने अधीन किया जाय, यही मैं कहने के लिए यहाँ आया हूँ।'

'क्या ?'

'यही कि जिस समय को मैं, मंडलेश्वर एवं प्रत्येक पाटन निवासी आकांक्षा करते थे, वह आ गया है। पाटन त्रिभुवन की पूजा करता है; देहस्थली एवं वल्लभसेन इसके हैं। भीमदेव महाराज द्वारा पाटन लेने के पश्चात् कितने वर्षों बाद यह उत्साह आया है। सभी एक व्यक्ति के शब्द पर मरने-मारने के लिए तैयार हैं। यदि यह व्यक्ति समय का सदुपयोग करे तो पाटन का डंका दिग्दिगंत में बजने लग जाय।'

क्रमशः मुंजाल के शब्दों की शक्ति से उसके मुखपर तेज आने लगा, उसकी अपूर्व क्रांति अधिक तेजस्वी होने लगी।

'ठीक है, ठीक है; मेरे मनमें भी यही विचार उदय होते हैं।'

प्रभाव से काँपते हुए स्वर में मुंजाल ने कहा—विचार का काम नहीं है। प्रत्येक क्षण जो बीता जा रहा है वह बहुमूल्य है; एक मास इस प्रकार पड़े रहोगे तब सब उत्साह ठंडा पड़ जायगा। मैंने सुना कि पूरा पाटन राजगढ़ में उलट पड़ा था, उसे रोकना ठीक नहीं। पाटन को आगे बढ़ने दो; उस प्रभाव के महातरंगों को अवंती तक तो पहुँचाओ।

'हमें यही करना है पर किस प्रकार ?' खेंगार एवं त्रिभुवन के हृदय में तो वीरता एवं आकांक्षा की झंकार होने लगी।

'इसे तो तुम्हीं लोग सोचो। तुम सब लोग प्रतिज्ञा लेकर बैठे हो कि मीनलदेवी को यहाँ आने नहीं देना। यह प्रतिज्ञा यदि रखना है तो उसके दो ही मार्ग हैं।'

'क्या ?' त्रिभुवन ने पूछा।

'या तो इसी प्रकार पड़े रहो जिससे तुम्हारा उत्साह ठंडा पड़ जाय, या त्रिभुवन गद्दी पर बैठ कर वचन का पालन कराये।

जोर से सिर हिलाते हुए त्रिभुवन बोला—मैं ! मैं !! यह कभी भी नहीं कर सकता। दादाजी का वचन मैं भंग करूँ ?

'अच्छा, समझ लो कि तुम ऐसा नहीं करोगे तो रानी आज बिलकुल मित्र-विहीन है। कल उसके पचीस मित्र खड़े हो जाँयगे और गुजरात में आपस में ही मारकाट प्रारंभ हो जायगी जिससे दस-पाँच दिन में पाटन निवासी भी थक जायँगे। तुम्हारे सब उत्साह पर पानी फिर जायगा और पाटन की प्रभुता पाटन में ही रह जायगी।

विचार करते हुए खेंगार ने पूछा—तब किया क्या जाय ?

'तब एक ही बात संभव है, जयदेव कुमार को गद्दी पर बैठाओ।'

सहसा व्याकुल हो त्रिभुवन बोला—मामाजी, आपका मतलब समझ गया। आप हमारी प्रतिज्ञा धूल में मिलाना चाहते हैं ? मीनलचाची को हम यहाँ आने दें और चंद्रावती के सैनिकों को पाटन में घूमने दें ?

'नहीं, यह मैं कहाँ कह रहा हूँ ? चंद्रावती के सैनिकों को निकाल बाहर कीजिये, इतना ही नहीं चंद्रावती से राज कर लीजिये। उनके सैनिकों को अपने शत्रुओं से लड़ने के लिए भेजिये किंतु यह कब संभव हो सकता है ? पाटन में उसका राजा हो एवं साथ में त्रिभुवन हो; तभी।'

'यह कैसे संभव है ? मीनलचाची ने जयदेव कुमार को भेजना अस्वीकार कर दिया।'

'मीनलदेवी तो कल प्रातः सती होने के लिए तैयार हैं, उसके सती हो जाने के पश्चात् क्या तुम लोग तुरंत उसे राजा रूप में स्वीकार करोगे ? तब तो तुम्हारी प्रतिज्ञा में कोई बाधा नहीं रह जायगी न ?'

'जी नहीं।'

'किंतु इसका परिणाम पता है ? पश्चात् तुम्हारे राजा और पाटन का हृदय कभी भी एक न होगा। जयदेव के मन में मा की मृत्यु सदैव चुभती रहेगी और तुम्हारे कारण उसे मरना पड़ा इसे क्या वह कभी भूलेगा ? तब तुमलोग एकता कहाँ से लाओगे ? राज्य में वृद्धि कैसे करोगे ?'

सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

'मैं पुनः कहता हूँ कि पाटन के लिए मुझे प्रेम है। मैं इतना ही कहने आया हूँ कि जो उत्साह इस समय तुमलोगों में है उसका यदि उपयोग करना हो, यदि भीमदेव महाराज, कर्णदेव, अपने पिता एवं मेरे संकल्प को पूरा करना हो तो उसका एक ही रास्ता है, रानी एवं जयदेव कुमार को स्वीकार करना। जो शिक्षा उन्हें मिली है वह क्या कम है ?'

'किंतु चंद्रावती—'

'इतना स्वीकार करते हो तो उसका रास्ता बताना मेरा काम है। चंद्रावती की सेना ! रानी को चाहे तो कहला दो कि चंद्रावती की सेना वापस भेज दें, पुत्र के साथ अकेली पाटन में आवें तो फाटक खोलना।'

'पाटन की रानी के लिए यह दण्ड क्या कम है ?'

'किंतु हमारी प्रतिज्ञा ?—'

'मंडलेश्वर ! राजकार्य में मूलतत्व की रक्षा करनी चाहिये, न कि प्रतिज्ञा की। पाटन की स्वतंत्रता बनी रहे, चंद्रावती एवं रानी मूर्ख सिद्ध हों, तुम्हारा दुःख दूर हो, सत्ता में वृद्धि हो, यह अच्छा है या क्रोध में की गई प्रतिज्ञा का मूल्य ?'

'मामाजी ! मेरी प्रतिज्ञा ही सब कुछ है।'

अभिमान से सिर ऊँचा कर मुंजालने कहा—बेटा ! तुम्हारे पिताजी ने जैसी भूल की वैसी ही तुम मत करो। प्रतिज्ञा पहले, किंतु किसकी ?

अकेले तुम्हारी नहीं; तुम्हारे पाटन की। पाटन की टेक किसमें रहेगी? सोचो; क्षण-मात्र में जीवन भर की निर्धारित बात की सिद्धि में या पल में किया हुआ निश्चय संपूर्ण जीवन के आशय को नष्ट कर डाले उसमें? पहले पाटन, पीछे पाटन निवासी।

'मेहता जी! आपका कथन तो वास्तविक जान पड़ता है किंतु यह बात नगर के सभी सम्मानित व्यक्तियों के समक्ष रखनी चाहिये ताकि हम पर आँच न आने पावे।'

'मैं कब मना कर रहा हूँ? पाटन निवासियों की सद्बुद्धि में मुझे विश्वास है। राजनीति में क्रोध रखने वाले का क्या कभी भला हुआ है? पहले रानी को जीतो, चंद्रावती पर विजय प्राप्त करो, पश्चात् गुजरात तुम्हारा हो जायगा एवं संपूर्ण संसार तुम्हारे समक्ष झुकेगा।'

'किंतु सेठजी! रानी आकर सबको पीसने लगे तब? किसी के अपराध को वे भूलती नहीं।'

'यह मुझे पता है पर त्रिभुवन दंडनायक होगा, वल्लभ सेनापति बनेगा, तुम लोगों में से कोई मंत्री बनाया जायगा, तब वह कर ही क्या सकती हैं? त्रिभुवन! तुम बोलते क्यों नहीं? तुम्हारा क्या विचार है?'

'मैं क्या कहूँ? मेरी प्रतिज्ञा दृढ़ है, आपकी बात भी सत्य है। उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं दिखलाई पड़ती। पाटन को जो करना हो करे।'

'नहीं, इस प्रकार क्यों अलग हुए जा रहे हो?'

'मैं अपने कारण क्यों पाटन के लाभ में विघ्न उपस्थित करूँ? उदा! जाओ, डुग्गी पिटवा दो; किसी के भी मन में असंतोष नहीं रह जाना चाहिये।'

'ठीक है चलिये हम लोग नीचे चलकर बैठें, सबसे बातचीत करने के पश्चात् आपको बुलवा लेंगे।'

'अच्छी बात है मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है।'

खेंगार, उदा और वस्तुपाल नीचे चले गये।

४३

मामा भानजा ने एक दूसरे को देखा। त्रिभुवन के नेत्रों में कठोरता आने लगी। दाँत पीसते हुए बोला—मामाजी, आज मुझे एक अनुभव हुआ।

'क्या ?'

'लोग क्यों आपसे डरते हैं।'

स्नेहपूर्वक मुंजाल ने पूछा—वह क्या ?

'आपकी दृष्टि त्रिकालज्ञ की दृष्टि है। आपकी जिह्वा पर गुरु बृहस्पति विराजते हैं।'

'बेटा ! तुम उदास-से क्यों हो ?'

'उँह ! पाटन के सामने मेरी बिसात ही क्या है ? मामाजी ! आपने पाटन को जीवन-दान तो दिया पर भानजा को मारकर।'

चौंक कर मुंजाल ने पूछा—क्यों ?

'मीनल चाची के राजगढ़ में पैर रखते ही मैं यह शरीर छोड़ दूँगा। मेरा यह निश्चय तो आप जानते ही हैं ?'

कुछ अवसन्न हो मुंजाल ने कहा—क्या कहते हो ? यह भी कोई निश्चय में निश्चय है।

'आप चाहे जो कहें। जिसे जो करना हो करे। मैं यहाँ से सोमनाथ जाऊँगा, तत्पश्चात् जहाँ बुद्धि मार्ग-प्रदर्शन करे। मैं अपने पिता का पुत्र हूँ, मुझे अपना वचन सबसे अधिक प्रिय है।'

त्रिभुवन के कंधे पर स्नेह से हाथ रखते हुए मुंजाल बोले—अपना

मतलब तो बताओ क्या है ? यह पागलपन से भरा हुआ विचार भी कोई करता है ? मुझे स्पष्ट बता तो सही।

'स्पष्ट क्या कहूँ ? आप तो केवल मंत्री मात्र हैं। बहन के, बहनोई के प्रति भला आपके मनमें कुछ संवेदना हो सकती है ? उनकी हृदय-विदारक अकाल मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए आपका मन भला क्यों व्यग्र होने लगा ? पर मैं तो वैसा नहीं बन सकता। इस रानी के कपट से मेरे माँ-बाप दोनों मरे; अतः इस जीवन में उसे मैं क्षमा कैसे करूँ ? आपकी बात मैंने मान ली, इसे आप लोगों को सुनाइयेगा; लोगों के स्वीकार कर लेने पर जहाँ मुझे जाना होगा चला जाऊँगा। पाटन के लिए अधिक से अधिक अपने जीवन एवं आशाओं का उत्सर्ग कर दूँगा और क्या चाहिये ?'

'त्रिभुवन, इतने बुद्धिमान होते हुए तुम क्रोध को इतना महत्व दोगे ? तुम इस समय पाटन-निवासियों के नायक हो; उनकी कीर्ति के लिए क्या तुम अपने क्रोध का शमन नहीं कर सकते ?'

'जी नहीं, मैं पाटन-निवासी नहीं हूँ अपने पिता का पुत्र हूँ। पाटन जिस दिन उनका पक्ष परित्याग करेगा उसी दिन उससे मेरा कुछ सरोकार न रहेगा।'

'त्रिभुवन ! जरा विचार तो करो कि इस उम्र में दंडनायक बनकर तुम क्या नहीं कर सकोगे ?'

तनकर बैठते हुए त्रिभुवन बोला—अधिक बात करने से क्या लाभ ? आपका कहना ठीक, मेरा गलत, और कुछ ?

'नहीं, यदि तुम्हारी सम्मति न हो तो कुछ नहीं करना है।'

'पाटन की सम्मति हो तो मुझे क्या ? मैं अपना उत्तरदाता हूँ। मुझे अपने माता-पिता सर्वप्रथम हैं।'

'बेटा ! कुछ तो विचार करो। तुम समझते हो कि हंसा मुझे प्यारी नहीं थी ? उसकी मृत्यु के लिए मुझे शोक नहीं है ? पर त्रिभुवन !

बीती बात को स्मरण करने से कुछ लाभ नहीं। अपनी बहन को जीवन भर बंदीगृह में रहने देने का कारण क्या था ?—पाटन ही।'

प्रसन्न, जो अब तक एक शब्द बोले बिना सब सुनती रही, बोली—जी नहीं, मेहता जी ! इसका कारण बूआजी थीं।

'बेटी ! तू क्या जाने ? हंसा यदि मंडलेश्वर के साथ रही होती तो आज इतना जो गुजरात है वह भी न दिखाई देता।'

'वह कैसे ?'

'तुम लोगों ने तो हंसा को देखा नहीं है पर मैंने तो लड़कपन से उसे पाला। हम दोनों भाई-बहन की सुंदर जोड़ी थी।'

इतना कहते-कहते गला भर आया जिसे खखार कर दूर करते हुए बोले—वह लता के समान मुझसे लिपट जाती, क्षण भर में रसिक, पराधीनता की मूर्ति जान पड़ती, तथापि मनुष्य के हृदय में शौर्य एवं उत्साह की ज्वाला पल मात्र में उत्पन्न कर देती। उसका सुंदर मुख देख लोग हत-ज्ञान हो जाते। उसका नाम सुनकर दुःख भूल जाते। जब वह छोटी थी तब पाटन निवासी उसका पद पूजते थे; मंदिर से लौटते समय उसके हाथ से प्रसाद लेने के लिए, उसकी मधुर जिह्वा से दो बात सुनने के लिए छटपटा उठते थे।

मुंजाल के हृदय की व्याकुलता उनके मुख पर स्पष्ट झलक रही थी; उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। त्रिभुवन और प्रसन्न के नेत्रों से भी आँसू बहने लगे। 'क्या तुम्हें पता है उसकी ख्याति सुन देश-देश के महारथी आते, उसे देख उसके स्पर्श से पावन और प्रोत्साहित होकर वापस चले जाते। हंसा स्त्री नहीं थी, सरस्वती का अवतार थी। वह मंडलेश्वर के पास यदि रही होती तो मंडलेश्वर की सत्ता बढ़ जाती; पाटन में विरोध उत्पन्न हो जाता एवं पाटन-निवासी आपस में ही लड़ मरते।

इतना कह मुंजाल ने आँखें पोंछी।

कठोरता से त्रिभुवन ने पूछा—मामाजी ! ऐसी बहन को मारने में भी आपको कुछ दुःख न हुआ ?

'बेटा ! युवक समझते हैं कि वृद्ध मूर्ख हैं । तुम्हें हृदय है, क्या मुझे नहीं है ? महीनों मैं भी रोया हूं पर जीवन के उद्देश्य के सामने सब कुछ विस्मृत कर देना भी मैंने सीखा है । हंसा से मैं प्रायः मिलता था; उसने मुझे क्षमा कर दिया था । वह समझदार थी ।'

'किंतु बूआजी ने उसे किस प्रकार भेजा, यह आप जानते हैं ? अब उन्हें कैसे क्षमा किया जाय ?' प्रसन्न से न रहा गया ।

'रानी सत्ता के मद में अंधी हो गई थी ! बेटा ! जरा विचार तो कर कि पाटन का प्रभुत्व होते हुए मुंजाल मंत्री को बंदी बनाने का क्या कोई साहस कर सकता है ? मैं गर्व नहीं करता, केवल यदि विनाश ही करना हो तो एक पल में, एक शब्द मात्र से सबका आज सत्यानाश कर डालूं । सोमनाथ से लेकर रेवाकांठा तक एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं है जो मेरे कहने पर मारने-मरने के लिए तैयार न हो जाय । जब मुझे बंदी बनाया गया उसी समय मैं समझ गया कि रानी पाटन को धूल में मिलाने के लिए उद्यत हो गई है । यह तो जब मैंने तुम्हारा पराक्रम सुना तब मेरे निराशापूर्ण हृदय में आशा का संचार हुआ और पाटन के लिए मैं यहां आया । त्रिभुवन ! इसी से मैं कहता हूं जिस बात के लिए बहन, बहनोई एवं अपनी प्रतिष्ठा सब कुछ खो दिया वह आज सफलता से मिल रही है; तब तुम पीछे क्यों हट रहे हो ?

'मेरी प्रतिज्ञा—'

'ठीक है किंतु क्या तुम्हें अपने कुल की प्रतिज्ञा का पता है ? पाटन के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाले अपने दादा क्षेमराज के आत्मत्याग का तुम्हें ज्ञान है ? अधेड़ उम्र में, सारे में श्रेष्ठ ऐसी पाटन की गद्दी को त्याग वानप्रस्थ लिया, यह केवल पाटन के लिए ही । ज्येष्ठ पुत्र होते हुए, देश के लिए, कनिष्ठ को गद्दी देना, यह तो उनके

जैसे भीष्मपितामह ही कर सकते हैं। तुम्हारे कुल का तो भाग्य में पाटन का यज्ञकुंड ही भरना लिखा है। तुम्हारे दादाजी गये, पिताजी गये, माँ गई, मामा भी यह जा रहा है। सभी ने पाटन के लिए आत्मोत्सर्ग ही किया। तुम बत्तीस लक्षण वाले हो, मेरे पुत्र के समान हो, दूर रहते हुए भी अपने आँख की पुतली जैसा तुम्हें समझता रहा हूँ। क्या तुम्हें पता है कि महीने में एक बार तुम्हें न देख लेता तो मैं कितना छटपटा उठता था?'

त्रिभुवन एवं प्रसन्न दोनों यह सुनकर चौंक उठे।

'तुम समझते थे कि तुम दोनों प्रति मास मिलते हो और कोई जानता नहीं, क्यों? मुंजाल मंत्री को इतना अंधा समझ रखा है? प्रतिमास पंचमी-षष्ठी को तुम मिलते और तुम्हें देखने के लिए छिपकर मैं खड़ा रहता। वही मुंजाल आज तुमसे कह रहा है कि अपना हठ छोड़ दो। कुल-धर्म के आगे प्रतिज्ञा का भला क्या मूल्य है?'

'किंतु मेहता जी! आपने कैसे समझ लिया कि बूआजी अब सीधे मार्ग से चलेंगी। उनका स्वभाव तो कुत्ते की दुम के समान है।' प्रसन्न ने कठोर सत्य कहा।

'नहीं, प्रसन्न! यह भी प्रभु की कृपा है; कल मैं मिला था। रानी का भी पुनरुद्धार हो गया है। तुम्हें क्या पता? कल संध्या समय आनंदसूरि वल्लभसेन के पास से भागकर कुछ सेना के साथ चला आया और रानी से मिला।'

'ऐं!'

'हाँ, उसने पाटन पर घेरा डालने के लिए भी कहा। तुम्हें पता है कि रानी ने क्या कहा? रानी ने साफ इनकार करते हुए कह दिया कि पाटन मेरा कहना मानेगा तो ठीक अन्यथा मैं सती हो जाऊँगी।'

'यह बुद्धि बहुत देर में आई।'

हाँ, पर यदि न आई होती तो इस समय पाटन की सीमा पर पाटन निवासियों का रक्त बहता होता। जो होता है अच्छे के लिए ही।'

'अच्छी बात है भले ही मेरा भी भोग पाटन ले। पाटन-निवासियों को स्वीकार हो तो मैं कुछ नहीं बोलूँगा, बस ? मैं अपना—'

'अपना-पराया कुछ नहीं। पाटन के सच्चे राजा अब तुम्हीं हो। तुम्हें अब उसका प्रभुत्व बढ़ाना

'यह बात भिन्न है, आप सब लोग तो हैं ही। देश के लाभ के लिए अपना हठ छोड़ दूँगा और किसी के लिए मैं बाध्य नहीं हूँ।'

'यह पीछे देखूँगा, बेटा ! बत्तीस लक्षण युक्त पुरुष और पद्मिनियों की आहुति देने पर ही बड़े-बड़े राज्यों की महत्ता सिद्ध होती है।'

'ठीक है, मैं आहुति के लिए तैयार हूँ।' त्रिभुवन ने सिर झुका लिया।

कुछ देर पश्चात् उदा बुलाने के लिए आया। मुंजाल एवं त्रिभुवन नीचे गये। थोड़ी बहुत माथापच्ची के पश्चात् सब लोग एक निश्चय पर आये। सर्वप्रथम चंद्रावती की सेना को वापस भेज देना, तत्पश्चात् कल संध्या समय रानी, कुमार एवं यहाँ के सामंतगण ही केवल पाटन में प्रवेश करें; मुंजाल जाकर कल रानी के साथ आवें एवं रानी से सबको यथायोग्य पद पर नियुक्ति का आदेश ले आवें। बहुत वादविवाद के पश्चात् यह भी निश्चय हुआ कि त्रिभुवनपाल दंडनायक, पाटन का दुर्गपाल वल्लभसेन, सेनाधिपति वस्तुपाल, उदा और शांतुसेठ मंत्री बनें।

संध्या समय मुंजाल मेहता यह सब सूचनायें लेकर रानी के पास वापस गये।

उदा मारवाड़ी—अब उदा मेहता—दुपट्टा की तह जोर-जोर से फटकने लगा। केवल स्वार्थवश अलभ्य फल प्राप्त हुआ था।

४४

जिस समय मुंजाल पहुँचे उस समय रानी के हृदय में गहरी उथल-पुथल मची हुई थी। जीवनभर अपनाये हुए गर्व का त्याग उसे सरल प्रतीत न हुआ। यद्यपि निर्मलता का साम्राज्य बना हुआ था तथापि इस प्रकार नीची नाक कर पाटन जाना उसके लिए अत्यधिक कष्टकर था। संध्या होते-होते मुंजाल ने रानी के पास जाकर पाटन का समाचार कह सुनाया।

रानी ने नाक-भौं चढ़ाकर सब सुनकर पूछा—और कुछ ?

'और कुछ नहीं, कल प्रातः जवाब माँगा गया है, यदि आपको जाना हो तो कल संध्या समय फाटक खुलेगा उसके पूर्व यह सेना यहाँ से भेज देनी होगी।'

यह कह प्रणाम कर वह वहाँ से चला गया। उसका व्यवहार, स्वस्थ, विनयी पर शांत और आवेशरहित था। मीनल को खल रहा था किंतु करे क्या ? पूर्ववत् हृदय होते ही वह पुनः मंत्री के तेज से दबी जा रही थी। इस प्रकार दबना सुखप्रद था पर फिर भी अभिमान को गहरी ठेस लगती थी। उसने विजयपाल को बुला भेजा। विजयपाल आतुरता से आया एवं पाटन से आया हुआ संदेश सुनकर प्रसन्न हुआ।

'विजयपालजी! चंद्रावती ने मुझपर अत्यधिक अनुग्रह किया है जिसे मैं कभी भूल नहीं सकती। आपको सभी कुछ ज्ञात है, इस सहायता के लिए जो कुछ दिया जाय वह थोड़ा है।'

'देवीजी ! आप पर महावीर प्रभुजी की कृपा है। यह सब झगड़ा निपट गया; यह अच्छा हुआ। नहीं तो इसका परिणाम अच्छा न होता।'

'आपके आनंदसूरिजी का तो मंतव्य कुछ दूसरा ही है।'

'सच है किंतु अब उनका पक्ष निर्बल हो जायगा। मैंने आज ही सुना है कि चंद्रावती का संघ इसे पदच्युत कर देना चाहता है; उसके लिए अब वहाँ स्थान नहीं रहा।

'है वह बड़ा चतुर, जरा उसे बुलाइये। यदि स्वीकार करे तो उसे मोंढेरा या कर्णावती भेज दूँ, वहाँ वह मानपूर्वक रह सकेगा।'

'माँ जी! शायद ही वह स्वीकार करे। देखिये! समरसेन, जरा यतिजी को तो बुला लाओ। मुझे तो ऐसा लगता है जैसे इसका दिमाग फिर गया है। यह कुछ नायकों को उभाड़ रहा था कि चलो हम पाटन पर आक्रमण करें।'

रानी हँसी। पाटन के प्रभाव का सच्चा स्वाद वह चख चुकी थी।

कुछ देर बाद आनंदसूरि आया। उसके चेहरे से तिरस्कार झलक रहा था। रानी की ओर इस प्रकार वह देखता रहा मानो सृष्टि का सम्राट् हो।

'यतिजी! मैं तो पाटन जा रही हूँ और विजयपालजी अपनी सेना के साथ वापस जा रहे हैं। आपका अब क्या करने का विचार है?'

'मीनलदेवी, महावीर की कृपा से आपको कालांत तक अपना नाम अमर करने का एक अवसर मिला, इसकी बधाई! किंतु अंत में आप भी ऐसी निकलीं, इसका खेद है।'

यति की धुन देख रानी को ऐसे चतुर व्यक्ति की ऐसी बेढंगी एकाग्रता देख दया आई। उसने हँस कर कहा—'यह बात करने के लिए मैंने नहीं बुलाया है; यदि आपको शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करना हो तो मोंढेरा में मेरा उपासरा है; वहाँ आपके लिए प्रबंध कर दे सकती हूँ। वहाँ आपको पूर्ण आदर प्राप्त होगा।'

'मुझे आदर? रानी! आनंदसूरि आदर का भूखा नहीं है।'

'तब क्या चाहिये?'

'अर्हतों का वचन ही मेरे लिए यथेष्ठ है। आपके क्षणभंगुर मानापमान का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं।'

'मैंने सुना है कि चंद्रावती के संघ ने आपको निकाल दिया है।'

ठहाका मार कर हँसते हुए यति बोला—बिचारे क्षुल्लक जन्तु! रानी, अपने जीवन के उद्देश्य के सामने मैं किसी को कुछ नहीं समझता। उसी के लिए आप सबकी खुशामद करने के लिए निकला था। मैंने देख लिया कि सभी तुच्छ हैं; महावीर का मंत्र मूर्तिमान करने का किसी में साहस नहीं है। मैं ऐसे जन्तुओं के साथ भला रह ही कैसे सकता हूँ?

रानी—तब क्या करेंगे?

'आपके इन छोटे-छोटे खेलों से क्या मेरा विश्वास उठ गया। पुनः समय आने तक प्रतीक्षा करूँगा। अपने सिद्धांतों में मुझे श्रद्धा है। एक दिन, धर्म की विजय करके आते हुए, चक्रवर्ती के साथ मुझे देखियेगा।'

'यतिजी! मीनलदेवी सची सलाह दे रही हैं। पाटन की रानी होने के पश्चात् वे जो कुछ करें उसमें सम्मिलित होने में ही राज्य का गौरव बढ़ेगा।'

अवज्ञापूर्वक यति बोला—विजयपाल! तुम तो बालक हो, तुम क्या समझोगे? जाओ राज्य का गौरव बढ़ाओ। भ्रम के अंधकार में भ्रमण करो। अंत में मेरे ही सिद्धांत से सफलता मिलेगी अन्यथा विधर्मी यवन आगे बढ़ते चले जायँगे। भारतवर्ष की पतितपावनी भूमि उनके पद के नीचे पद-दलित होती जा रही है। पानीपत, सिंधुदेश की भूमि चली गई। अब तुम्हारी जाने वाली है। धर्मविहीन साम्राज्य की स्थापना करो। तुम्हारे मुंजालों का परिश्रम अंत में धूल में मिल जायगा; तुम्हारी संतानें गज़नी के बाजार में बेची जायँगी। तुम सब मुझे मूर्ख समझ रहे हो; एक दिन धूल में मिल जाने पर मेरी बुद्धिमत्ता

की प्रशंसा करोगे। मुझे तुम्हारे आदर अथवा राज्य की परवाह नहीं है। अंधे एवं बुद्धिहीनों के साथ संबंध आज समाप्त हो गया।

यह कह कर मानो भविष्यवेत्ता की दिव्य आँखें भविष्य का दुःख देख रही हों इस प्रकार वह खड़ा रहा। रानी एवं विजयपाल काँप उठे। दूसरे ही क्षण आनंदसूरि रानी पर एक तिरस्कारपूर्ण दृष्टि डाल वहाँ से चला गया।

बहुत देर तक रानी और विजयपाल घबड़ाहट से एक दूसरे की ओर देखते रहे। उन्हें ऐसा जान पड़ रहा था मानो वह भविष्यवाणी उसी समय फलीभूत होने जा रही हो। कुछ देरमें दोनों स्वस्थ हुए।

'विजयपालजी! इस विचारे की बुद्धि बिलकुल ही खराब हो गई है। आपको और कुछ कहना है? मेरा एक विचार है, आपको कुछ आपत्ति न हो तो कहूँ।'

'क्या?'

'पाटन की सत्ता हाथ में आने पर आपको पाटन बुलाकर सामंत बनाना चाहती हूँ।'

'माँजी! क्षमा कीजिये; पाटन को मैं भी सिरमौर मानता हूँ पर चंद्रावती के बाद। सामंत बनने के लिए मैं तैयार हूँ किंतु आ न सकूँगा।'

'अच्छी बात है, विचार करूँगी।' कहकर रानी ने बात वहीं समाप्त कर दी।

विजयपाल ने वहाँ से निकलते ही सेना को कूच करने का आदेश दे दिया। सेना में अत्यधिक असंतोष फैल गया। कितनों ही ने रानी की नमकहरामी पर थूका। विवश हो जैन-मत के विजय का स्वप्न त्याग सेना वहाँ से रवाना हो गई। विजयपाल केवल रानी के साथ रह गया।

संध्या समय विजयपाल द्वारा लाये हुए हाथी पर सवार हो रानी

पाटन की ओर चलीं। साथमें मुरारपाल, विश्वपाल, विजयपाल, विनयचंद्र आदि घोड़े पर सवार पंद्रह व्यक्ति थे। पाटन को देखते ही रानी आशाओं के निष्फल हो जाने से क्षुब्ध हो उठी। उसकी आँखें डबडबा आईं। तुरंत मुंजाल याद आ गया; उसका संपूर्ण जीवन, उसके किये हुए प्रयत्न और आत्मत्याग स्मरण हो आये। उसकी आँख के समक्ष भग्नाशा, स्त्री एवं बहनोई को मारने वाला, बहन को दुःख देनेवाला केवल उसके तथा पाटन की सत्ता के लिए संन्यासी बना हुआ मंत्री आकर खड़ा हो गया। इस समय यतिके मनमें उठने वाले विचारों व दुःख से क्या उसकी तुलना की जा सकती है? रानी को हंसा स्मरण आई, उसकी रम्यमूर्ति आँख के सामने नाचने लगी; अपने लिए, पाटन की सत्ता के लिए उसे दिया हुआ दुःख, उसकी अकाल मृत्यु स्मरण आ गई। रानी की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। उसने बीती बात को भुलाने का प्रयत्न किया। पुनः उसे गुजरात की महारानी बनने का अवसर मिला था। संपूर्ण नगर के क्रुद्ध होने पर उसे रिझाने का अहर्निश प्रयत्न करने का एवं मुंजाल जैसे राजनीतिज्ञ की सलाह लिये बिना एक कदम भी आगे न रखने का उसने निश्चय किया। उसे त्रिभुवनपाल याद आया; मुंजाल जैसी मुखाकृति स्मरण हो आई; विचित्र रूप से हंसा के पुत्र के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया। ये सब अब उससे मिलेंगे, उसके बन जायँगे। नहीं, वह सबकी हो जायगी। पाटन ने उसे दास बना लिया था। मुंजाल, त्रिभुवन ये सब पाटन के देव हैं उनके पुजारी-रूप में ही उसे लोग स्वीकार कर रहे हैं।

मोंढेरी दरवाजा पर खेंगार मंडलेश्वर, शांतु सेठ, उदा एवं वस्तुपाल थोड़े सवारों के साथ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके व्यवहार में प्रेम के साथ कृपा भी दिखाई पड़ रही थी। रानी ने किसी प्रकार क्रोध को दबाया। पति का शोक भुलाकर नगर के बाहर जानेवाली रानी का कौन आदर करे? उनके स्वागत में भावावेश नहीं

था। रानी को वहाँ न तो त्रिभुवन ही दीख पड़ा और न मुंजाल ही जिससे उसका हृदय खिन्न हो गया फिर भी अधर पर अधर बैठाकर उसने स्वस्थता रखी।

नगर में श्मशान-सी शून्यता छाई हुई थी; न तो कोई सड़क पर दिखाई दे रहा था और न खिड़की बरामदे में। संध्या हो गई थी। अंधकार फैलता जा रहा था जिससे ऐसा जान पड़ा मानो वह चोरी से प्रविष्ट हो रही है।

'यह क्या उसका वही राजगढ़ है? रानी को उसमें बहुत परिवर्तन लगा। यह राजगढ़ पलक मारते उसके अधिकार से निकल त्रिभुवनपाल का हो गया था। त्रिभुवन यदि गद्दी पर बैठ गया होता तब?' रानी के शरीर में कँपकपी दौड़ गई। हाथी फाटक पार कर भीतर पहुँचा। उसका कल्याण नायक मिला, उसे ऐसा लगा मानो वह तिरस्कार से उसकी ओर देख रहा हो। शांतु सेठ की हँसी में भी पहले जैसा भाव न जान पड़ा। रानी शीघ्रता से ऊपर चली गई। लीलाधर वैद्य मिले; वह चुपचाप भर्त्सना कर रहे हों ऐसा उसे लगा। वाचस्पति खड़ाऊँ पहने हुए, भस्म लगाये पूजा करके आ रहे थे; उसने नमस्कार किया। रानी को उसके खड़ाऊँ की खटखट ध्वनि में भी उसके मतका विजयनाद सुन पड़ा। राजकुटुम्ब की सभी स्त्रियाँ आकर उससे मिलीं; अपनी चाटुकारियोंका आदर देख उसके मनमें तिरस्कार उत्पन्न हुआ। रानी जल्दी-जल्दी अपने कमरे में घुस गई। थोड़ी देर बाद सब लोग चले गये, धीरे-धीरे रात बीतने लगी।

एक दासी के समान भय से रानी ने पुकारा—बाहर कोई है?

'जी हाँ, माँजी! हाजिर हूँ।' कहता हुआ समर उपस्थित हुआ।

'समर! पता लगाओ कि त्रिभुवनपाल, मुंजाल मेहता, प्रसन्न कहाँ हैं? कोई दिखाई क्यों नहीं पड़ता।'

'पता लगाकर आता हूँ।' कह कर समर चला गया।

इतने में जयदेव कुमार थका हुआ आया। रानी ने उसके सोने का प्रबंध कर दिया। नौकर और दासीगण मौन हो इधर-उधर काम करते हुए अपने मौन से मानो रानी को डरा रहे थे। क्रमशः रानी का क्षोभ, एवं व्यग्रता बढ़ती गई। इस प्रकार एक घंटा व्यतीत हो गया पर समर नहीं लौटा।

थोड़ा-सा खाकर रानी ने थकी होने से सोने का विचार किया। समर को गये अधिक देर हो गई थी; वह सोचने लगी—समर क्यों नहीं आया ? वह भी कृतघ्नी हो गया क्या ?

इतने में समर ने पुकार कर कहा—माँजी ! क्षमा कीजियेगा, मैं मुंजाल मेहता के यहाँ गया था। उन्होंने यहाँ आने के लिए असमर्थता प्रकट करते हुए संदेश कहलाया है—

'क्या ?'

'कि मुंजाल अंतिम परमार्थ साधन कर चुका और कल प्रातः स्वार्थ साधन के लिए जायगा।'

रानी ने घबड़ाकर पूछा—कहाँ ?

'आबूजी जानेकी तैयारी कर रहे हैं।'

'हैं कहाँ ?'

'यहाँ नहीं हैं, वे तो नगर सेठ के महल्ले में हैं।'

'सचमुच !' रानी का गला अवरुद्ध हो आया। 'कितने वर्षों बाद मुंजाल आज राजगढ़ छोड़ अपने घर गया है !'

'कैसे पता चला कि आबूजी जा रहे हैं ?'

'उनके आदमियों से पता चला, अब मुंजाल मेहता नहीं मानेंगे।'

'नहीं मानेंगे ? मुंजाल बिना मैं क्या करूँगी ?' उछलते हृदय की उर्मियों को प्रकट करते हुए रानी जोर से बोल उठी। वह भूल गई कि सामने नौकर खड़ा है। समर यह उद्गार सुनकर चकित

हुआ। 'समर! वफादार है, मेरे साथ चलेगा?' सहसा निश्चय कर रानी ने पूछा।

'कहाँ?'

'जहाँ मैं ले जाऊँ वहाँ।' भृकुटी चढ़ाकर रानी ने कहा।

'सेवक तैयार है।'

रानी तुरंत भीतर गई। उसने साड़ी बदली। शालसे शरीर ढक लिया और बाहर आकर कहा—चल मेरे साथ!

नमकहलाल नौकर चुपचाप पीछे-पीछे चला। रानी पीछे के दरवाजे से राजगढ़ से चुपचाप निकल कर चल पड़ी।

४५

त्रिभुवन का संदेश पाकर वल्लभसेन पाटन आ पहुँचा। त्रिभुवन ने उससे सभी बातें कह सुनाईं किंतु वल्लभ के गले वे न उतरीं तथापि देवप्रसाद के पुत्रकी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए एवं उसके हित-साधन के लिए वह तैयार हो गया। उसने पाटन में रहना स्वीकार कर देवप्रसाद के महल में जाकर ठहर गया।

जबसे रानी को वापस आने देने का निर्णय हुआ तभी से त्रिभुवन का चित्त विभ्रांत हो गया हो, ऐसा जान पड़ता था। प्रातः सबसे मिलने एवं राज्य की व्यवस्था करने में वह व्यस्त रहा जिससे प्रसन्न उससे न मिल सकी। पर उसे संदेह हो गया कि त्रिभुवन कोई योजना गढ़ रहा है। दोपहर को वल्लभ से बात करने में लगे रहने से समय नहीं मिला। अतः दोपहर के पश्चात् वह मिल सकी।

'त्रिभुवन! अब क्या करना है?'

'किसका क्या....?'

'अपना ? कल से तो मिलना भी कठिन हो जायगा।'

उत्तर में विचित्र रीतिसे त्रिभुवन ने प्रसन्न की ओर देखते हुए कहा—मीनल चाची को अभी आने तो दो।

'इसमें भी अब संदेह है ? त्रिभुवन ! इस प्रकार बात क्यों उड़ा रहे हो ?'

'नहीं, नहीं; पीछे बात करेंगे।' कहकर स्नेह बाहर निकला पड़ता हो इस प्रकार सहसा उसके कंधे पर त्रिभुवन ने हाथ रखा। प्रसन्न ने उसका हाथ लेकर दबाया और छोड़ दिया। त्रिभुवन की आँखों में प्रेमज्योति चमक उठी पर दूसरे ही क्षण विलीन हो गई।

'बूआजी आती होंगी, उनसे मिलने नहीं जाना है क्या ?'

'मुझे क्यों जाना है ? मेरा काम समाप्त हो गया; अच्छा पीछे बात करूँगा।' बात समाप्त करना चाहता हो इस प्रकार त्रिभुवन बोला।

'तुम जा कहाँ रहे हो ?'

'अपने यहाँ, वल्लभ भी वहीं है। अच्छा, अब चलता हूँ।'

उसके जाते ही प्रसन्न के मनमें कुछ शंका उत्पन्न हुई। उसकी बातचीत, कंधेपर उसने हाथ रखा तब दिखाई पड़ने वाले भिन्न प्रकार के स्नेह में, उसे कुछ अपरिचित रहस्य दिखाई दिया। उसे एक दिन पहले की बात स्मरण हो आई; त्रिभुवन ने मुंजाल का कहना पूर्णरूप से स्वीकार नहीं किया था। क्या पाटन छोड़, कहीं अन्य स्थान पर रहने का विचार तो नहीं कर रहा है ? उसने तुरंत नौकर को पुकारा—बलदेव, देख मंडलेश्वर महाराज हैं ? कह कि खड़े रहें, मैं आ रही हूँ।

यह कह कर दौड़ती हुई वह नीचे उतरी और चौक में पहुँच चिल्लाकर पूछा—बलदेव ! महाराज कहाँ हैं ?

'महाराज उस ओर खड़े हैं।'

प्रसन्न जल्दी-जल्दी उस ओर गई। उसे देखते ही त्रिभुवन ने क्रुद्ध होकर पूछा—अब कौन-सा काम आ पड़ा ?

दौड़ती हुई जाकर प्रसन्न घोड़े को पकड़ कर खड़ी हो गई और बोली—त्रिभुवन ! मैं भी तुम्हारे यहाँ चलूँगी ।

'अभी यह नहीं हो सकता । मुझे इस समय जाने दो, काम है ।'

'मुझे ले चलो, ऐसा कौन-सा काम है ? त्रिभुवन ! मुझसे कुछ छिपा रहे हो ।'

घोड़े पर बैठे-बैठे त्रिभुवन ने प्रसन्न की ओर दृष्टिपात किया । उसका सौंदर्य, उससे प्रार्थना करती हुई आँखें, उसकी वफादारी, देखकर वह पिघला और बोला—प्रसन्न ! मैं अपना वचन पालन करूँगा । मीनलदेवी के पाटन में पदार्पण करने के पूर्व मैं यहाँ से चला जाना चाहता हूँ ।'

'कहाँ जाओगे ?'

'चाहे जहाँ ! देहस्थली जाने से उपद्रव होगा । पाटन की सत्ता भले ही बढ़े; मैं अपना हठ रखूँगा और स्वयं ही निर्वासन लूँगा ।'

'तब मुझे भी अपने साथ ले चलो, मैं यहाँ रहकर क्या करूँगी ?' कहते-कहते प्रसन्न की आँखें डबडबा आईं, उसे पाटन छोड़ना अच्छा नहीं लग रहा था ।

क्षण-भर विचार कर लगाम पकड़े हुए प्रसन्न के हाथ को दबाकर त्रिभुवन बोला—'प्रसन्न ! कष्ट बहुत उठाना पड़ेगा, समझी ?'

'कुछ चिंता नहीं ।'

त्रिभुवन ने हाथ बढ़ाया और प्रसन्न तुरंत घोड़े पर चढ़ कर पीछे बैठ गई । त्रिभुवन ने घोड़ा दौड़ा दिया ।

इतने दिनों के अनुभव से राजगढ़ निवासी त्रिभुवन एवं प्रसन्न को स्वामी मानने लग गये थे जिससे वे जो कुछ करते उसे चुपचाप मानसहित देखा करते; पर दूर खिड़की से वाचस्पति ने दोनों को जाते हुए देखा और ऐसे समय इतनी उतावली में त्रिभुवन एवं प्रसन्न को जाते हुए देख उसे विस्मय हुआ । वह स्वयं स्नानविधि कर सायं-

संध्या की तैयारी कर रहा था जिससे उसे सूझ नहीं पड़ा कि वह क्या करे, अतः नौकर भेज उदा को उसने बुलवाया और उससे सब कहा। उदा मेहता तैयार होकर मोंढेरी दरवाजा रानी को लेने के लिए जाने की तैयारी कर रहा था। यह समाचार सुनते ही वह स्तब्ध हो गया।

'पंडितजी ! बात बिगड़ गई; त्रिभुवनपाल भाग जाना चाहते हैं।'

'ऐं ! तब ? यह कैसे हो सकता है ?'

'महाराज ! त्रिभुवनपाल मानेंगे नहीं, वह अपने बापका सच्चा बेटा है।'

'अरे कुछ करो तो सही, जाकर मुंजाल मेहता से तो कहो।'

'हाँ, हाँ ! यह ठीक है।' कहकर उदा चल पड़ा। वह सदैव एक प्रसंग का दुहरा उपयोग करता था। अब तक मुंजाल के साथ उसका परिचय अत्यल्प था और उसके प्रभाव से वह दबा जाता था। उदा समझता था कि प्रत्येक प्रसंग उसके लाभार्थ ही आते हैं; अतः इसमें भी उसे लाभ ही दीख पड़ा।

पहले वह खेंगार के पास जाकर बोला—महाराज ! मुझे एक अत्यावश्यक काम आ पड़ा; आप चलें मैं अभी आता हूँ।

यह कह वह हाँफता हुआ नगर-सेठ के महाल में मुंजाल को सूचित करने गया।

उधर त्रिभुवन और प्रसन्न अपने महल में पहुँचे।

'प्रसन्न ! बोलो; तुम अभी मेरे साथ चलोगी या पीछे आकर ले जाऊँ ? जल्दी बोलो, संध्या हो रही है।'

'मैं भी साथ ही चलूँगी। यह तो बताओ कि कहाँ जानेका विचार कर रहे हो ?'

'यहाँ से पहले तो प्रभास जाऊँगा; तुम्हें पुरुष-वेश अच्छा लगेगा ? मार्ग में सुविधा होगी।'

ऐसे तूफानी प्रसंग प्रसन्न को बहुत रुचते थे जिससे वह बोली—

हाँ, हाँ ! तुम घोड़ा तैयार कराओ और मुझे वस्त्र बता दो कहाँ हैं, पहनती हूँ ।

प्रसन्न को वस्त्र देकर त्रिभुवन दूसरा घोड़ा तैयार करने का आदेश देने के लिए चला गया ।

प्रसन्न का मन प्रफुल्लित हो रहा था यद्यपि बीच-बीच में टीस-सी उठती । इसे दबाकर वह कपड़ा बदलने लगी । पुरुष वेश धारण करने में वह बड़ी आनंदित हो रही थी । अपने सुडौल, रमणीय अंगों को चूड़ीदार पायजामा एवं बंडी जैसे अपरिचित वस्त्रों से ढँकते समय उसके मन में कुछ विचार आये । वस्त्र पहनने के पश्चात् शीशे के सामने जाकर वह खड़ी हो गई और अपना प्रतिबिंब देख क्षणभर के लिए पागल हो गई । त्रिभुवन के साथ जाने की आशाने उसके मनको प्रफुल्लित बना दिया था । नीचे झुक-झुक कर उसने दर्पण में देखा; बंडी का बंद पुरुष को शोभा दे वैसा बाँधने का उसने प्रयत्न किया । अपना जूड़ा ऊँचा कर साफा बाँधने का उसने विचार किया । वह स्वयं अपने को संबोधन कर उठी—वाहरे मेरे प्रसन्नपाल ! उसका हृदय उमंगित हो रहा था । नीचे झुककर सामने दर्पण में दिखाई पड़ने वाले 'प्रसन्नपाल' के मुख से मुख मिला कर उसने चुंबन किया ।

पीछे से किसीने दरवाजा खोला । प्रसन्न ने समझा कि त्रिभुवन आया होगा जिससे उसने पूछा—क्यों सब ठीक-ठाक कर आये । किंतु इस वाक्य के पूरा उच्चारण होने के पूर्व ही आरसी में एक दूसरे व्यक्ति का मुख देख वह हक्का-बक्का हो गई ।

द्वार पर मुंजाल मेहता कुछ उलझन में पड़े हुए खड़े थे । उदा की उक्ति काम कर गयी । प्रसन्न उन्हें देख लजा गई; उसका मुख लज्जा से लाल हो गया; उसका सिर न ऊपर उठ रहा था न उसे यही सूझ पड़ रहा था कि क्या करे । घबड़ाती हुई, लज्जावनत पृथ्वी से स्थान माँगती हुई वह जहाँ की तहाँ खड़ी रही ।

मुंजाल ने उसे स्वस्थ हो जाने के पश्चात् पूछा—प्रसन्न ! त्रिभुवन कहाँ है ? पाटन छोड़ने की तैयारी हो रही है क्या ?

'जी हाँ !' खोखली आवाज में प्रसन्न ने कहा।

अत्यंत दयापूर्ण स्वर में मुंजाल ने कहा—प्रसन्न ! तू भी पागल हो गई ? त्रिभुवन तो हठ की धुन में ऐसी मूर्खता करने पर तुला हुआ है, तू भी उसमें सम्मिलित होने जा रही है क्या ? वह है कहाँ ?

'घोड़ा लाने गये हैं !'

धीमे स्वर में शीघ्रता से मुंजाल कहने लगे—प्रसन्न ! अभी समय है। यह जाकर करेगा क्या ? देश-विदेश की धूल फाँकेगा ? पाटन में सत्ता है, कीर्ति है, विजय है। इन सबको छोड़ एक हठ वश अपना जीवन पानी के मूल्य वेच रहा है ?

बड़ी कठिनता से लज्जा दूर करते हुए प्रसन्न बोली—मेहताजी, मैं क्या करूँ ? मैं तो जो वह कहें करने के लिए तैयार हूँ।

'तू क्या करेगी ? प्रसन्न ! तू ही कर सकती है, तुझसे ही वह मानेगा। एक बार प्रयत्न तो कर; मुझे देखते ही भड़क उठेगा।'

'शायद ही मानें।'

'प्रसन्न ! मैं तुझे पहचानता हूँ, एक बार प्रयास तो कर। इस अमरावती का दंडनायक बनने, सोलंकियों की गद्दी का संरक्षक बनकर रहने, ताम्रचूड़ की विजयपताका अवंती में उड़ाने के लिए तो देव भी ऊपर से उतर आवें। प्रसन्न ! तुम दोनों संसार में अमर होने के लिए आये हो और इस प्रकार वह सब कुछ खो बैठेगा। प्रसन्न ! तेरे जैसी पद्मिनी क्या नहीं कर सकती ?'

मंत्री के शब्दों में जादू था। उसकी धीमी पर आवेशपूर्ण ध्वनि, चमकती आँखें एवं जोरदार भाषा ने प्रसन्न के हृदय के विचारों को सजीव कर दिया। जाने के पक्ष में तो वह पहले से ही न थी।

'मेहताजी ! आप यहीं रहें। मैं भरसक कोशिश करूँगी; किंतु यदि न मानें तब ?'

'प्रसन्न, ब्रह्माण्ड चाहे टूट पड़े किंतु इस समय त्रिभुवन यहाँ से जाने न पाये। मैं अपने उपस्थिति में अपने एवं बहनोई के कुल का नाश न होने दूँगा। तुम्हारा कहना नहीं मानेगा तो मैं आऊँगा, बल प्रयोग करूँगा। तुम क्या नहीं जानती कि मेरा वचन टालना कितना कठिन काम है ? मैं पास ही के कमरे में हूँ, यहाँ रहने से तुम शरमाओगी। समझा ! समझा ! तेरी जिह्वा पर सरस्वती आयेंगी। तेरी जैसी पुत्रवधू पाटन छोड़ कर चली जाय यह भला कैसे सहन होगा ?'

प्रसन्न ने सिर नीचा कर लिया। मुंजाल मुस्कुराया। उसकी मुस्कुराहट में दुःख का पुट था। पर उसमें दुर्जय माधुर्य भी था। प्रसन्न को स्वीकार करना पड़ा। मुंजाल बगल के कमरे में चले गये।

प्रसन्न सोचने लगी। मुंजाल के शब्दों ने पुनः पुराने विचार उत्पन्न कर दिये थे—

'पाटन छोड़ देशाटन स्वीकार करने का कारण ?'

कुछ देर पश्चात् त्रिभुवन ने आकर पूछा—तैयार हो गई ? घोड़ा आ गया।

किस प्रकार बात प्रारंभ करे ? समझ न पड़ने से घबड़ाते हुए प्रसन्न बोली–त्रिभुवन ! मेरे परमेश्वर !! मेरी एक बात मानोगे ?

'क्या है ? इस समय बात करने का समय है ? रानी अभी नगर में प्रवेश करेंगी।'

'त्रिभुवन ! भले ही प्रवेश करें। मेरी सुनो; यहां से यदि हम भाग न चलें तो क्या नहीं हो सकता ? प्यारे ! यहां हमारे लिए क्या कमी है ?'

उसे मुंजाल की अटलता में इतना विश्वास था कि उसने निश्चय समझ लिया कि वे त्रिभुवन को यहां अवश्य ही रोक लेंगे; अतः यथासंभव प्रयत्न करने के लिए वह तत्पर हो गई थी। त्रिभुवन की आंखें

लाल हो उठीं। चेहरा क्रोधसे तमतमा गया। आवेश में पैर पटक कर बोला, 'प्रसन्न! इसीलिए क्या तुम यहाँ आई हो? मेरा वचन-भंग कराना चाहती हो? मैं दृढ़ हूँ तुम्हें आना है या नहीं? बोलो, नहीं तो तुम यहीं रहो, मैं जाता हूँ।'

'मुझे यहीं रहना है और तुम्हें भी। हम दोनों को एक साथ जीवन व्यतीत करना है। मुझे दंडनायक की पत्नी बनना है। तुम यहीं रहो, बाहर जाने का विचार त्याग दो त्रिभुवन!' कहकर प्रसन्न ने त्रिभुवन का हाथ पकड़ लिया।

'प्रसन्न! तुम्हें हो क्या गया है? चलती हो या नहीं?'

वह प्रसन्न को दरवाजे की ओर खींचने लगा। उसका खून खौल उठा था। उसमें बस इतना ही ज्ञान था कि प्रति क्षण मीनलदेवी नगर के द्वार के पास पहुँचती जा रही है। प्रसन्न ने अपने दोनों हाथों से त्रिभुवन का हाथ पकड़ लिया।

'त्रिभुवन! कहाँ ले चल रहे हो? यहीं रहो, मेरे प्रभु! तुम क्यों ऐसे निष्ठुर-ऐसे क्रूर हो गये हो? अपने बाप-दादा की इज्जत के लिए, अपने पाटन के लिए और मेरे लिए जरा विचार तो करो। तुम्हारे बिना हम सब—रो-रो कर प्राण दे देंगे। हमें छोड़ तुम कहाँ जा रहे हो?'

भयंकर रूप से हँस कर त्रिभुवन बोला—अर्थात् तुझे नहीं आना है; क्यों? निकृष्ट! पदलोलुप!! छोड़ मेरा हाथ—

'नहीं त्रिभुवन, ऐसा न कहो! मेरी बात तो सुनो—'

'छोड़' कहकर क्रोधावेश में त्रिभुवन ने अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया। पर प्रसन्न और भी चिपट गई। त्रिभुवन ने दाँत पीसते हुए झटक कर अपना हाथ छुड़ा लिया। प्रसन्न का हाथ झकझोरने से छूट गया। वह धड़ाम से पृथ्वी पर गिरी और 'आह त्रिभुवन!' कहकर मूर्छित हो गई।

त्रिभुवन बिना आगे-पीछे देखे दो-चार कदम आगे बढ़ा होगा कि पीछे से एक पहचानी हुई, सत्तापूर्ण आवाज सुन पड़ी—त्रिभुवन !

यह आवाज सुनते ही त्रिभुवन स्तब्ध हो खड़ा हो गया, और मुंजाल को देख वह चकित हो गया। मेहता के नेत्रों से असह्य तेज की किरणें निकल रही थीं। मुंजाल ने प्रसन्न की ओर संकेत करते हुए कहा—जिस लड़की ने तुम्हारी कई बार रक्षा की, उसे अच्छा पुरस्कार तुमने दिया।

गिरते समय सिर एक पटरे से टकरा जाने से प्रसन्न मूर्छित हो गई थी। उसके सिर से रुधिर की धारा निकल कर जमीन को लाल कर रही थी।

त्रिभुवन ने प्रसन्न को मूर्छित, लोहूलुहान देखा। जिस हाथ से उसे ढकेला था उसकी ओर दृष्टिपात किया। निश्चय से कठोर पड़े मुख पर कुछ नम्रता आई। क्षणभर के लिए वह अनिश्चित-सा खड़ा रहा।

मुंजाल चुपचाप नेत्रों से ही त्रिभुवन को धिक्कार रहा था।

त्रिभुवन तुरंत लौटा। द्वार को प्रणाम कर रहा हो इस प्रकार दृष्टि डाल वह प्रसन्न की ओर दौड़ा और उसके रुधिर प्लावित सिर को उठाते हुए बोला—मेरी प्रसन्न !

'तुम इसे सँभालो, मैं राजवैद्य वैद्य को भेजता हूँ। सिर से रुधिर का बहना रोकने का प्रयत्न करो। चोली का बंद खोल दो; नहीं तो दम घुट जायगा।'

* * *

बहुत देर बाद वैद्यों के अनेक उपचारों से, खून का बहना बंद हुआ। उसे चेतना हुई। उसने पुकारा—'त्रिभुवन !'

'हाँ !' कहते हुए त्रिभुवन दौड़ा !

'पाटन में—'

'हाँ, हाँ, पाटन में ही हूँ। तुम चुपचाप शांतिपूर्वक सो रहो। जहाँ तुम वहाँ मैं !'

४६

तीन-चार घंटे बाद जब मुंजाल वहां से चला तो उसका मन निश्चिंत-सा लग रहा था। पाटन का राजतंत्र ज्यों-त्यों कर ठिकाने लाने का उसने यथाशक्ति प्रयास किया था। रानी को वापस लौटा लाया था। लोगों को समझाया था, उनका दंडनायक चला जा रहा था उसे भी रोक लिया था। अपने कुटुंब का भी श्रेय-साधन किया। अपना जीवन सार्थक लग रहा था। अब संसार की झंझटों से छुटकारा लेने में उसे कोई कठिनता न जान पड़ी। वह अपने घर धीरे-धीरे घूमता-फिरता हुआ पहुँचा। ऐसा जान पड़ रहा था मानो वह पाटन के लड़कों को अंतिम बार निरख रहा हो।

उसने अपने जीवन के गत वर्षों की ओर दृष्टि डाली। उसमें निराशा एवं दुःख के प्रसंग भरे पड़े थे। फिर भी जीवन अधिकांश रूप में सफलीभूत जान पड़ा। उसीके यत्न से पाटन आज टिका हुआ था। भविष्य की प्रजा जब पूर्वजों का स्मरण करेगी तब उसका नाम सबसे पहले लिया जायगा। सरल एवं सादे जीवन की पुरानी भावना वाले लोग अपने-अपने घर में सो गये थे। संपूर्ण नगर में शून्यता जान पड़ रही थी। उसे लगा मानो वे सब उसके बालक हों और वह उनका पिता ! उसने अपने मनमें उनको आशीर्वाद दिया।

घर पहुँचा तो नौकर ने सूचना दी—महाराज ! कोई एक स्त्री आकर बैठी है।

मुंजाल जरा हँसा। प्रायः नगर का कोई निराधार, दुःख से पीड़ित

व्यक्ति उसकी सलाह लेने के लिए अथवा अपने झगड़े का निपटारा कराने के लिए या किसी प्रकार की सहायता की आशा से उसके पास आया करता था । किंतु अब क्या ? उसके पास न तो सत्ता थी और न धन ही । अपनी अधिकांश सम्पत्ति तो वह धर्मादा में दे चुका था ।

'कहाँ हैं ?'

'ऊपर हैं, साथ में एक आदमी भी है ।'

'अच्छा ।' कहकर वह ऊपर गये तो वहाँ एक मनुष्य को सिकुड़कर बैठा हुआ देख पूछा—कौन ?

'मैं हूँ, बापू ।'

'कौन समर ! तुम यहाँ कहाँ से ? किसे लाये हो ?'

नीचे झुककर धीरे से समर ने कहा—माँजी आई हैं ।

यह सुनकर मुंजाल को अत्यधिक आश्चर्य हुआ और उसके मुँह से सहसा निकल पड़ा—एँ !

वह इस प्रकार पीछे हट गया मानो सर्प ने डस लिया हो ।

समर ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा । मुंजाल ने ओसारा के भीतर जाकर पूछा—मीनलदेवी ! यह क्या ? मेरे यहाँ !

'क्यों, न आऊँ ? महारानी थीं तब एक बार आई थी, कितने वर्ष हुए ? युग का युग बीत गया ।'

'किंतु किसी को मालूम हो गया तो वह क्या कहेगा ?'

'जिसे जो कहना हो कहे । कोई किसी का मुँह बंद कर सकता है ? मनुष्य के जीवन में कभी एक पल ऐसा भी आता है जब उसे किसी की भी परवाह नहीं रहती, अपने बाप की भी !'

'यह साधारण लोगों के लिए उपयुक्त हो सकता है; ज्यों-ज्यों हम उच्च श्रेणी में पहुँचते जाते हैं त्यों-त्यों इसका अधिक ध्यान रखना पड़ता है । इस समय यहाँ आने का कारण ?'

'तुम इतने वर्षों बाद राजगढ़ छोड़ यहाँ क्यों आये ?'

मुंजाल की भृकुटि चढ़ गई ! वह गद्दी पर बैठ कर रानी की ओर कठोरता से देखने लगा। वह यथाशक्ति सभ्यता से बोला—मीनलदेवी ! बीती हुई बातों को फिर उधेड़ने से लाभ ? अब मुझसे और राज्य की राजनीति से क्या संबंध ? सब समाप्त हो गया। अब मैं आबूजी जा रहा हूँ। संसार की विडंबनाओं में बहुत दिनों तक लिपटा रहा।

रानी को कठोर शब्दों की परवाह न थी। उसे ऐसा जान पड़ रहा था कि संपूर्ण शरीर में ज्वाला लग गई हो, किंतु वह शब्दों द्वारा ही मार्ग दिखाते हुए शांत की जा सकती थी अतः वह बोली—मुंजाल ! यह सब तुम किसे समझा रहे हो ? मैं तुम्हें पहचानती नहीं क्या ? संसार की विडंबनाओं से भागना चाहते हो ? तुम्हारे में अभी भी पाँच संसार जीतने का सामर्थ्य है, अभी भी संपूर्ण भरत-खंड का तंत्र चलाने की शक्ति है। क्या यह मैं नहीं जानती ?

'रानी ! इतने दिनों में मुझमें बहुत परिवर्तन हो गया है। जब तुमने मुझे बंदी बनाया उस समय मेरे क्रोध का ठिकाना न था। तुमने बुलाया उस समय मेरा मन निराशा से पूर्ण था किंतु पाटन का साहस सुन मेरी निराशा जाती रही। उत्साह आया, देशके लिए जीवन भर जिस लक्ष्य को मैं अपना मंत्र बनाये था उसकी सिद्धि के लिए मैंने समाधान कराया, फिर भी मन तटस्थ रहा। अभी मैं चालीस का भी नहीं हुआ किंतु बुड्ढा मालूम पड़ रहा हूँ.....। तुम्हारा दंडनायक यहाँ से भागा जा रहा था उसे रोका पर जीवन में अब कोई रस न रहा।'

'क्यों, त्रिभुवन कहाँ जा रहा था ?'

'अपनी टेक के लिए पाटन त्याग निर्वासन ले रहा था।'

'वह रुक गया—तुम उसे रोक सके ?'

'नहीं, तुम्हारी भतीजी ने ! बिचारी का माथा फूट गया। अब ठीक है। लीलाधर वैद्य वहीं है....मैं क्या कह रहा था ?....हाँ, इतना सब

किया पर मन को शांति नहीं मिली। विराग हो गया है। अब पाटन में पुनः शांति आ गई। मैं निश्चित हो गया।'

'तुमने अपना इतिहास कहा; मेरा भी सुनोगे? बिखराट में दुःख के बादल टूट पड़े; उस समय तक मैं पापी थी; सत्ता के घमंड में मैं अधिकाधिक पतित होती जा रही थी। एक रात्रि में स्वप्न देखा और मैं बच गई; मेरा पुनरुद्धार हुआ।'

बात कहाँ जा रही थी इसे मुंजाल कुछ-कुछ समझ गया किंतु वह कर ही क्या सकता था? चुपचाप बैठा सुनता रहा।

'किसने उद्धार किया, कुछ पता है? जब चंद्रपुर में प्रसन्न जितनी बड़ी थी तब जिसने मेरा हरण किया था उसी ने—'

रानी की आँखें भयंकर रूप से चमक उठीं; मुंजाल ने सिर नीचा कर लिया।

'सिर नीचा करने की आवश्यकता नहीं है। तुम महान् आत्मा हो, विरागी हो गये हो। मैं तो क्षुद्र हूँ, वासना की दासी हूँ; हम स्त्रियों को वैराग्य जल्दी प्राप्त नहीं होता। उस रात के बाद जैसी मैं पहले थी वैसी ही हो गई हूँ।'

'मीनलदेवी! अब इस उम्र में ऐसे समय इस प्रकार की बातें करना युक्तिसंगत नहीं है। जो हो गया वह हो गया, उसे अब भूल जाओ।'

'मैं भी यही कह रही हूँ; गत दस वर्षों से मैं जैसी होती जा रही थी उन वर्षों को जाने दो; इसके पूर्व जैसे थे वैसे ही हम लोग फिर हो जायँ।'

मुंजाल ने सिर हिलाया।

'तुम भले ही सिर हिलाओ। उस दिन बिखराट में जब तुमने मुझे ढकेल दिया तब मुझे विश्वास हो गया कि तुम जैसे थे वैसे ही हो; अभिमानवश भिन्न बनने का प्रयत्न कर रहे हो किंतु तुम्हारा हृदय तो ज्यों का त्यों है।'

'मीनलदेवी, ऐसी बातें मुझे जरा भी पसंद नहीं है।'

'न करूँ ! अच्छा एक वचन दो !'

'क्या ?'

'पाटन छोड़ने का विचार त्याग दो।'

'यह कैसे हो सकता है ? मीनलदेवी ! मैं अब वह नहीं रहा। तुम्हारा अपमान मैं भूलने का प्रयत्न करता हूँ पर तुमने बहुत गहरी चोट की है। अपनी बहन हंसा की मृत्यु का झटका भी भयंकर है। मुझमें अब पहले जैसी शक्ति न रही। यहाँ रह कर मैं कर ही क्या सकूँगा ?'

'क्या करोगे ! मीनलदेवी के राज्य में तुम क्या करोगे ? तुम मालिक बनकर रहोगे।'

'नहीं, नहीं, अब नहीं हो सकता। संपूर्ण संसार के समक्ष मैं बंदी बनाया गया, अब किस मुँह से मैं यहाँ रह सकूँगा ? मैं उलहना नहीं दे रहा हूँ, कटाक्ष भी नहीं करता किंतु वह प्रसंग मेरे चित्त से नहीं उतरता।'

'उसको भुलाने और प्रायश्चित करने के लिए ही तो मैं आई हूँ।'

जरा हँसते हुए मुंजाल ने पूछा—किस प्रकार ?

'किस प्रकार ? चाहो तो तुम्हारे चरणों पर सिर रख कर। मुंजाल ! न जाने क्यों मुझे बराबर उस दिन से अपने विवाह का प्रसंग स्मरण आया करता है। उस दिन का किया हुआ निश्चय क्या याद है ?'

'हाँ और वह निश्चय तुम इस समय तोड़ रही हो। हमने भाई-बहन के निर्मल स्नेह की भाँति व्यवहार करने की प्रतिज्ञा ली थी; किसी भी प्रकार के स्खलन से गुजरात के गौरव को दूषित न करने का, राजकार्य के प्रसंग बिना न मिलने का, राजनीति की नीरस बातचीत के सिवा दूसरी बातचीत भी न करने आदि की प्रतिज्ञायें ली थीं। चौदह-पंद्रह वर्ष के बाद आज प्रतिज्ञा भंग कर तुम बिना राजकार्य के

मिलने के लिए आई हो। तुम तो देवी हो, पतित-पावनी हो; क्या तुमको यह शोभा देता है?'

'मुंजाल! तुम अपना भी वचन कहाँ रख रहे हो? मुझे इस दशा में छोड़ कर जो चला जाय वह क्या मित्र कहा जा सकता है? तुमने अपना वचन छोड़ दिया तो मैंने भी छोड़ा। मुझे रानी नहीं बनना है। मैं पाटन में रहूँगी तो तुम्हारे साथ; नहीं तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।'

दुःखित स्वर में मुंजाल ने कहा—मीनलदेवी! तुम मुझे नाहक कष्ट दे रही हो।

जरा हँस कर मीनल बोली—नहीं हक से। तुम मुझे पाटन ले आये। एक बार नहीं बल्कि दो बार। अब तुम्हें पाटन से बाहर कैसे जाने दे सकती हूँ।'

रानी सहसा उठी और मुंजाल के पास पहुँच गई।

मुंजाल ने पीछे हटते हुए कहा—नहीं, नहीं।

'मुंजाल! व्यर्थ की बातों से क्या लाभ? मैं लड़ूँगी भी तो तुम्हारे साथ ही: अतः तुम्हारे बिना क्षण भर भी चल सकता है? चाहे तुम कुछ कहो मैं सुनने वाली नहीं। तुम मीनल को कैसे भूल सकते हो?'

यह कह कर मीनल ने मुंजाल का हाथ पकड़ लिया। विचार के उलझन में मुंजाल ने उसका हाथ मस्तक से लगा लिया।

'मुंजाल! कुछ विचार मत करो; बिना 'हाँ' के छुटकारा नहीं है। समझ लो कि मैं चंद्रपुर की वही छोटी बाला हूँ। समझ लो कि उस समय जैसी मैं थी वैसी ही तुम्हारे संसर्ग की प्यासी हूँ: तुमसे प्रार्थना करती हूँ: मत जाओ। हम बिलग कैसे रह सकते हैं? यहां तुम्हारे बिना मेरे विचारों का समर्थन करने वाला कौन है? पाटन को संसार का सिरमौर बनाने के लिए मेरी सहायता करने में तुम्हें छोड़ कौन

समर्थ है ? मुंजाल ! अपनी विशाल, निष्कलंक बुद्धि के तेज में पूर्ववत् मुझे स्नान करने दो; मैं इतना ही चाहती हूँ, बस।'

'रानी—'

'नहीं, मीनल—'

'अच्छा, मीनलदेवी ! मैं विचार करूँगा। हो सका तो स्वीकार भी करूँगा। अब कृपाकर जाओ, बहुत हुआ।'

'नहीं वचन दो, अभी वापस चलो, राजगढ़ सूना है। जब तक तुम नहीं चलोगे तब तक मैं यहाँ से टलने वाली नहीं।'

मुंजाल ने रानी की ओर देखा। उसके प्रेमविह्वल मुख पर अद्भुत छाया पड़ रही थी। उसका हाथ जो मुंजाल के हाथ में था, थर-थर काँप रहा था।

'मीनलदेवी ! अच्छा, मैं इसे स्वीकार करता हूँ।'

आतुरता से रानी ने कहा—वचन दो।

'हाँ वचन देता हूँ।'

'मेरे मुंजाल !' कह कर रानी मुंजाल के गले से लिपट गई। डूबता हुआ मनुष्य आशा छोड़ जिस प्रकार प्रवाह की शरण ले ले उसी प्रकार मुंजाल ने भी शरण लिया।

दोनों कुछ क्षण उसी मुग्धावस्था में पड़े रहे।

मुंजाल को ज्ञान हुआ। रानी को अलग करते हुए कहा—मीनलदेवी ! यह नहीं हो सकता। मैं यहाँ रहूँगा तो उस दिन की प्रतिज्ञा का पालन करना होगा। जिस निर्मल जीवन ने लोगों के मुँह को बंद कर, उनके शंकाशील हृदय में श्रद्धा का प्रादुर्भाव किया था, वही जीवन पुनः स्वीकार करना पड़ेगा।

'हाँ, हाँ, सब स्वीकार है, सब स्वीकार है। बड़प्पन का दंड यथाशक्ति ग्रहण करूँगी, किंतु मेरी आँख के सामने रहो।'

———

उपसंहार

उदा मेहता मन ही मन प्रफुल्लित होते हुए प्रातःकाल उठे। एक प्रकार से उसका 'निर्मल स्वार्थ' पूरा हो गया था। नगर में उत्पात खड़ा हो, त्रिभुवनपाल युद्ध के लिए तत्पर हों और समरांगण में निर्णय हो इसकी अपेक्षा वही राज्य ज्यों का त्यों बना रहे और वह स्वयं मंत्री बनाया जाय, यह व्यवस्था उसे अधिक उत्तम जान पड़ी। उसने सोचा कि अब मेरा ही पौ-बारह रहेगा। मुंजाल मंत्री तो आबूजी जा रहे हैं। दूसरे किसी को तो मैं कुछ समझता ही नहीं।

इतने में डूंगर नायक आ पहुँचा। जागीरदारी का नया पद मिलने की आशा से उसमें कुछ सभ्यता आने लग गई थी। उसने कहा—मेहताजी! कुछ नई बात सुनी क्या?

'कौन-सी बात?'

'प्रसन्न बहन मरणासन्न हैं, एवं मुंजाल मंत्री ने आबूजी जाने का विचार छोड़ दिया।'

दोनों बुरी खबर सुनकर उदास होते हुए उदा ने पूछा—क्या कहा? बिलकुल गलत, मैंने स्वयं मुंजाल मेहता से सुना है। मुंजाल के पाटन में रहने पर मुझे कौन पूछेगा?

'अच्छी बात है, राजगढ़ जाइये तो आपही पता चल जायगा।'

यह कहकर डूंगर नायक चल दिया।

*　　*　　*

उदा के मन में छटपटी पड़ गई। मुंजाल कैसे रह गया? वह तुरंत कपड़ा पहन कर राजगढ़ गया। वहाँ प्रवेश करते ही उसने एक बहुत बड़ा परिवर्तन देखा। सभी कारबारी पूर्ववत् नियमित एवं विनयशील हो गये थे; सैनिक धीरे-धीरे रीत्यानुसार घूम रहे थे; नौकर

पहले ही की तरह अपने-अपने काम पर जाते थे। परिवर्तन बड़ा ही मार्मिक जान पड़ा।

सदैव की भाँति उदाने पूछा—कल्याण नायक! क्या हाल-चाल है?

नायक का व्यवहार नम्र हो गया था एवं अपरिचित जान पड़ती हुई सभ्यता से धीरे से कहा—सब ठीक है।

कह कर वह अपने काम पर चला गया।

जल्दी-जल्दी वह लीलाधर वैद्य के पास पहुँचा किंतु प्रसन्न की शुश्रूषा में होने से वे नहीं मिले। डूंगर की एक बात तो सच निकली।

वह रानी के पास जा रहा था कि समर ने रोककर कहा—माँजी, मुंजाल मेहता के साथ परामर्श कर रही हैं।

उदा तो बिलकुल ही ठंडा पड़ गया। अब उसे पता चला कि राजगढ़ में क्यों ऐसी नियमितता आ गई। स्वामी-हीन राज्य का सच्चा स्वामी आ गया। उसने एक निःश्वास ली। उसे मुंजाल की धाक पहले जैसी ही लगी। वह भूल गया कि मैं भी मंत्री हूँ। वह कदम बढ़ा कर मुंजाल के निवास-स्थल की ओर गया, वहाँ पाटन के कुछ नेतागण बैठे हुए मुंजाल की प्रतीक्षा कर रहे थे।

कुछ देर पश्चात् मुंजाल आया। सबसे मिला एवं सबसे कुछ न कुछ उसने बातचीत की। उसने बताया कि रानी की आज्ञा न होने से अब वह आबूजी न जायगा। सभी लोग प्रसन्न चित्त वहाँ से चले गये।

सबके चले जाने के पश्चात् मुंजाल ने उदा से कहा—उदा मेहता! आप जरा ठहरियेगा, मुझे कुछ बातें करनी हैं।

उदा ठहर गया। उसपर मुंजाल का जादू चलने लग गया था।

मुंजाल ने आकर कहा—उदा मेहता! अब राज्याभिषेक का प्रबंध

आपको अपने हाथ में लेना है। विश्वपाल मालवराज से मिलने के लिए जा रहे हैं एवं चार दिन में यदि वे गुजरात से निकल नहीं जाते तो वल्लभसेन की अधीनता में सेना भेजने की धमकी दे दी गई है किंतु इसके पूर्व सर्व प्रथम जयदेव महाराज को सिंहासन पर बैठना चाहिये। यह कार्य ऐसी शान से होना चाहिये जैसा कि गुजरात में पहले कभी न हुआ हो। मेरा विचार सभी मंडलेश्वरों को बुलाने का है। अब रानी को अपना प्रभाव दिखाना है।

जो कुछ काम उदा को सौंपा गया उसे उसने स्वीकार किया। मुंजाल की उपस्थिति में उसकी कुछ बिसात न थी।

मुंजाल के तत्वावधान में, उदा के परिश्रम एवं पाटन के उत्साह-वश कर्णदेव की मृत्यु के सवा मास पूर्ण होते ही जयदेव पराक्रमी गुर्जरेशों के सिंहासन पर बैठा। पाटन हर्षित हुआ: संपूर्ण गुजरात में डंका बज उठा। दूर देश के द्वेषी राजाओं के हृदय में [illegible] एकता देख एक नया भय छा गया।

* * *

मालवराज इस एकता से घबड़ा कर पीछे हट गये। मंडलेश्वरों में खेंगार एवं वल्लभसेन को छोड़ और लोग भी समय देख पाटन का हिसाब चुकाने के लिए तत्पर हो गये। मुंजाल की राजनीति से उनकी स्वतंत्रता को ठेस न लगी जिससे संतुष्ट हो वे पाटन के साथ रह युद्ध करने के लिए तत्पर हो गये।

* * *

मंडलेश्वरों का नायक त्रिभुवनपाल इस समय सब कुछ भुलाकर एक अत्यावश्यक कार्य में लगा था। वह था प्रसन्नमुखी को मनाना। कुछ दिनों बाद एक दूसरे बड़े उत्सव के पीछे पाटन निवासी पागल हो गये। जयदेव कुमार के राज्याभिषेकोत्सव को भी मात करने वाले ऐश्वर्य, शोभा और ठाटबाट के साथ पाटन निवासियों के दंड-

नायक का विवाह प्रसन्नमुखी के साथ संपन्न हुआ। कठोर हृदयी मुंजाल के नेत्रों से आँसू टपकने लगे। रानी की समझ में न आया कि वह हँसे या रोये। जयदेव कुमार लोगों को इतना उल्लसित देख स्वयं अपना विवाह करने का हठ करने लगा........।'

रानी ने मुंजाल से कहा—इस अवसर पर किसी बात की कमी नहीं है।

'यदि है तो मेरे बहन-बहनोई की।'

विवाहोपरांत त्रिभुवन ने उदा से पूछा—उदा! तुम कब विवाह करोगे?

एक आँख दबाकर उदा ने कहा—बापू! गुर्जर राष्ट्र में प्रसन्नमुखी तो एक से दो मिल ही नहीं सकतीं?

'क्यों बे बनिया! बहुत मुँहलगा हो गया है; क्यों....'

* * *

मुंजाल एवं त्रिभुवन गले से गले मिले।

'मामाजी! अब संतुष्ट हुए?'

'अभी नहीं, बेटा!'

'क्यों? अब क्या बाकी रह गया?'

'पाटन का दंडनायक अवंती से कर ले तब मैं संतुष्ट होऊँगा।'

* * *

रात्रि हुई; देवप्रसाद का सूना महल जो हर्ष से गूँज रहा था वह अब शांत होने लगा था। केवल एक मुग्धा बैठी थी। उसका हृदय मद और मान से उछल रहा था।

'अब आपको पाटन-त्याग करना हो तो कर सकते हैं, आज्ञा है।'

'अब कहाँ जाऊँ? तब उस समय क्यों नहीं जाने दिया?'

कोमल हाथ से बँधी मुट्ठी उठा कर दिखाते हुए प्रसन्न बोली—अपना सिर तुड़वाने के लिए। अब देखती हूँ किसका सिर फूटता है।

'देखा है तुम्हारा हाथ चाहूँ तो एक हाथ से मसल दूँ।'

'याद रखियेगा, इसी हाथ ने आपकी मृत्यु से रक्षा की है।'

'इस हाथ ने ! कब ?'

'जयदेव कुमार ने तलवार उठाई थी तब। उसके हाथ को किसने घायल किया था, भूल गये ?'

'तुमने ? तुम तो—' कहकर त्रिभुवन सहसा पास आ गया।

'खबरदार !'

'क्या ?'

आँखें मटका कर प्रसन्न ने कहा—उस विचारे मुरारपाल को तो इस समय नींद भी न आती होगी !

'प्रसन्न ! तुम्हें देख कर एक बात मेरी समझ में आ रही है।'

'क्या ?'

'पिताजी ने माँ के लिए अपने प्राण क्यों दे दिये।'

*   *   *

ताम्रचूड़ध्वज सिद्धराज जयसिंह के महान् साम्राज्य का प्रारंभ हुआ। स्वार्थ में रत भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का केवल एक ही ध्येय हो गया। उनके हृदय में केवल एक ही मंत्र गूंज रहा था।

वह ध्येय, वह मंत्र था—'जय सोमनाथ !'

——*——

* समाप्त *

उत्तर प्रदेश, बिहार व अन्य सरकारों द्वारा पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत व पुरस्कृत

❀ हमारे प्रमुख प्रकाशन ❀

लेखक—उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

● अभिशाप ●

उच्चवर्णीय हिन्दू समाज में विधवाओं की विशेषतः बाल-विधवाओं की स्थिति कितनी चिन्ताजनक है यह बताने की आवश्यकता नहीं। पुरुष वर्ग अपनी इन्द्रिय लिप्सा को तृप्त करने के लिए भोलीभाली विधवाओं को सब्ज़ बाग दिखाकर उनका जीवन किस प्रकार नष्ट कर देता है और अपना मतलब पूरा करने के बाद उन्हें किस प्रकार दूध की मक्खी की तरह दूर कर देता है तथा एक क्षणिक भूल के कारण उन बेचारी विधवाओं को किस प्रकार दर-दर की खाक छाननी पड़ती है इसका अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में आपको मिलेगा। नायिका की निर्भीकता, चरित्रबल तथा तेजस्विता देखकर आप चकित हो जायँगे। मूल्य केवल ५॥) रुपया।

● प्रतिशोध ●

दुनिया में सभी प्रकार के लोग हैं। अच्छे भी बुरे भी। कभी कभी बुरे लोग हमें ऐश्वर्य का उपभोग करते हुए तथा अच्छे लोग दुःख भोगते हुए दिखाई देते हैं। किन्तु यह ऐश्वर्य तथा दुःख क्षणस्थायी होता है। अन्त में सर्वदा बुरे पर अच्छे की, असुन्दर पर सुन्दर की तथा असत्य पर सत्य की ही विजय होती है। इस उपन्यास में इसी तथ्य का कलात्मक चित्रण मुंशी जी की समर्थ लेखनी ने किया है। आप यह उपन्यास पढ़ कर मुंशीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। मूल्य केवल ५॥) रुपया।

● परदे की आड़ में ●

मुंशीजी की कलम जैसे गंभीर उपन्यास लिखने में अपना सानी नहीं रखती वैसे ही विनोद की सृष्टि करने में भी वह अद्वितीय है। गुजरात के इस कलाकार ने परदे की आड़ को जितने विनोदपूर्ण ढंग से खोलकर उसका

भंडाफोड़ किया है वह देखते ही बनता है। यह हलका फुलका रोचक उपन्यास आपके हृदय को गुदगुदी करेगा ही किन्तु साथ ही समाज की पोलपर प्रकाश डालकर आपको विचार करने के लिए भी बाध्य करेगा। मूल्य २।)

● अतीत के स्वप्न ●

मुंशीजी के अत्यन्त सशक्त उपन्यासों में इसकी गणना होती है। यह गुजरात के इतिहास का एक सजीव पृष्ठ है। 'वासना मनुष्य को क्या करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती?' यह सर्वदा जलता रहनेवाला प्रश्न ही इस उपन्यास का मेरुदण्ड है। एक बार पढ़ना प्रारम्भ करने पर बिना समाप्त किए आप इस पुस्तक को नीचे नहीं रख सकेंगे। मूल्य केवल ५) रु०

● बीती बात ●

मुंशीजी की प्रतिभा बहुमुखी है इसका एक सुंदर उदाहरण यह उपन्यास है। पुराणों में वर्णित तथा गायत्री मंत्र का दर्शन करनेवाले तेजस्वी ऋषि विश्वामित्र के प्रारम्भिक जीवन का अत्यन्त सफल चित्रण आपको इस उपन्यास में मिलेगा। आर्य संस्कृति के उदयकाल की यह जीवंत तस्वीर आपको निश्चय ही मुग्ध कर देगी। मूल्य केवल ३॥) रु०

● कालभोज ●

लेखक—रमणलाल वसंतलाल देसाई

गुर्जर भाषा के एक अन्यतम तेजस्वी नक्षत्र स्व० श्री देसाई की यह एक अनुपम कृति है। मेवाड़ की रक्त-सिंचित भूमि का पहला वीर 'काल भोज' अर्थात् 'बापा रावल', जिसने भारतीय संस्कृति के पूर्ण चन्द्र को ग्रसने के लिए विशाल मुख खोल कर बढ़ने आने वाले विदेशी राहु को मुँह तोड़ जवाब दिया था, इस उपन्यास में सजीव हो उठा है।

"लेखक को आशातीत सफलता। सभी दृष्टियों से पुस्तक उपादेय।"
'आर्यावर्त' पटना। मूल्य केवल ४॥)रु०

● मंत्र-शक्ति ●

लेखिका—स्व० श्रीमती अनुरूपा देवी

बंगाल की भूमि सभी दृष्टियों से अत्यन्त उर्वर है। इस भूमि ने भारतीय साहित्य का मुख उज्वल करनेवाली अनेक विभूतियों को जन्म

दिया है। उनमें से एक श्रीमती अनुरूपा देवी भी हैं। आपका यह उपन्यास गंभीर विषय पर लिखा हुआ होने के बावजूद इतना मधुर है कि पाठक समाप्त किए बगैर इसे नीचे नहीं रख सकता। दरिद्र पति का तिरस्कार करनेवाली पत्नी विवाह के मंत्र के प्रभाव से अन्त में पति से मुक्त हृदय से मिलती है इस आकर्षक तथा कोमल कथा वस्तु को लेकर लेखिका ने किस कमाल के साथ कुछ वर्ष पहले के बंगाल को पुनः सजीव कर दिया है यह इस उपन्यास को बिना पढ़े नहीं अनुभव किया जा सकता। बालक-बालिका, स्त्री, पुरुष, तरुण, प्रौढ़, वृद्ध किसी के भी हाथ में आप यह उपन्यास बिना किसी हिचकिचाहट के दे सकते हैं। मूल्य केवल ४।।) रुपया।

● सुनंदा ●

लेखक—क्षी र सा ग र

समाज का जीवन एक बहती हुई नदी के समान है। वह हमेशा भले ही एक सा दिखाई दे पर उसके मूल्य में बराबर परिवर्तन होता रहता है। यदि यह परिवर्तन न हो तो समाज की प्रगति रुक जायगी और उसका जीवन बँधे हुए तालाब के जल के समान सड़ जायगा, किंतु यह परिवर्तन आसानी से नहीं होता। परिवर्तन का अर्थ है पिछली अवस्था, पिछली स्थिति, पिछले मूल्यों की समाप्ति तथा उनके स्थान पर नयी अवस्था, नयी स्थिति तथा नये मूल्यों की स्थापना। इस नये और पुराने के संघर्ष का चित्रण ही इस उपन्यास का मेरुदंड है।

हिन्दी के नवयुवक लेखक क्षीरसागरजीकी मँजी हुई लेखनी से निकला हुआ यह उपन्यास आपके सम्मुख इस संघर्ष का ऐसा सजीव चित्रण उपस्थित कर देगा कि आप इसे समाप्त कर देने तक पुस्तक नीचे नहीं रख सकेंगे। मूल्य केवल ५।।) रु०

[illegible]

● समर्पण ●

[illegible]

[illegible]

[illegible]